प्रकाशकः—

बी० एन० यादव,

अध्यक्ष, मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुकडिपो,

कचौड़ीगली, बनारस-१

मुद्रकः—

मास्टर् प्रिण्टिङ्ग वर्क्स,

[illegible], बनारस-१.

भूमिका

संसार में जितने पदार्थ दृष्टिगोचर हैं वे सब परस्पर भिन्न भिन्न रूप और भिन्न भिन्न गुणो से युक्त हैं। अर्थात् कोई भी दो पदार्थ सर्व अवयवों से तुल्य नहीं हैं। इसका क्या कारण है? इस प्रश्न का एक ही स्पष्ट उत्तर यह है कि–प्रत्येक वस्तु भिन्न भिन्न समय और भिन्न भिन्न स्थान में उत्पन्न होते है (अर्थात् कोई भी दो पदार्थ एक स्थान और एक समय में उत्पन्न नहीं होते और न हो सकने है) इसलिये समय और स्थान के भिन्नता (विलक्षणता) होने के कारण ही वस्तु मात्र में विभिन्नता होती है। एक ही पिता के अनेक पुत्र भिन्न भिन्न रूप, भिन्न भिन्न स्वभाव, भिन्न भिन्न सुख या दुःख के भागी होने है। यह सर्वविदित है, क्यो कि वे भिन्न भिन्न समय में उत्पन्न होते है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि–'समय में भिन्नता क्यो होती है'? तो इसके अन्वेषण से यही सिद्ध होता है-कि आकाश स्थित ज्योतिर्बिम्ब (सूर्य चन्द्रादि ग्रह और अश्विन्यादि नक्षत्र बिम्ब) समूहों के परस्पर सयोग और वियोग से ही समय में विलक्षणता (प्रातः, मध्याह्न, सायं, दिन, रात्रि वर्षा, शरद, हेमन्त इत्यादि ऋतु तथा अयन आदि स्वरूप से भिन्नता) हुआ करती है। अर्थात्–ग्रह नक्षत्र, या भूमण्डल, यदि सर्वदा एक स्थान में ही स्थिर रहते तो समय का भी एक ही रूप दृष्टिगोचर होता, यह एक बालक भी समझ सकता है। अतः यह निर्विवाद है कि–स्व स्व गति वश ग्रह और नक्षत्र बिम्बो के परस्पर संयोग वियोग से ही समय और देश (स्थान) में वैलक्षण्य (शुभत्व अशुभत्व) होते रहते है, अतः तत्तत्समय में उत्पन्न मनुष्य आदि जन्तु भी भिन्न भिन्न स्वभाव और भिन्न भिन्न सुख या दुःख के भागी होते है।

हमारे प्रातःस्मरणीय महर्षियों ने अपने तपोबल से इन बातो का पूर्ण पता लगाया कि–किन किन ग्रह और नक्षत्रों में क्या क्या गुण है, और उनमें किस किस बिम्बों के योग वियोग से किस प्रकार समय में शुभत्व और अशुभत्व होते हैं। हमलोगों के उपकारार्थ इसी विषय के ज्ञान की

पद्धति उन्होंने जो बनाई, वही, ज्योतिर्बिम्ब—सम्बन्धी होने के कारण ज्यौतिष नाम से व्यवहृत है।

ज्यौतिषशास्त्र के मुख्य ३ स्कन्ध हैं। (१) जिस पद्धति से ग्रह नक्षत्रों के योग, उदय, अस्त आदि का ज्ञान होता है, वह गणित वा सिद्धान्त स्कन्ध कहलाता है। (२) जिससे ग्रहबिम्बों के योगवश समय और देश के शुभत्व या अशुभत्व का ज्ञान होता है वह संहिता। तथा (३) जिस पद्धति से प्रत्येक जन्तु के उत्पत्ति (जन्म) समय से तत्तत् प्राणियों के जीवन भर का शुभाशुभफल समझा जाता है वह जातक स्कन्ध कहलाता है।

जातक के ब्रह्मा, नारद, वसिष्ठ, गर्ग, पराशर आदि मुनियों के बनाये हुए अनेकों ग्रन्थ सुनने में आते हैं, परञ्च हम लोगों के दुर्भाग्यवश उन ग्रन्थों के अधिकांश लुप्त प्राय हैं। इस समय सब जातक ग्रन्थों में दैवज्ञ-शिरोमणि वराहमिहिर कृत बृहज्जातक ही सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। जो प्रत्येक प्रान्त में समादृत है। तथा इसकी प्राचीन टीकाओं में–ज्यौतिषमर्मज्ञ दैवज्ञ भट्टोत्पल कृत टीका सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। परञ्च उसमें भी लेखक अध्यापक आदि के दोषवश कितने स्थल में अर्थ अयुक्त प्रतीत होते हैं। तथा संस्कृतमय होने के कारण सर्वसाधारण को समझने में कठिनता होती है। यद्यपि भट्टोत्पल के आधार पर ही कुछ टीकाकारों ने भाषाटीका भी बनाई है। परञ्च उससे ग्रन्थ का आशय स्पष्ट नहीं हो सका। क्योंकि जहाँ ग्रन्थ-कार ने प्रमाद किया, वहाँ भट्टोत्पल ने भी प्रमाद किया है, तथा जहाँ जहाँ भट्टोत्पल को प्रमाद (असावधानता) हुए वहाँ भाषा टीकाकारों ने उसी प्रकार अनुवाद कर दिया है। ग्रन्थकार या टीकाकारों को चाहिये कि–ग्रन्थ या टीका इस प्रकार बनावें जिससे पूर्वापर में असङ्गति न हो। यहाँ उसका एक उदाहरण यह है कि—दैवज्ञ वराहमिहिर, महाराज विक्रमादित्य की सभा के नव (९) रत्नों में एक थे। वास्तव में उस समय उनके समान कोई भी ज्यौतिषी नहीं था, न तो अद्यावधि दूसरा हुआ। उन्होंने (वराह-मिहिर ने) ज्यौतिष विषय के–सिद्धान्त, करण, संहिता और जातक प्रत्येक स्कन्ध के उत्तमोत्तम ग्रन्थ बनाये। अन्त में उन्होंने इस ग्रन्थरत्न (बृहज्जातक)

को बनाया था। तथा प्रत्येक ग्रन्थ उन्होंने मुनिजन वचनानुकूल ही बनाये हैं। बृहज्जातक लिखते समय वे भी एक स्थान में प्रमादवश धोखा में पड़ कर प्राचीन महर्षियों के वचन में दोषारोपण कर डाले। वस्तुतः वे मुनियों आशय नहीं समझ सके, सम्भव है--प्रमादवश कहीं ज्ञानी से भी भूल हो जाती है। कहा भी है—"स्खलनं गच्छतः क्वापि प्रमादाद् बलिनामपि" चलते समय असावधानी में कहीं बलवान् का भी पैर फिसल जाता है।

उन्हें तो उचित यह था कि--"यदि मुनियों का वचन असङ्गत प्रतीत हुआ तो सावधान होकर।उसे सङ्गत बनाने का प्रयत्न करते, परञ्च सो नहीं करके सहसा लिख डाला कि—

"पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः।
चतुर्थे भवने सूर्याज् ज्ञ-सितौ भवतः कथम्? ॥"

नाभसयोगाध्याय, श्लोक ६, और उसकी टीका देखिये।

प्राचीन महर्षियों ने केन्द्र में शुभग्रह और पाप ग्रहों की स्थिति से २ प्रकार के दलयोग, २ प्रकार के वज्रयोग और २ प्रकार के यवयोग कहे हैं।

यथा--केन्द्रत्रयगतैः पापैः सौम्यैर्वा दलसंज्ञितौ।
द्वौ योगौ सर्पमालाख्यौ विनष्टेष्टफलप्रदौ॥

तथा—वज्रं लग्नास्तगैः सौम्यैः, पापखेटैः खबन्धुगैः।
यवस्तु विपरीतस्थैर्मिश्रस्थैः कमलं स्मृतम्॥"

यहाँ मुनियों ने केन्द्र के ३ भेद स्वीकार किये हैं। यथा लग्न-पूर्व केन्द्र। चतुर्थ, दशम मध्य केन्द्र। और सप्तम पश्चिम केन्द्र। इनमें जिस केन्द्र में शुभ ग्रह हो उस अवस्था में सुखी तथा जिस केन्द्र में पाप ग्रह हो उस अवस्था में जातक दुःखी होता है। अतः यहाँ मुनियों का अभिप्राय यह है कि लग्न आदि तीनों प्रकार के केन्द्र में यदि शुभ ग्रह हो, अथवा तीनों केन्द्र में यदि पाप ग्रह हो तो दोनों प्रकार से दल योग होता है। परञ्च शुभ ग्रह से उत्पन्न दलयोग में सदा सुखी होता है, इसलिये उसका नाम किसी ने माला रख दिया है। तथा पाप ग्रहों से दल योग में जातक सदा दुःखी होता है, अतः उसका नाम सर्प रक्खा गया है। इसी प्रकार

पूर्व और पश्चिम (लग्न, सप्तम) में सब शुभ ग्रह हो; अथवा मध्य केन्द्र (चतुर्थदशम) में सब पाप ग्रह हो तो दोनों हालत में वज्र योग होता है। अतएव वज्रयोग में जातक आद्य और अन्तिम अवस्था में सुखी, तथा मध्य अवस्था में दुखी कहा गया है। इससे विपरीत अर्थात् पूर्व पश्चिम केन्द्र में पाप अथवा मध्य केन्द्र में सब शुभ हो तो यव योग कहा गया है। जिसका फल मध्य वयस में सुख कहा गया है। ऐसे स्फुट अर्थ रहते हुए भी प्रातः स्मरणीय आचार्य महोदय ने सहसा मुनि वचन में दोषारोपण किया।

आज इस ग्रन्थ के निर्माण समय को करीब २००० वर्ष हुए। अब तक सब विद्वान् वराहमिहिर के वचन को ही समर्थन करते आये। परञ्च मुझे यह परम असमञ्जस मालूम हुआ। हमारे तो पूर्व महर्षि और वराह मिहिराचार्य ये दोनों ही पूज्य ठहरे तथापि--"सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढ़ः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।" इस न्याय से मैंने प्राचीन बचनों को ढूंढ़ कर उसका युक्त सङ्गत अर्थ निकाल कर आप महानुभावों के सामने रख दिया है। वह तथ्य है या अतथ्य इसमें सहृदय विद्वान् ही प्रमाण हैं। तथा यह भी हेतु है कि महर्षियों को प्रमाद नहीं हो सकता है, क्योंकि–महर्षि वे ही हैं–जिन्हें प्रमाद नहीं हो। इसलिये मेरे समझ से यह प्रमाद वराहमिहिराचार्य का ही है।

एवं प्राचीन टीकाओं में उपपत्ति और उदाहरण आदि की अनेक त्रुटियों को देखकर मैंने सर्वसाधारणजनों के उपकारार्थ – संक्षेप में मूल-श्लोकों की संस्कृत टीका, उपपत्ति, भाषा टीका, उदाहरण और उपयुक्त विशेष विषय सहित—"तत्त्वार्थ दीपिका" नामक टीका लिखकर संस्कृतविद्या के प्रेमी स्व० बाबू श्री जगन्नाथप्रसादजी यादव को प्रकाशनार्थ सादर समर्पण किया, जिन्होंने काशीस्थ स्वकीय "मास्टर प्रिंटिङ्ग प्रेस" में मुद्रण कराकर प्रकाशित किया है। यदि इससे ज्यौतिष विद्या प्रेमियों को कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

काशी,
दीपावली, संवत् २००१ } **श्रीसीताराम झा, चौगमा**

❀ श्रीः ❀

❀ बृहज्ज्ञातकस्थ–विषयसूची ❀

शुभम्

० श्रीः ०

देवज्ञवराहमिहिरविरचितम्

बृहज्जातकम्

सोदाहरणोपपत्तिसंस्कृतभाषाटीकासहितम्

टीकाकारकृतमङ्गलाचरणम्—

तमीशं दिनेशं प्रणम्याशु यस्य प्रसादाद् भवेदिष्टसिद्धिर्जनस्य ।
सहोदाहृतिं वच्मि तत्त्वार्थमस्य प्रसिद्धस्य सम्यग् बृहज्जातकस्य ॥

अथ ग्रन्थकारकृत मङ्गलाचरण—

मूर्तित्वे परिकल्पितश्शशभृतो वर्त्माऽपुनर्जन्मना-
मात्मेत्यात्मविदां क्रतुश्च यजतां भर्तामरज्योतिषाम् ।
लोकानां प्रलयोद्भवस्थितिविभुश्चानेकधा यः श्रुतौ
वाचं नः स ददात्वनेककिरणस्त्रैलोक्यदीपो रविः ॥१॥

सं०—यः शशभृतः (चन्द्रस्य) मूर्तित्वे परिकल्पितः, अपुनर्जन्मनां (मुक्तिभाजां) वर्त्म (मोक्षद्वारम्), आत्मविदां (योगिनां) आत्मा (हृदयस्थेश्वरः), यजतां क्रतुः (यज्ञः), अमरज्योतिषां भर्ता, लोकानां प्रलयोद्भवस्थितिविभुः (प्रलयोत्पत्तिपालनप्रभुः), श्रुतौ (वेदे) च अनेनधा (अनेकप्रकारेण पठितः), यश्च—अनेककिरणः (एवंविशिष्टः) त्रैलोक्यदीपः स रविः (भगवान् सूर्यः) नः (अस्मभ्यं) वाचं ददातु ॥१॥

अर्थ—जो चन्द्रमा के विम्ब में कल्पित (अर्थात् प्रतिविम्बित होकर प्रकाश देने वाले) हैं, तथा मुमुक्षुओं (मुक्त जनों) के मोक्ष द्वार, आत्म-

ज्ञानियों की आत्मा, यज्ञ करने वालों के यज्ञ, देवता और नक्षत्रों के पोषक, चौदहों लोक के संहार, उत्पत्ति और पालन करने में समर्थ, और जो वेदों में अनेक प्रकार से कहे गये हैं ऐसे तीनों लोक के प्रकाश करने वाले सहस्ररश्मि भगवान् श्रीसूर्य मुझे वचन शक्ति दें ॥१॥

विशेष—कहीं "मूर्तित्वे परिकल्पितः शशिभृतः" ऐसा भी पाठ देखने में आता है वहाँ—"शशिभृत् (महादेव) के मूर्तित्व में कल्पित" ऐसा अर्थ समझना। महादेव की अष्टमूर्तियों में सूर्य भगवान् भी हैं। "क्षिति-जल-पवन-हुताशन-पुष्कर-यजमान-सोम-सूर्याख्याः" ये महादेव की अष्टमूर्तियाँ हैं। परञ्च इसप्रकार के अर्थ में सूर्य व्याप्य हो जाते हैं। अतः "शशमृतः" ऐसा ही पाठ उत्तम है। क्योंकि जलमय चन्द्रबिम्ब सूर्य किरण से ही प्रकाशवान् होकर रात्रि में जगत को प्रकाशित करता है। इस लिये सूर्य को ही 'त्रैलोक्य दीप' कहा गया है। कहा भी है—"तरणिकिरणसङ्गादेष पीयूषपिण्डो दिनकरदिशि-चण्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति"। सि-शि। वेद में भी प्रमाण है—"सुषुम्नः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमाः"। तथा "शशिनो मूर्तिरादित्य" इत्यादि॥

अथ ग्रन्थारम्भप्रयोजन—

भूयोभिः पटुबुद्धिभिः पटुधियां होराफलज्ञप्तये
शब्द-न्याय-समन्वितेषु बहुशश्शास्त्रेषु दृष्टेष्वपि।
होरातन्त्रमहार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानामहं
स्वल्पं वृत्तविचित्रमर्थबहुलं शास्त्रप्लवं प्रारभे ॥२॥

सं०—पटुबुद्धिभिः (निजतीक्ष्णबुद्धिभिः) शब्दन्यायसमन्वितेषु (व्याकरणन्यायसहितेषु) बहुशः शास्त्रेषु भूयोभिः (पुनः पुनः) दृष्टेष्वपि होरातन्त्रमहार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानां पटुधियां (सूक्ष्मबुद्धीनां) होराफलज्ञप्तये स्वल्पं (स्वल्पाक्षरं) वृत्तविचित्रं (वृत्तैश्छन्दोभिर्विचित्रं रम्यं) अर्थबहुलं (बहुविषयकं) शास्त्रप्लवं अहं प्रारभे।

प्लवपक्षे—स्वल्पं (लघुं) वृत्तविचित्रं (शिल्पादिभिश्चित्रितं) अर्थबहुलं (धनपरिपूर्णम्) ॥२॥

अर्थ—अपनी सूक्ष्म बुद्धि से व्याकरण न्याय सहित अनेक शास्त्रों को बारम्बार अवलोकन करने पर भी होरा (जातक) शास्त्ररूप महासमुद्र के पार होने में उद्योगहीन तीक्ष्ण बुद्धि वाले विद्वानों को जातक फल के प्राप्त्यर्थ छोटा परञ्च बहुत अर्थ (विषय) से युक्त, मनोहर छन्दों से सुशोभित शास्त्र रूप नौका का आरम्भ मैं करता हूँ ॥ २ ॥

विशेष--भाव यह है कि पूर्वाचार्योक्त जातक शास्त्र विस्तर होने के कारण सब लोग आद्योपान्त देख भी नहीं सकते अतः मै सब विषयों को एक छोटे ग्रन्थ में ही ललित छन्दों में बनाता हूँ। जिसे लोग आसानी से पढ़कर समस्त जातक फलों को समझ सकते है। जैसे द्रव्य से भरी हुई सुन्दर छोटी सी नौका पर चढ़कर लोग अकेले भी बड़ी बड़ी नदियों में सुखपूर्वक शीघ्र पार हो जाते हैं ॥ २ ॥

'होरा' शब्द की व्युत्पत्ति और महत्त्व—

होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात् ।
कर्म्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति ॥

सं०—पूर्वापरवर्णलोपात् अहोरात्रविकल्पं होरा 'स्यात्' इति एके वाञ्छन्ति (कथयन्ति) । पूर्वभवे (पूर्वजन्मनि) यत् सदादि (शुभाशुभं) कर्म अर्जित तस्य पक्तिं 'इयं होरा' समभिव्यनक्ति ॥ ३ ॥

अर्थ—'अहोरात्र' के आदि और अन्त अक्षरों को लोप कर देने से होरा शब्द सिद्ध होता है ऐसा बहुत आचार्यों ने कहा है। लोगो के पूर्व-जन्म में किये हुए पुण्य और पाप जो कुछ रहते हैं उनके फल भोग काल को यह होरा शास्त्र ठीक ठीक बतलाता है ॥ ३ ॥

विशेष—भाव यह है कि मेषादि द्वादश राशियों के उदय (लग्न) अहोरात्र के बीच ही में रहते हैं इसलिये "अहोरात्र" शब्द के बीच के २ अक्षर (होरा) शब्द से १२ लग्नों का बोध होता है; अतः तत्सम्बन्धी शास्त्र भी होरा नाम से प्रसिद्ध है। व्याकरण से "हुल" संवरणार्थक धातु से

होरा शब्द बनता है। तथा—"होरा तु लग्ने राश्यर्धे रेखाशास्त्रभिदोरपि" इति मेदनीकोशः ॥

मेषादिक राशियों से काल पुरुष के मस्तक आदि अङ्गविभाग—

कालाङ्गानि वराङ्गमाननमुरो हृत्क्रोडवासोभृतो
बस्तिर्व्यञ्जनमूरुजानुयुगले जङ्घे ततोऽङ्घ्रिद्वयम् ।
मेषाऽश्विप्रथमा नवर्क्षचरणाश्चक्रस्थिता राशयो
राशिक्षेत्रगृहर्क्षभानि भवनं चैकार्थसम्प्रत्ययाः ॥ ४ ॥

सं०—मेषाश्विप्रथमाः नवर्क्षचरणाः चक्रस्थिता राशयः 'क्रमेण' वराङ्गं आननं, उरः, हृत्-क्रोड-वासोभृतः, वस्तिः, व्यञ्जनं, ऊरु, जानुयुगले, जङ्घे ततः अङ्घ्रिद्वयं 'इति' कालाङ्गानि भवन्ति। तथा राशि-क्षेत्र-गृह-र्क्षभानि भवनं च एकार्थसम्प्रत्ययाः (ज्ञेयाः) ॥ ४ ॥

अर्थ—अश्विनी आदि नक्षत्रो के ९, ९, चरण की मेषादिक १२ राशियाँ जो चक्र (भगोल) में हैं वे काल पुरुष के मस्तकादि अङ्ग हैं। यथा—मेष मस्तक, वृष मुख, मिथुन छाती, कर्क हृदय, सिंह पेट, कन्या कटि, तुला वस्ति (नाभि और लिङ्ग के मध्य अङ्ग), वृश्चिक लिङ्ग, धनु जङ्घा, मकर घुटना, कुम्भ फीली, मीन दोनों पैर हैं। तथा राशि, क्षेत्र, गृह, ऋक्ष, भ, भवन, ये एक ही अर्थ के द्योतक हैं ॥ ४ ॥

विशेष—भाव यह है कि जन्म समय में जिस अङ्ग की राशि शुभग्रह से युत हो वह अङ्ग पुष्ट और जिस अङ्ग की राशि पापग्रह से युत हो वह अङ्ग रोगादि से युक्त होता है कहा भी है लघुजातक में—

"कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत् प्रसवकाले।
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टान् सोपद्रवांश्चापि ॥" इति ॥

राशियों के स्वरूप—

मत्स्यौ घटी नृ-मिथुनं सगदं सवीणं
चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः ।

तौली ससस्यदहना प्लवगा च कन्या
शेषाः स्वनामसदृशाः स्वचराश्च सर्वे ॥ ५ ॥

सं०—मत्स्यौ (परस्परमुखपुच्छमिलितमीनौ, मीनस्वरूपं), घटी (घटवान् पुरुषः, कुम्भः) सगदं सवीणं नृमिथुनं (क्रमात् सगद-सवीणौ स्त्री-पुरुषौ, मिथुनः) अश्वजघनश्चापी नरो (धनुः), मृगास्यो मकरः, तौली (तुलाधरः पुरुषः तुलाराशिः), ससस्यदहना (अन्नाग्निसहिता) प्लवगा नौकास्थिता कन्या, शेषा 'राशयः' स्वनामसदृशाः, सर्वे स्वचराश्च (स्वस्व-योग्यस्थाने सञ्चरणशीलाः) स्युः ॥ ५ ॥

अर्थ—परस्पर मुखपुच्छमिलित दो मछलियों के सदृश मीन राशि का स्वरूप है। कन्धे पर घड़ा लिये हुए पुरुष के समान कुम्भ है। वीणा युत स्त्री तथा गदा युत पुरुष की जोड़ी मिथुन का स्वरूप है। हाथ में धनुष लिये हुए घोड़े के जंघा वाले मनुष्य सदृश धनु है। हरिण के समान मुख वाले मगर के समान मकर है। हाथ में अन्न और अग्नि लेकर नौका पर बैठी हुई कन्या के समान कन्या राशि है। शेष राशि अपने नाम के सदृश (अर्थात् मेष मेढ़ा के समान, वृष बैल के समान, कर्क केकड़ा समान, सिंह सिंह के समान, वृश्चिक विच्छू के सदृश) हैं तथा सब राशियाँ अपने २ स्थान में रहने वाले हैं ॥ ५ ॥

विशेष—भाव यह है कि मेष और वृष यह दिन में बन में और रात्रि में ग्राम में रहते हैं। मिथुन ग्राम में, कर्क जल में, सिंह बन में, कन्या जल में नौका पर, तुला बाजार में, वृश्चिक बिल (गड्ढे) में, धनु ग्राम में, मकर के पूर्वार्ध बन में और उत्तरार्ध जल में, कुम्भ ग्राम में और मीन जल में रहने वाला है। इसका प्रयोजन प्रश्न लग्नादि द्वारा हृत नष्टादिक द्रव्य के स्थान, जन्म लग्न से प्रसवादि स्थान समझने में होता है। क्योंकि—देश, दिशा, काल इनका ज्ञान राशि के द्वारा ही होता है ॥ ५ ॥

यथा–यवनेश्वराचार्योक्त विशेष राशियों के रूप और स्थान—

"आद्यः स्मृतो मेषसमानमूर्तिः कालस्य मूर्धा कथितः पुराणैः ।

सोऽजाविकासञ्चरकन्दराद्रिसेनाभिघात्वाकररत्नभूमिः ॥ १ ॥
वृषाकृतिस्तु प्रथितो द्वितीयः स वक्त्रकण्ठायतनं विधातुः ।
वनाद्रिसानुद्विपगोकुलानां कृषीवलानामधिवासभूमिः ॥ २ ॥
वीणागदाभृन्मिथुनं तृतीयः प्रजापतेः स्कन्धभुजांसदेशे ।
प्रनर्तको गायनशिल्पकर्त्री क्रीडारतिर्द्यूतविहारभूमिः ॥ ३ ॥
कर्को कुलीराकृतिरम्बुसंस्थो वक्षःप्रदेशे विहितश्च धातुः ।
केदारवापीपुलिनानि तस्य देवाङ्गनारम्यविहारभूमिः ॥ ४ ॥
सिंहश्च शैले हृदयप्रदेशे प्रजापतेः पञ्चममाहुराद्याः ।
तस्याटवीदुर्गगुहावनाद्रि-व्याधावनीदुर्गवनप्रदेशः ॥ ५ ॥
प्रदीपिकां गृह्य करेण कन्यका नौस्था जले षष्ठमिति ब्रुवन्ति ।
कालार्थधीरा जठरं विधातुः सशाड्वला स्त्री रतिशिल्पभूमिः ॥ ६ ॥
वीथ्यां तुला पण्यधरो मनुष्यः स्थितः सनाभौ कटिवस्तिदेशे ।
शुल्कार्थवीथ्यापणपट्टनाध्वसार्थाधिवासोन्नतसस्यभूमिः ॥ ७ ॥
श्वभ्रोऽष्टमो वृश्चिकविग्रहस्तु प्रोक्तः प्रभोर्मेढ्गुदप्रदेशे ।
गुहाबिलश्वभ्रविषाश्मगुप्तिवल्मीककीटाजगराहिभूमिः ॥ ८ ॥
धन्वी मनुष्यो हयपश्चिमार्धन्तमाहुरूरू भुवनप्रणेतुः ।
समस्थित-व्यस्त-समस्तवाजि-सुरास्त्रभृद्यज्ञरथाश्वभूमिः ॥ ९ ॥
मृगार्धपूर्वो मकरोम्बुगार्धो जानुप्रदेशे तमुशन्ति धातुः ।
नदीवनारण्यसरोद्यनूप-श्वभ्राधिवासो दशमः प्रदिष्टः ॥१०॥
स्कन्धे तु रिक्तः पुरुषस्य कुम्भो जङ्घे तमेकादशमाहुरार्याः ।
शुष्कोदकाधारकुशस्य पक्षी स्त्रीशौण्डिको द्यूतनिवासभूमिः ॥११॥
जले तु मीनद्वयमन्त्यराशिः कालस्य पादौ विहितौ वरिष्ठौ ।
स पुण्यदेवद्विजतीर्थभूमिर्नदीसमुद्राम्बुचयाधिवासः ॥१२॥ इति ॥

राशियों के स्वामी, नवांश और द्वादशांशपति—

क्षितिज-सितज्ञ-चन्द्र-रवि-सौम्य-सिता-ऽवनिजाः
सुरगुरु-मन्द-सौरि-गुरवश्च गृहांशकपाः ।

अज-मृग-तौलि-चन्द्रभवनादिनवांशविधि-
र्भवनसमांशकाधिपतयः स्वगृहात् क्रमशः ॥६॥

सं०—क्षितिज-सित-ज्ञचन्द्ररविसौम्यसितावनिजाः सुरगुरुमन्दसौरिगुरवश्च गृहांशकपाः (क्रमेण मेषादिराशीनां, तत्तदंशानां च पतयो भवन्तीत्यर्थः)। अजमृगतौलिचन्द्रभवनादिनवांशविधिर्भवति । तथा स्वगृहात् क्रमशो भवन-समांशकाधिपतयो (द्वादशांशाधिपाः) 'भवन्ति' ॥६॥

अर्थ—मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति शनि, शनि, बृहस्पति ये क्रम से मेषादि १२ राशियों के स्वामी हैं। तथा मेषादि राशियों के नवांशादिकों के भी क्रम से मङ्गलादिक ही स्वामी होते है।

तथा मेषादिक राशियों में क्रम से मेष, मकर, तुला कर्क से आरम्भ कर ९, ९ राशियों के नवांश होते हैं। और प्रति राशि में अपने ही से आरम्भ कर क्रमसे १२ राशियां के द्वादशांश होते है। स्पष्टार्थ चक्र देदिये।

विशेष—राश्यधिपनिरूपण करने का प्रयोजन यह है कि—जो राशि या अंश अपने स्वामी से युत दृष्ट हो वह सबल होकर भाव फल को पुष्ट करती है अन्यथा निर्बल होकर भावफल को ह्रास करती है। तथा प्रत्येक राशि के ९, ९ विभाग करके नवमांश कहे गये है इनका प्रयोजन—"लग्न-नवांशपतुल्यतनुः स्यात्" इत्यादि जातक के स्वरूप जीविका आदि में होता है। तथा प्रत्येक राशि में अढ़ाई अढ़ाई अंश के १२ विभाग बनाकर द्वादशांश कहे गये हैं जिनका प्रयोजन—"तत्कालिकेन्दुसहितो द्विरसांशको यः" इत्यादि में आगे होता है।

राशि स्वामिचक्र—

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
स्वामी	मं.	शु.	बु.	च.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.

नवमांशचक्र—

अंशकला	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
३|२०	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.
६|४०	वृ.	कु.	वृ.	सिं	वृ.	कु.	वृ.	सिं.	वृ.	कु.	वृ.	सि.
१०|००	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	कु.	मि.	मी.	ध.	क.
१३|२०	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.
१६|४०	सि.	वृ.	कु.	वृ.	सि.	वृ.	कु.	वृ.	सि.	वृ.	कु.	वृ.
२०|००	क.	मि	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.
२३|२०	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.
२६|४०	वृ.	वि.	वृ.	कु.	वृ.	सि.	वृ.	कु.	वृ.	सि.	वृ.	कु.
३०|००	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.

मेषादि १२ राशियों में १०८ नवांश होते है इसलिये चक्र में मेषादि राशियों की ९ आवृति होती है, अतः मेषादि में क्रम से मेष, मकर, तुला, कर्क, इन्हीं ४ राशियों से नवांशारम्भ होने की युक्ति सिद्धि होती है।

द्वादशांशचक्र—

अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
२|३०	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
५|०	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.
७|३०	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.
१०|०	क	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.
१२|०	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.
१५|०	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.
१७|३०	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.
२०|०	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.
२२|३०	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.
२५|०	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.
२७|३०	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.
३०|०	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.

द्वादशांश चक्र में १२ विभाग होने के कारण बारहों राशिके द्वादशांश क्रम से हो जाते है इसलिये "द्वादशांशाः स्वभात् स्मृताः" कहा गया ॥

यहाँ यह प्रश्न होता है कि सूर्य और चन्द्रमा को प्रधान ग्रह होने पर भी एक ही एक और भौमादि ग्रहों को दो दो राशि क्यों हुई । इसका उत्तर यह है कि—

कण्ठीरवं विक्रमिणं विलोक्य स्वीयं पद तत्र चकार सूर्यः ।
मैत्र्या तदासन्नतया कुलीरे निजं बवन्धाल्यमेणलक्ष्मा ॥
सिंहादिषट्कं रविणा गृहीतं-कर्कादिषट्कं शशिना विलोमात् ।
तथार्धमर्धं प्रतिराशि ताभ्यां मिथोऽपि होराभिधया गृहीतम् ॥
अन्ये ग्रहा गृहयियाचिषया क्रमेण शीतांशुतीक्ष्णमहसोः सदनं समीयुः ।
प्राप्तक्रमेण ददतुर्भवनानि तौ च भौमादयो द्विभवनास्तत एव जाताः ॥

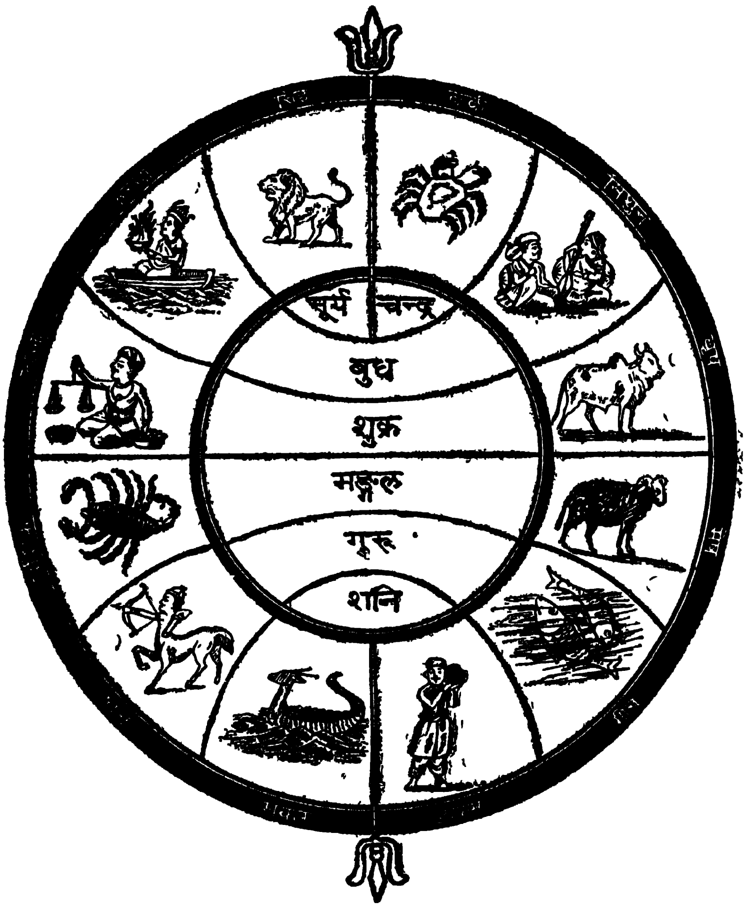
भाव यह है कि आगे कहे हुए श्लोकानुसार-सूर्य और चन्द्रमा राजा है इस लिये—सब राशियों में सिंह को पराक्रमी समझकर सूर्य अपना स्थान बनाये । और मैत्री होने के कारण निज प्रकृति अनुरूप सिंह के समीपस्थ कर्क राशि में चन्द्रमा अपना स्थान बनाये । तथा सिंह से आगे ६ राशि सूर्य के अधिकार में और कर्क से पीछे ६ राशि चन्द्र के अधिकार में हुआ । तथा बुध युवराज है इसलिये अपने समीप में चन्द्रमा मिथुन राशि और सूर्य कन्या राशि में उनको स्थान दिये । फिर मन्त्री शुक्र को चन्द्रमा वृष में और सूर्य तुला में स्थान दिये । फिर सेनापति मङ्गल को चन्द्रमा मेष और सूर्य वृश्चिक में स्थान दिये । फिर मन्त्री गुरु को चन्द्रमा मीन में और सूर्य धनु में स्थान दिये । फिर भृत्य शनि को चन्द्रमा कुम्भ और सूर्य मकर में स्थान दिये । इसलिये दो राजा होने के कारण दोनों के राज्य में मङ्गलादि ग्रहों के स्थान होने से दो दो स्थान हुये । तथा प्रत्येक राशि में सूर्य चन्द्रमा होरा नाम से अपना अपना अधिकार बनाये जिसका स्पष्ट वर्णन "लग्नपत्रपदीप" में है ॥ ६ ॥

नवांशारम्भज्ञानका सरल श्लोक—

मेषे हरौ चापधरे त्वजाद्याः वृषे स्त्रियां नक्रगृहे मृगाद्याः ।
युग्मे तुले कुम्भधरे तुलाद्याः कर्कालिमीनेषु च कर्कटाद्याः ॥६॥

विशेष वर्णन "लग्नपत्रप्रदीप द्वितीयभाग में" देखिये ।

राशियों के स्वरूप और स्थान ज्ञानार्थचित्र—



त्रिंशांश निरूपण—

कुजरविजगुरुज्ञशुक्रभागाः पवनसमीरणकौर्प्यजूकलेयाः
अयुजि युजि तु मे विपर्ययस्थाः शशिभवनालिझषान्तमृक्षसन्धिः

सं०—अयुजि (विषमराशौ) पवनसमीरणकौर्प्यजूकलेयाः (५,५,८, ७,५ अंशाः) क्रमेण कुजरविजगुरुज्ञशुक्रभागाः 'भवन्ति'। युजि (समे) तु विपर्ययस्थाः उत्क्रमरीत्या (ज्ञेयाः) । तथा शशिभवनालिझषान्तं (कर्कवृश्चिकमीनान्तं) ऋक्षसन्धिः स्यात् ॥ ७ ॥

अर्थ—विषम राशियों में आदि से ५ अंश मङ्गल के, उसके बाद ५ अंश शनि के, उसके बाद ८ अंश गुरु के उसके बाद ७ अंश बुध के तथा अन्त में ५ अंश शुक्र के त्रिशांश होते हैं। तथा समराशियों में इससे विपरीत (अर्थात् पहिले ५ अंश शुक्र के, फिर ७ अंश बुध के, फिर ८ अंश गुरु के, तब ५ अंश शनि के, अन्त में ५ अंश मङ्गल के) त्रिशांश होते हैं। तथा कर्क, वृश्चिक और मीन का अन्त ऋक्षसन्धि कहलाती है॥

विशेष—ऋक्षशन्धि इस लिये है कि यहां साथ ही नक्षत्र और राशियों का अन्त और आरम्भ होता है। दूसरे राशियों का अन्त और आरम्भ नक्षत्रों के वीच में, तथा नक्षत्रों के आरम्भ भी राशियों के मध्य ही में होता है। इस लिये उसमें सन्धि दोष नहीं है। ऋक्षसन्धि को ही गण्डान्त भी कहते हैं। सन्धि में जन्म होने से अशुभ फल होता है। तथा त्रिशांश से आगे शुभाशुभविचार किया गया है।

तथा त्रिंशांश भौमादि पांच ही ग्रहों के क्यों होते और उनमें भी सबके तुल्य अंश क्यों नहीं होते ? इसकी युक्ति "लग्नप्रदीप" के षड्वर्ग-विचार में देखिये ॥ ७ ॥

राशियों के नामान्तर—

क्रियताबुरिजितुमकुलीरलेयपाथोनजूककौर्प्याख्याः।
तौक्षिक आकोकेरो हृद्रोगश्चान्त्यभं चेत्थम् ॥ ८ ॥

सं०—क्रिय-ताबुरि-जितुम-कुलीर-लेय-पाथोन-जूक-कौर्प्याख्याः,तौक्षिकः, आकोकेरः, हृद्रोगः, अन्त्यभं इत्थं (क्रमेण मेषादिराशीनां संज्ञा ज्ञेयाः) ॥

अर्थ—क्रिय १, ताबुरि २, जितुम ३, कुलीर ४, लेय ५, पाथोन ६, जूक ७, कौर्पि ८, तौक्षिक ९, आकोकेर १०, हृद्रोग ११, अन्त्यभ १२ ये क्रम से मेषादि द्वादश राशियों की संज्ञा है ॥ ८ ॥

विषमराशि अंश	मं. ५	श. ५	गु. ८	बु. ७	शु. ५	त्रिंशांशपति
समराशि	शु. ५	बु. ७	गु. ८	श. ५	मं. ५	त्रिंशांशपति

षड्वर्गसंज्ञा और होरा शब्दार्थ—

द्रेष्काणहोरानवभागसञ्ज्ञास्त्रिंशांशकद्वादशसञ्ज्ञिताश्च ।
क्षेत्रञ्च यद्यस्य स तस्य वर्गो होरेति लग्नं भवनस्य चार्द्धम् ॥

सं०—दृक्काणहोरानवभागसंज्ञाः, त्रिंशांशकद्वादशसंज्ञिताः क्षेत्रं च यत् यस्य स तस्य वर्गो 'भवति' 'होरा' इति लग्नं, भवनस्य राशेरर्धं च होरा कथ्यते ॥ ९ ॥

भा०—द्रेष्काण, होरा, नवमांश, त्रिंशांश, द्वादशांश और क्षेत्र (राशि) इनमें जो जिस ग्रह का हो वह उसका वर्ग होता है । तथा 'होरा' शब्द से लग्न और राशि का आधा भी समझा जाता है । अर्थात् यहाँ षड्वर्ग में होरा शब्द से राशि का आधा ही ग्रहण करना चाहिये ॥९॥

राशियों के दिन-रात्रिबल और शीर्षोदय पृष्ठोदयत्व का ज्ञान—

गो-ऽजा-श्वि-कर्कि-मिथुनाः स-मृगा निशाख्याः
पृष्ठोदया विमिथुनाः कथितास्त एव ।
शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषा
लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम् ॥१०॥

सं०—समृगाः मकरसहिता गोऽजाश्वि-कर्कि-मिथुनाः निशाख्याः (रात्रिबलाः) कथिताः। ते एव विमिथुनाः पृष्ठोदयाः कथिताः। शेषाः राशयः शीर्षोदयाः दिनबलाश्च भवन्ति। पृथुरोमयुग्मं (मीनः) उभयतः (शीर्ष-पृष्ठतः) लग्नं समेति (उदेति) ॥१०॥

भा०—वृष, मेष, धनु, कर्क, मिथुन और मकर ये ६ रात्रिबली और इनमें मिथुन छोड़ कर बाकी ५ पृष्ठोदय हैं। और शेष राशिँ शीर्षोदय तथा दिनबली है परञ्च मीन उभयोदय (शीर्षपृष्ठोदय) है ॥ १० ॥

मे. वृष ध. क. म.	पृष्ठोदय, रात्रिबली
सि. कन्या. तु. वृ. कु.	शीर्षोदय दिनबली
मिथुन रात्रिबली	शीर्षोदय
मीन दिनबली	उभयोदय

वि०—इसका प्रयोजन-"रात्रिद्युसंज्ञेषु विलोम जन्म" इत्यादि नष्टजातकादि में होता है। तथा यात्रा में "शीर्षोदये समभिवाञ्छितकार्यसिद्धिः पृष्ठोदये विफलता बलविद्रवश्च" तथा च "शस्तं दिने दिनबले, निशि नक्तवीर्ये ज्ञेयं विपर्ययबले गमनं न शस्त"मित्यादि में होता है ॥ १० ॥

राशियों के पापत्व शुभत्व आदि तथा होरा और द्रेष्काण कथन—

क्रूरः सौम्यः पुरुषवनिते ते चरागद्विदेहाः
प्रागादीशाः क्रियवृषनृयुक्कर्कटाः स-त्रिकोणाः।
मार्त्तण्डेन्द्वोरयुजि समभे चन्द्रभान्वोश्च होरे
द्रेष्काणाः स्युः स्वभवनसुतत्रित्रिकोणाधिपानाम् ॥११॥

सं०—ते (मेषाद्याः) क्रमेण क्रूरः सौम्यः, पुरुष-वनिते, तथा चरागद्विदेहाः चर-स्थिरद्विस्वभावाः 'ज्ञेयाः'। क्रिय-वृष-नृयुक्-कर्कटाः सत्रिकोणाः (पञ्चमनवमसहिताः) प्रागादीशाः पूर्वादिदिक्स्वामिनो भवन्ति। अयुजि (विषमे) मार्तण्डेन्द्वोः, समभे च चन्द्रभान्वोः क्रमेण होरे भवतः। 'तथा' स्वभवनसुत-त्रित्रिकोणाधिपानां प्रथम-पञ्चम-नवमेशानां द्रेष्काणाः स्युः॥

भा०—मेष आदि १२ राशि क्रम से क्रूर, सौम्य। पुरुष, स्त्री। चर, स्थिर, द्विस्वभाव हैं। तथा–मेष, वृष, मिथुन, कर्क ये अपने अपने पञ्चम, नवम राशि सहति क्रम से पूर्व आदि दिशाओं के स्वामी हैं। विषम राशियों में प्रथम होरा सूर्य की, द्वितीय चन्द्रमा की, और सम राशियो में प्रथम चन्द्रमा की, द्वितीय सूर्य की होरा होती है। तथा प्रत्येक राशि में प्रथम द्रेष्काण स्वकीय (राशि का अपना ही), द्वितीय द्रेष्काण उस राशि से ५वाँ का तृतीय द्रेष्काण अपने से नवमी राशि के स्वामी का होता है ॥ ११ ॥

वि०—मेष सिंह धनु पूरबे राशी। वृष कन्या मृग दक्षिण वासी।
मिथुन तुला घट पश्चिम जानो। कर्क मीन अलि उत्तर मानो ॥

प्रयोधन—राशि के स्वभावानुसार ही जातक का स्वभाव होता है। यथा-क्रूर में क्रूर स्वभाव, सौम्य में सौम्य स्वभाव। चर में चञ्चल, स्थिर में स्थिर इत्यादि।

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	राशि
क्रू.	सौ.	क्रू.	सौ.	क्रू.	सौ.	क्रू.	सौ.	क्रू.	सौ.	क्रू.	सौ.	अशुभशुभ
पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पुं स्त्री संज्ञा
च.	स्थि.	द्वि.	च.	स्थि.	द्वि.	च.	स्थि.	द्वि.	च.	स्थि.	द्वि.	चरादिसंज्ञा
पूर्व.	द.	प.	उ.	पू.	द.	प.	उ.	पू.	द.	प.	उ.	दिशा

अन्य (यवनादि) आचार्य के मत से होरा और द्रेष्काण—

केचित्तु होरां प्रथमाम्भपस्य वाञ्छन्ति लाभाधिपतेर्द्वितीयाम्।
द्रेष्काणसंज्ञामपि वर्णयन्ति स्वद्वादशैकादशराशिपानाम् ॥

सं०—केचित्तु भपस्य (राशिपतेः) प्रथमां, 'तथा' लाभाधिपतेर्द्वितयां होरां वाञ्छन्ति कथयन्ति। द्रेष्काणसंज्ञामपि 'क्रमेण' स्वद्वादशैकादशराशिपानां वर्णयन्ति (कथयन्ति) ॥ १२ ॥

भा०—यवन आदि आचार्य प्रथम होरा राशिपति की और द्वितीय

होरा उसं राशि से एकादशेश की कहते हैं। द्रेष्काण भी प्रथम राशीश का, द्वितीय उस राशि से द्वादशेश का तथा तृतीय एकादशेश का कहते हैं ॥

वि०—सत्याचार्य आदि आचार्यों के विरुद्ध होने के कारण यवनोक्त होरा, द्रेष्काण मान्य नहीं है ॥ १२ ॥

सूर्यादि ग्रहों के उच्च और नीच स्थान—

अज-वृषभ-मृगाऽङ्गना-कुलीरा झष-वणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः।
दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः

सं०—दश-शिखि-मनुयुक्-तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिः 'अंशैः' 'क्रमेण' अज-बृषभमृगाङ्गना-कुलीराः झष-वणिजौ-च दिवाकरादितुङ्गाः (सूर्यादिग्रहाणां क्रमादुच्चराशयः) 'ज्ञेयाः'। ते अस्तनीचाः (अस्तं उच्चात् सप्तमं नीचं येषां ते तथोक्ताः) 'भवन्ति' ॥१३॥

भा०—१० अंश से मेष सूर्य का, ३ अंश से वृष चन्द्रमा का, २८ अंश से मकर मङ्गल का, १५ अंश से कन्या बुध का, ५ अंश से कर्क बृहस्पति का, २७ अंश से मीन शुक्र का और २० अंश से तुला शनि का उच्च है। और अपने अपने उच्च से सप्तम राशि उतने ही अंशों से सब ग्रहों का नीच है ॥१३॥

वि०—इसका प्रयोजन—"त्रिभिरुच्चगतैर्भूपो, दीनो नीचस्थितैर्ग्रहैः" इत्यादि जातक फल में होता है। उपरोक्त उच्च राशियों में अंश का निर्देश करने का आशय यह है कि-जो राशि अपना उच्च भी है और मूलत्रिकोण भी है, तथा स्वगृह भी है तो उनमें कौन सा फल कहना चाहिये। जैसे कन्या राशि बुध का गृह भी है, मूलत्रिकोण भी हैं और उच्च भी है। यदि बुध कन्या में हो तो वह किस अधिकार में समझा जायगा? इसी प्रकार और ग्रहों में भी सन्देह निवारण के लिये उच्च का अंशों से विभाग कर दिया गया है।

यहाँ विशेष सारावली का वचन—

"विंशत्यंशाः सिंहे त्रिकोणमपरे स्वभवनमर्कस्य ।
उच्चं भागत्रितयं वृष इन्दोः स्यात् त्रिकोणमपरेंऽशाः ॥
द्वादश भागा मेषे त्रिकोणमपरे स्वभं तु भौमस्य ।
उच्चमथो कन्यायां बुधस्य तिथ्यंशकैः सदा चिन्त्यम् ॥
परतस्त्रिकोणभवनं पञ्चभिरंशैर्निजं गृहं परतः ।
दशभिर्भागैश्चापे त्रिकोणभवनं गुरोः स्वभं परतः ॥
शुक्रस्य तु तिथयोंऽशास्त्रिकोणमपरे स्वराशिश्च ।
कुम्भे त्रिकोणनिजभे रविजस्य रवेर्यथा—सिंहे ॥"

सूर्य का सिंह में २० अंश तक मूल त्रिकोण, बाद के १० अंश स्वगृह । चन्द्रमा का वृष में ३ अंश तक उच्च शेष २७ अंश त्रिकोण । मङ्गल का मेष में १२ अंश तक त्रिकोण बाद के १८ अंश स्वगृह । बुध का कन्या में १५ अंश तक उच्च, उसके बाद ५ अंश त्रिकोण और अन्त के १० अंश स्वगृह । गुरु का धनु में १० अंश तक त्रिकोण बाद के २० अंश स्वगृह । शुक्र का तुला में १५ अंश त्रिकोण बाद के १५ अंश स्वगृह । शनि का कुम्भ में २० अंश तक त्रिकोण और बाद के १० अंश स्वगृह है ॥१३॥

वर्गोत्तम नवांश और ग्रहों के मूलत्रिकोण स्थान—

वर्गोत्तमाश्चरगृहादिषु पूर्वमध्य-
पर्यन्तगाः शुभफला नवभागसंज्ञाः ।
सिंहो वृषप्रथमषष्ठहयाङ्गतौलि-
कुम्भास्त्रिकोणभवनानि भवन्ति सूर्यात्॥१४॥

सं०—चरगृहादिषु चरस्थिरद्विस्वभावेषु पूर्वमध्यपर्यन्तगाः (प्रथम-पञ्चम-नवमाः) नवभागसंज्ञाः (नवमांशाः) शुभफला वर्गोत्तमा (वर्गोत्तम-संज्ञकाः) भवन्ति । 'तथा' सिंहो वृषः प्रथमषष्ठहयाङ्गतौलि-कुम्भाः सूर्यात् 'क्रमेण' त्रिकोणभवनानि (मूलत्रिकोणस्थानानि) भवन्ति ॥१४॥

भा०—चर स्थिर द्विस्वभाव में क्रम से प्रथम (१) मध्यम (५) और अन्तिम (९) नवांश शुभफल दायक वर्गोत्तम कहलाता है। तथा सिंह, वृष, मेष, कन्या, धनु, तुला और कुम्भ राशि ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के मूलत्रिकोण हैं ॥ १४ ॥

वि०—किसी भी राशि का अपना ही नवांश वर्गोत्तम कहलाता है। जैसे मेष आदि चर राशियों में १ पहिला नवांश, और वृष आदि स्थिर राशियों में मध्य का (५ वाँ) तथा मिथुन आदि द्विस्वभाव में अन्तिम (९ वाँ) नवांश अपना ही होता है। इसका प्रयोजन "शुभं वर्गोत्तमे जन्म" तथा "उच्चस्वत्रिकोणगैर्बलस्थैस्त्र्याद्यैर्भूपतिवंशजा नरेन्द्राः" इत्यादि में आगे होगा ॥ १४ ॥

लग्नादि १२ भावों की संज्ञा और उपचयस्थान—

होरादयस्तनुकुटुम्बसहोत्थबन्धु-
पुत्रारिपत्निमरणानि शुभास्पदायाः ।
रिष्फाख्यमित्युपचयान्यरिकर्मलाभ-
दुश्चिक्यसंज्ञितगृहाणि न नित्यमेके ॥१५॥

सं०—तनु-कुटुम्ब-सहोत्थ-बन्धु पुत्राऽरि-पत्नि मरणानि शुभाऽस्पदाऽऽयाः 'रिष्फाख्यं' इति क्रमेण होरादयो (लग्नादयो) द्वादशभावाः ज्ञेयाः। अरि-कर्म-लाभ-दुश्चिक्यसंज्ञितगृहाणि (६,१०,११,३) उपचयानि उपचय-संज्ञानि भवन्ति। एके (गर्गादयः) नित्यं न, इति कथयन्ति ॥१५॥

भा०—तनु १, कुटुम्ब २, सहोत्थ (सहज) ३, बन्धु ४, पुत्र ५, अरि ६, पत्नी ७, मरण ८, शुभ ९, आस्पद १०, आय ११ और रिष्फ १२ ये लग्न आदि द्वादश भावों की संज्ञा है। तथा ६, १०, ११, ३ इन चार स्थानों की उपचय (वृद्धि) संज्ञा है। ये नित्य उपचय नहीं है ऐसा कितने आचार्यों का मत है ॥१५॥

वि०—लग्न आदि के तनु इत्यादि नाम क्यों हुए इसकी युक्ति लघु-पाराशरी की टीका या लग्नप्रदीप के द्वितीय भाग में देखिये। तथा उपचय के नित्य नहीं होने में गर्ग का वाक्य—"अथोपचयसंज्ञा स्यात् त्रिलाभरिपुकर्मणाम्। चेद् भवन्ति न दृष्टास्ते पापस्वस्वामिशत्रुभिः"—अर्थात् ३, ६, १०, ११ इनकी उपचयसंज्ञा तभी होती है, जब पापग्रह या अपने स्वामी के शत्रु से दृष्ट नहीं हो। पर बराहमिहिर ने सत्याचार्य के अनुसार नित्य उपचय माना है। तथा उपचय से भिन्न स्थान अपचय संज्ञक है॥१५॥

भावों के संज्ञान्तर—

कल्पस्वविक्रमगृहप्रतिभाक्षतानि
चित्तोत्थरन्ध्रगुरुमानभवव्ययानि।
लग्नाच्चतुर्थनिधने चतुरस्रसंज्ञे
द्यूनश्च सप्तमगृहं दशमं खमाज्ञा॥१६॥

सं०—लग्नात् 'क्रमेण' 'कल्प-स्व-विक्रम-गृह-प्रतिभा-क्षतानि चित्तोत्थ-रन्ध्र-गुरु-मान-भव-व्ययानि' इति द्वादशभावाः स्युः। चतुर्थनिधने चतुरस्रसंज्ञे, सप्तमगृहं द्यूनं, च (पुनः) दशमं खं आज्ञा च स्यात्॥१६॥

भा०—कल्प १, स्व (धन) २, विक्रम ३, गृह ४, प्रतिभा (बुद्धि०) ५, क्षत ६, चित्तोत्थ (मदन) ७, रन्ध्र ८, गुरु ९, मान १०, भव ११, व्यय १२ ये लग्नादि द्वादशभावों के नाम हैं। लग्नसे ४।८ भावों की चतुरस्र संज्ञा, सप्तम की द्यून संज्ञा, तथा ख, और आज्ञा ये दशम के नाम हैं॥१६॥

केन्द्र आदि संज्ञा—

कण्टककेन्द्रचतुष्टयसंज्ञाः सप्तमलग्नचतुर्थखमानाम्।
तेषु यथाऽभिहितेषु बलाढ्याः कीटनराम्बुचराः पशवश्च॥

सं०—सप्तम-लग्न-चतुर्थ-खमानां कण्टक-केन्द्र-चतुष्टयसंज्ञाः भवन्ति। तेषु यथाभिहितेषु (यथाक्रमपठितस्थानेषु) 'क्रमेण' कीट-नरा-ऽम्बुचराः पशवश्च 'राशयः' बलाढ्या भवन्ति॥१७॥

भा०—७, १, ४, १० इन भावों की कण्टक, केन्द्र, और चतुष्टय ये तीन संज्ञा है। इनमें यथाक्रम पठित (७,१,४,१०) स्थानों में क्रम से कीट, नर, जलचर, पशु (चतुष्पद) राशियाँ बली होती हैं ॥१७॥

वि०—धनुःपूर्वदलं कन्या नृयुक्कुम्भ-तुला नराः।
मृगान्त्यार्द्धं च मीनश्च कर्कश्च जलराशयः॥
गोऽजसिंहा मृगान्त्यार्धं चापान्त्यार्धं चतुष्पदाः।
कीटाख्यो वृश्चिकस्त्वेवं राशयो हि चतुर्विधाः॥ स्पष्टार्थं॥

केन्द्रात्परं पणफरं परतस्तु सर्व-
मापोक्लिमं हिबुकमम्बु सुखश्च वेश्म।
जामित्रमस्तभवनं सुतभं त्रिकोणं
मेषूरणं दशममत्र च कर्म विद्यात् ॥१८॥

सं—केन्द्रात् परं (२, ५, ८, ११ स्थानं) पणफरं स्यात्, परतश्च सर्वं (३, ६, ९, १२ इति) आपोक्लिमं ज्ञेयम्। हिबुकं, अम्बु, सुखं वेश्म, 'इति' चतुर्थभावसंज्ञा'। जामित्रं अस्तभवनं 'इति सप्तमभावसंज्ञा'। सुतभं (पञ्चमं) त्रिकोणम्, अत्र दशमं मेषूरणं कर्म च विद्यात् ॥ १८ ॥

भा०—केन्द्र (१।४।७।१०) के आगे के (२।५।८।११ इन चार) स्थानो का नाम पणफर है। उससे अतिरिक्त सब (३।६।९।१२ ये) आपोक्लिम सज्ञक है। हिबुक, अम्बु, सुख, वेश्म ये ४ चतुर्थभाव की, तथा सुत, त्रिकोण ये पञ्चमभाव की, और मेषूरण, कर्म ये दशमभाव की संज्ञा हैं॥

लग्नबल और ७॥ पलभादेशीय राशियों के अंशात्मक उदयमान—

होरा स्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नाऽन्यैश्च वीर्योत्कटा
केन्द्रस्था द्विपदादयोऽह्नि निशि च प्राप्ते च सन्ध्याद्वये।
पूर्वार्द्धे विषयादयः कृतगुणा मानं प्रतीपञ्च तद्-
दुश्चिक्यं सहजं तपश्च नवमं त्र्याद्यं त्रिकोणश्च तत् ॥१९॥

सं०—होरा (लग्नं) स्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता 'यदि' अन्यैश्च वीक्षितयुता न स्यात् तदा वीर्योत्कटा (अतिबलयुक्ता) भवति । द्विपदादयः (राशयः) 'क्रमेण' केन्द्रस्थास्तथा-अहनि, निशि च पुनः, सन्ध्याद्वये प्राप्ते च वीर्योत्कटा भवन्ति । तथा विषयादयः (५, ६, ७, ८, ९, १०) (अङ्काः) कृतगुणाः (चतुर्गुणाः) पूर्वार्द्धे (मेषादिषट्के) मानं, तत्प्रतीपं 'उत्तरार्धे तुलादिषट्के' मानं भवति । सहजं (तृतीयं) दुश्चिक्यं, नवमं तपश्च (पुनः) तत् त्र्याद्यं त्रिकोणं (त्रित्रिकोणं) ज्ञेयम् ॥ १९ ॥

भा०—लग्न यदि अपने स्वामी और बुध गुरु से दृष्ट युत हो, दूसरे ग्रह से युतदृष्ट नहीं हो तो विशेष बलवान् होता है । अर्थात् सिद्ध हुआ कि दूसरे ग्रह से भी युत दृष्ट हो तो मध्यबली होता है । और स्वामी तथा बुध गुरु से दृष्ट न हो तो निर्बल होता है । तथा द्विपद, चतुष्पद, जलचर और कीट ये केन्द्र में बली होते हैं । अर्थात् पणफर में मध्यबल और आपोक्लिम में हीनबल समझे जाते हैं । तथा द्विपद राशि दिन में, चतुष्पद रात्रि में, तथा जलचर और कीट दोनों सन्ध्या के समय बली होते हैं । पाँच आदि अंकों (५।६।७।८।९।१०) को ४ से गुना करने से (२०।२४।२८।३२।३६।४०) क्रम से पूर्वार्ध अर्थात् मेषादि ६ राशियों के अंशात्मक उदयमान होते हैं; ये ही विलोम क्रम से तुलादि के मान होते हैं । तृतीय भाव का दुश्चिक्य और नवम के तप और त्रित्रिकोण नाम हैं ॥ १९ ॥

वि०—स्थूल व्यवहार के लिये ७।३० साढ़े सात पलभासन्नदेशीय मान साधन कर अंशात्मक बनाकर आचार्य यहाँ पठित किये । इससे सब देश में व्यवहार नहीं हो सकता है । जैसे पलभा = ७।३० इस पर से चरखण्डा ७५।६०।२५ इनको क्रमोत्क्रम से लङ्कोदय में घटाने और जोड़ने से स्वदेशोदय पल होते, पलों में १० का भाग देकर अंशात्मक मान सिद्ध होता है, नीचे चक्र देखिये—

लङ्कोदय चरखण्ड—स्वोदयपल—अंशात्मक

मे. मी.	२७८—७५ = २०३ = २० = ५ × ४	स्वल्पान्तरात्
वृ. कु.	२९९—६० = २३९ = २४ = ६ × ४	"
मि. म.	३२३—२५ = २९८ = २८ = ७ × ३	"
क. ध.	३२३ + २५ = ३४८ = ३२ = ८ × ४	"
सि. वृ.	२९९ + ६० = ३५९ = ३६ = ९ × ४	"
क. तु.	२७८ + ७५ = ३५३ = ४० = १० × ४	"

इस प्रकार इनमें ४ राशि अल्पोदय, ४ राशि मध्योदय और ४ राशि राशि दीर्घोदय माने गये हैं। इसका प्रयोजन यह है कि ह्रस्वोदय में जातक आदि का अवयव ह्रस्व, तथा मध्योदय में मध्य, और दीर्घोदय में दीर्घ अवयव होते हैं ॥१९॥

मेषादि राशियों के वर्ण, प्लवत्व, और वेशिस्थान—

रक्तः श्वेतश्शुकतनुनिभः पाटलो धूम्रपाण्डु-
श्चित्रः कृष्णः कनकसदृशः पिङ्गलः कर्बुरश्च ।
बभ्रुः स्वच्छः प्रथमभवनाद्येषु वर्णाः प्लवत्वं
स्वाम्याशाख्यं दिनकरयुताद्भाद्द्वितीयं च वेशिः॥२०॥

इति श्रीमदावन्तिकाचार्यवराहमिहिरविरचिते बृहज्जातके राशिभेदाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

सं०—रक्तः १, श्वेतः २, शुकतनुनिभः ३, पाटलः ४, धूम्रपाण्डुः ५, चित्रः ६, कृष्णः ७, कनकसदृशः ८, पिङ्गलः ९, कर्बुरश्च १०, बभ्रुः ११, स्वच्छः, इति क्रमेण प्रथमभवनाद्येषु (मेषादिराशिषु), वर्णा ज्ञेयाः । स्वाम्याशाख्यं (स्वस्वामिदिक्संज्ञं) प्लवत्वं भवति । दिनकरयुताद् भाद् द्वितीयं वेशिः स्यात् ॥२०॥

भा०—१ लाल, २ शुक्ल, ३ हरित, ४ श्वेत रक्त मिला हुआ, ५ धूम्र-

पाण्डु, (श्वेत-पीतमिश्रित पाण्डु कहाता है उसमें भी कुछ कालापन), ६ चित्र (अनेक वर्ण), ७ कृष्ण, ८ सुवर्ण वर्ण, ९ पिङ्गल (कपिल), १० कर्बुर (अनेक वर्ण), ११, बभ्रु (पिङ्गल), १२ स्वच्छ ये क्रम से मेष आदि १२ राशियों के वर्ण हैं। तथा स्वामियों की दिशा में राशियों का प्लवत्व (झुकाव) होता है। और सूर्य से द्वितीय स्थान 'वेशि' संज्ञक है ॥२०॥

वि०—इसका प्रयोजन—"चन्द्रसमेतनवांशपवर्णः" 'लग्नांशकाद् ग्रहयोगेक्षणाद्वा' इत्यादि जातक और चोर आदि के वर्ण समझने में होता है। तथा प्लवत्व का प्रयोजन हृत नष्टादि में प्लवत्व दिशा में चोर तथा वस्तु की स्थिति रहती है। तथा "तत्प्लवगो विनिहन्यादचिरेण महीपतिः शत्रून्" इत्यादि युद्ध यात्रा में होता है। तथा जन्मकाल में वेशिस्थान में शुभग्रह हो तो जातक भाग्यवान् होता है ॥२०॥

इति बृहज्जातके तत्त्वार्थदीपिकायां राशिसंज्ञाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

अथ ग्रहभेदाध्यायः ॥ २ ॥

अब काल के ग्रहमय आत्मादिविभाग और ग्रहों की गुणबोधक संज्ञा—

कालात्मा दिनकृन्मनस्तुहिनगुस्सत्त्वं कुजो ज्ञो वचो
जीवो ज्ञानसुखे सितश्च मदनो दुःखं दिनेशात्मजः।
राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता कुमारो बुधः
सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ प्रेष्यस्सहस्रांशुजः ॥ १ ॥

सं०—दिनकृत् कालात्मा (कालस्य आत्मा) तुहिनगुः मनः, कुजः सत्त्वं, ज्ञो वचः, जीवो ज्ञानसुखे, सितः मदनः, दिनेशात्मजः (शनिः) दुःखम् भवति। तथा रविशीतगू राजानौ, क्षितिसुतो नेता, बुधः कुमारः, सूरिः (गुरुः) दानवपूजितः (शुक्रश्च) सचिवौ (मन्त्रिणौ), सहस्रांशुजः (शनिः) प्रेष्यः (भृत्यः) स्यात् ॥ १ ॥

भा०—सूर्य काल (समयरूप परमेश्वर) की आत्मा है, चन्द्रमा मन, मङ्गल सत्त्वं (बल), बुध वाणी, गुरु ज्ञान और सुख, शुक्र कन्दर्प, और शनि भृत्य है। सूर्य और चन्द्रमा राजा, मङ्गल सेनापति, बुध युवराज, गुरु और शुक्र ये दोनों मन्त्री और शनि प्रेष्य (नौकर) है ॥ १ ॥

वि०—इसका प्रयोजन—"आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः । दुर्बलै- दुर्बला ज्ञेया विपरीतं शनेः स्मृतः ।" आत्मा आदि ग्रहों के बली होने से आत्मा आदि पुष्ट, और निर्बल होने से आत्मा मन आदि भी दुर्बल होते हैं। तथा राजादि ग्रह जन्म समय या प्रश्न समय में बली हों और लग्न से उपचय में हो तो राजा आदि होता अथवा राजा आदि द्वारा कार्य की सिद्धि होती है।

ग्रहों की पर्याय बोधक संज्ञा—

हेलिस्सूर्यश्चन्द्रमाश्शीतरश्मिर्हेम्ना विज्ज्ञो बोधनश्चेन्दुपुत्रः ।
आरो वक्रः क्रूरदृक्चावनेयः कोणो मन्दः सूर्यपुत्रोऽसितश्च ॥२॥

जीवोऽङ्गिराः सुरगुरुर्वचसाम्पतीज्यः
शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः सित आस्फुजिच्च ।
राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखी च केतुः
पर्यायमन्यमुपलभ्य वदेच्च लोकात् ॥३॥

सं०—सूर्यो हेलिः । चन्द्रमाः, शीतरश्मिः । इन्दुपुत्रः (बुधः), हेम्ना, विद्, ज्ञः, बोधनः । आरः, वक्रः, क्रूरदृक् आवनेयः । कोणः, मन्दः, सूर्यपुत्रः, असितः (शनिः) । जीवः, अङ्गिराः, सुरगुरुः, वचसां पतिः, इज्यः । शुक्रः भृगुः, भृगुसुतः, सितः, आस्फुजित् । च तथा राहुः, तमः, अगुः, असुरः । केतुः शिखी इति (एवं) अन्यं पर्यायं (नामान्तरं) च लोकात् उपलभ्य ज्ञात्वा वदेत् ॥२-३॥

भा०--सूर्य का नाम हेलि । चन्द्रमा का शीतरश्मि। बुध के इन्दुपुत्र, हेम्ना, एवं वित्, बोधन । मङ्गल के आर, वक्र, क्रूरदृक्, आवनेय। शनि के कोण, मन्द, सूर्यपुत्र, असित । गुरु के जीव, अङ्गिरा, सुरगुरु, वाचस्पति,

इज्य । शुक्र के भृगु, भृगुसुत, सित, आस्फुजित् । राहु के तम, अगु,असुर, और केतु का नाम सिखी है । इस प्रकार और पर्याय (संज्ञा) शास्त्रान्तर प्रसिद्ध समझ कर कहना चाहिये ॥२–३॥

सूर्यादि ग्रहों के वर्ण—

रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दुर्नात्युच्चाङ्गो रक्तगौरश्च वक्रः ।
दूर्वाश्यामो ज्ञो गुरुर्गौरगात्रः श्यावः शुक्रो भास्करिः कृष्णदेहः॥

सं०—भास्करो रक्तश्यामः । इन्दुर्गौरः । वक्रो (मङ्गलः) नात्युच्चङ्गो रक्तगौरश्च । ज्ञो दूर्वाश्यामः । गुरुर्गौरगात्रः । शुक्रः श्यावः (अनेकवर्णः) भास्करिः (शनिः) कृष्णादेहः ॥४॥

भा०—सूर्य लालमिश्रित श्यामवर्ण । चन्द्रमा गौर है । मंगल अधिक लम्बा शरीर वाला नहीं और लाली लिये गौर वर्ण है । बुध दूर्वा के समान श्यामवर्ण । गुरु गौर शरीर । शुक्र श्याव (अनेक) वर्ण और शनि काला-वर्ण शरीरवाला है ॥

वि०—प्रयोजन—जन्म समय सबसे बली जो ग्रह हो उस ग्रह के सदृश जातक का वर्ण होता है । तथा प्रश्नलग्न समय बलवान ग्रह सदृश चोरादि का वर्ण समझा जाता है ॥४॥

वर्णों के रूप–, ग्रहों की देवता, और दिशा तथा पाप और शुभग्रह–

वर्णास्ताम्रसितातिरक्तहरितव्यापीतचित्रासिता
वह्न्यम्ब्वग्निजकेशवेन्द्रशचिकाः सूर्यादिनाथाः क्रमात् ।
प्रागाद्या रविशुक्रलोहिततमःसौरेन्दुवित्सूरयः
क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः ॥५॥

सं०— ताम्र-सिताऽतिरक्त-हरित-व्यापित-चित्रासिता वर्णाः क्रमात् सूर्यादिनाथाः (सूर्यादयो नाथा येषां ते तथोक्ताः) तथा वह्न्यम्ब्वग्निज-केशवेन्द्रशचिकाः क्रमात् सूर्यादिनाथाः (सूर्यादीनां ग्रहाणां नाथाः) रवि-शुक्रलोहिततमःसौरेन्दुवित्सूरयः प्रागाद्याः (क्रमात् पूर्वादिदिक्स्वामिनः)

ज्ञेयाः । क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः (क्षीणचन्द्ररवि-कुज-शनयः) पापाः, तैर्युतो बुधोऽपि पाप इत्यर्थः ॥५॥

भा०—ताम्रवर्ण, शुक्ल, अत्यन्तलाल, हरा, पीला, चित्रवर्ण, और काला इन वर्णोंके क्रम से सूर्य आदि ग्रह स्वामी हैं । तथा–अग्नि, जल, कार्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा ये क्रम से सूर्य आदि ग्रहों के स्वामी (देवता) हैं । और सूर्य, शुक्र, मङ्गल, राहु, शनि, चन्द्र, बुध, बृहस्पति ये क्रम से पूर्व आदि दिशाओं के स्वामी हैं । तथा–क्षीण चन्द्र, सूर्य, मङ्गल, शनि ये पापग्रह हैं; इनसे युत बुध हो तो वह भी पाप समझा जाता है । अर्थात् इनसे अतिरिक्त (पूर्णचन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र) शुभग्रह हैं ॥ ५ ॥

वि०—नष्टादि द्रव्य के वर्णज्ञान, वा जन्मसमय में जो ग्रह बली रहता है उस वर्ण के पदार्थ का लाभ अन्यथा हानि इत्यादि में वर्ण का प्रयोजन होता है । तथा ग्रहों की पूजा (शान्ति) में ग्रहों की देवता की पूजा की जाती है । तथा देवता की पूजा में उनके ग्रहो की पूजा होती है । एवं केन्द्रस्थ बली ग्रह की दिशा में सूतिका गृह का द्वार, और चोर आदि की दिशा जानने मे ग्रह की दिशा का प्रयोजन होता है तथा दिशा के स्वामी के दिन आदि में उस दिशा मे दिग्बल और पृष्ठदिशा में दिक् शूल होता है ॥

ग्रहो की पु-स्त्री संज्ञा और पञ्चमहाभूत के आधिपत्य—

बुध-सूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ शशि-शुक्रौ युवती नराश्च शेषाः ।
शिखिभूखपयोमरुद्गणानामधिपा भूमिसुतादयः क्रमेण ॥६॥

सं०—बुध-सूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ, शशिशुक्रौ युवती (स्त्रीग्रहौ) शेषाश्च नराः पुरुषाः (ज्ञेयाः) । तथा भूमिसुतादयो ग्रहाः क्रमेण शिखि-भू-ख-पयो-मरुद्गणानां=अग्नि-भूमि-गगन-जल-पवनानामधिपाः (ज्ञेयाः) ॥ ६ ॥

भा०—बुध, शनि नपुंसक । चन्द्र, शुक्र, स्त्रीग्रह । शेष (रवि, कुज, गुरु ये) पुरुष ग्रह है । तथा—१ अग्नि, २ भूमि, ३ आकाश, ४ जल, ५ वायु, इन पाँच तत्त्वों के स्वामी क्रम से मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि. ये ५ ग्रह हैं ॥ ६ ॥

वि०—जन्म समय में जातक के और प्रश्न समय में चोर आदि के पुंस्त्रीत्व, पुंग्रह और स्त्रीग्रह से समझा जाता है। तथा–ग्रहों की शुभदशा में अपने तत्त्व सम्बन्धी गुणों से सुख, और अशुभदशा में उस तत्त्व सम्बन्धी गुणों से दुःख होता है। जो आगे दशाध्याय में वर्णित है ॥ ६ ॥

ब्राह्मणादि वर्णों के आधिपत्य और सत्त्वादि गुण—

विप्रादितः शुक्र-गुरू कुजार्कौ शशी बुधश्चेत्यसितोऽन्त्यजानाम्।
चन्द्रार्कजीवा ज्ञ-सितौ कुजार्कौ यथाक्रमं सत्त्व रजस्-तमांसि॥७॥

सं०—शुक्रगुरू, कुजार्कौ, शशी, बुधश्च, इति क्रमेण विप्रादितः (ब्राह्मणादीनां) 'अधिपाः' इति शेषः। असितः शनिः अन्त्यजानां 'अधिपः'। चन्द्रार्कजीवाः, ज्ञसितौ, कुजार्कौ, इति यथाक्रमं सत्त्वरजस्तमांसि कथितानि॥

भा०—शुक्र गुरु ये ब्राह्मणों के स्वामी, मङ्गल और सूर्य क्षत्रियों के स्वामी, चन्द्रमा वैश्यों का, बुध शूद्रों का तथा शनि नीच जातियों का स्वामी है। तथा चन्द्र-सूर्य-गुरु ये सत्त्वगुणी, बुध शुक्र रजोगुणी, मङ्गल शनि ये तमोगुणी हैं ॥ ७ ॥

वि०—प्रयोजन–प्रश्नकाल में बली ग्रह से चोर आदि का वर्ण समझने में होता है। तथा–"सत्त्वं रजस्तमो वा त्रिंशांशे यस्य भास्करस्तादृक्" इत्यादि जातक के गुण समझने में होता है ॥ ७ ॥

सूर्यादि ग्रहों के स्वरूप—

मधुपिङ्गलदृक् चतुरस्रतनुः पित्तप्रकृतिः सविताऽल्पकचः।
तनुवृत्ततनुर्बहुवातकफः प्राज्ञश्च शशी मृदुवाक् शुभदृक् ॥८॥

सं०—मधुपिङ्गलदृक्, चतुरस्रतनुः, पित्तप्रकृतिः अल्पकचः, 'एवं भूतः' सविता (सूर्यः)। तनुवृत्ततनुः, बहुवातकफः, प्राज्ञः, मृदुवाक्, शुभदृक् च, 'एवं भूतः' शशी (चन्द्रः) ॥ ८ ॥

भा०—मधु के समान पिङ्गलवर्ण दृष्टि, चतुरस्र (लम्बाई और चौड़ाई

में बराबर) शरीर वाला* पित्ताधिक, थोड़े केश वाला ऐसा सूर्य का स्वरूप है। तनु (छोटा) और गोलाकृति शरीर, अधिक वात कफ, प्राज्ञ (मेधावी) कोमलभाषी, सुन्दर नेत्र इस प्रकार चन्द्रमा का स्वरूप है ॥ ८ ॥

वि०—इसका प्रयोजन-"लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्यात्" इत्यादि जन्मलग्न-नवांशपति ग्रह के स्वरूप और स्वभाव जातकादि के कहने में होता है ॥८॥

क्रूरदृक् तरुणमूर्तिरुदारः पैत्तिकः सुचपलः कृशमध्यः।
श्लिष्टवाक् सततहास्यरुचिर्ज्ञः पित्तमारुतकफप्रकृतिश्च ॥९॥

सं०—क्रूरदृक्, तरुणमूर्तिः, उदारः, पैत्तिकः, सुचपलः, कृशमध्यः (क्षीणकटिप्रदेशः) एवं विधः कुजः। श्लिष्टवाक्, (अनेकार्थवाक्यवक्ता), सततहास्यरुचिः, पित्तमारुतकफप्रकृतिश्च 'एवं विधो' ज्ञः (बुधः) ॥९॥

भा०—क्रूरदृष्टवाला, युवावस्था, उदार (दाता), पित्त प्रकृति, चञ्चल, क्षीणकटि ऐसा मंगल का स्वरूप है। श्लिष्ट (अनेक अर्थ वाला) वाक्य बोलने वाला, सर्वदा हास्य में रुचि रखने वाला, पित्त, वायु, कफ तीनों प्रकृति वाला ऐसा बुध है ॥ ९ ॥

बृहत्तनुः पिङ्गलमूर्द्धजेक्षणो बृहस्पतिः श्रेष्ठमतिः कफात्मकः।
भृगुः सुखी कान्तवपुः सुलोचनः कफाऽनिलात्माऽसितवक्रमूर्द्धजः

सं०—बृहत्तनुः पिङ्गलमूर्धजेक्षणः, श्रेष्ठमतिः, कफात्मकः, एवं बृहस्पतिः। सुखी, कान्तवपुः, सुलोचनः, कफानिलात्मा, असितवक्रमूर्धजः, (कृष्णकुञ्चितकेशः) एवं भृगुः (शुक्रः) ॥ १० ॥

भा०—दीर्घ और स्थूल शरीर, पिंगल वर्ण केश और दृष्टि वाला, श्रेष्ठ बुद्धि, कफ प्रकृति ऐसा बृहस्पति है। सुखी, दर्शनीय शरीर, सुन्दर नेत्र, कफ वायु प्रकृति, काला और टेढ़ा टेढ़ा (औठिया) केशवाला शुक्र है ॥

* मस्तक से पैर के अग्र भाग तक लम्बाई, और दोनों हाथ को फैलाने से चौड़ाई होती है।

मन्दोऽलसः कपिलदृक् कृशदीर्घगात्रः
स्थूलद्विजः परुषरोमकचोऽनिलात्मा ।
स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगथ शुक्रवसे च मज्जा
मन्दा-ऽर्क-चन्द्र-बुध-शुक्र सुरेज्य-भौमाः ॥११॥

सं०—अलसः, कपिलदृक्, कृशदीर्घगात्रः, स्थूलद्विजः, (स्थूलदन्तः) परुषरोमकचः, अनिलात्मा, (वातप्रकृतिः) एवं विधो मन्दः (शनिः) ज्ञेयः । अथ स्नायु-अस्थि-असृक्-त्वक्-शुक्र-वसे, मज्जा च 'क्रमेण' मन्दार्क-चन्द्र-बुध शुक्र-सुरेज्य-भौमा भवन्ति ॥ ११ ॥

भा०—आलसी, कपिल वर्ण की दृष्टि, दुबला और लम्बा शरीर, स्थूल दाँत, कठोर रोम और केश, और वात प्रकृति वाला शनैश्चर । तथा-शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, वृहस्पति और मंगल ये क्रम से १ स्नायु (शिरा), २ अस्थि, ३ शोणित, ४ त्वचा, ५ वीर्य ६ वसा, और ७ मज्जा रूप अर्थात् इन सात धातुओं में बल वाले होते है ॥११॥

वि०—जन्म समय में जो ग्रहबली होता है—उसके समान रूप और गुण जातक में होते है । यथा—"एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम् । कुर्युर्देहं नियतं वहवश्च समगाता मिश्रम् ॥" (ल. जा.) तथा—जो ग्रह बली रहता है उस धातु की पुष्टता, जो निर्बल रहता है, उस धातु की दुर्बलता समझने के लिये इसका प्रयोजन होता है ॥११॥

ग्रहों के स्थान, वस्त्र, द्रव्य और ऋतु—

देवाम्ब्वग्निविहारकोशशयनक्षित्युत्करेशाः क्रमात्
वस्त्रं स्थूलमभुक्तमग्निकहतं मध्यं दृढं स्फाटितम् ।
ताम्रं स्यान्मणिहेमयुक्तिरजतान्यर्काच्च मुक्तायसी
द्रेष्काणैः शिशिरादयः मशुरुचभुग्वादिषूद्यत्सु वा ॥१२॥

सं०—'अर्कादयः' क्रमात् देवाम्ब्वग्निविहारकोशशयनक्षित्युत्करेशाः

भवन्ति । तथाऽर्कात्-(सूर्यमारभ्य) क्रमात् 'ग्रहाणां' स्थूलं, अभुक्तं, अग्नि-क-हतं, मध्यं दृढं, स्फाटितं, इति वस्त्रं ज्ञेयम् । तथा ताम्रं, मणि-हेम-युक्ति-रजतानि, मुक्ताऽऽयसी इति अर्कात् क्रमाद् द्रव्यं स्यात्, तथा श-शु-रु-च-ज्ञ-ग्वादिषु द्रेष्काणैः उद्यत्सु (लग्नगतेषु) क्रमेण शिशिराद्य ऋतवो ज्ञेयाः ॥१२॥

भा०—देवालय, जलाशय, अग्निस्थान, विहारस्थान, कोश (भण्डार), शयन स्थान, उत्करभूमि (कतवार रखने की जगह) ये क्रम से सूर्यादि-ग्रहों के स्थान हैं। तथा स्थूल (मोटा), अभुक्त (बिल्कुल नया), अग्नि-हत (जला हुआ), क-हत (जल से भींगा), मध्यम दर्जे का दृढ़ (खूब मजबूत) और फटा हुआ इस प्रकार के वस्त्र क्रम से सूर्यादि ग्रह के हैं। और तामा मणि, सुवर्ण, कांसा आदि, चाँदी, मोती और लोह ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के द्रव्य समझना। तथा-श (शनि), शु (शुक्र), रु (रुधिर = मङ्गल), च (चन्द्र) ज्ञ (बुध), गुं (गुरु) ये लग्न में हो तो क्रम से शिशिर १, बसन्त २, ग्रीष्म ३, वर्षा, ४, शरद् ५, हेमन्त ६ ये ऋतु समझना। अथवा इन ग्रहों में जिसका द्रेष्काण लग्न में हो उसका ऋतु समझना ॥ १२ ॥

वि०—स्थान और वस्त्र आदि का प्रयोजन हृत नष्टादि में तथा जन्म-काल में सूतिका के स्थान वस्त्रादि समझने में होता है। तथा नष्टजन्म-पत्रादि बनाने में ऋतु ज्ञान का प्रयोजन होता है। अर्थात् लग्न में जो ग्रह हो उसका ऋतु समझना। यदि लग्न में बहुत ग्रह हों तो उनमें सबसे बली ग्रह का ऋतु समझना। यदि लग्न में कोई ग्रह नहीं हो तो लग्न में जिस ग्रह का द्रेष्काण हो उसका ऋतु समझना। तथा यदि सूर्य के द्रेष्काण लग्न में हो तो ग्रीष्म लग्न समझना चाहिये। आगे नष्टजातकाध्याय में—"ग्रीष्मोऽर्कलग्ने कथितास्तु शेषैः" ऐसा कहा भी है। उदाहरण वहीं दिखाया गया है॥

इस ग्रन्थ में वेदों के अधिपति नहीं कहे गये हैं। वे इस प्रकार है—

"ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो यजुर्वेदाधिपो भृगुः।
सामवेदाधिपो भौमो बुधोऽथर्वपतिः स्मृतः॥" इति ॥ १२॥

ग्रहों के दृष्टिस्थान—

त्रिदश-त्रिकोण-चतुरस्र सप्तमान्यवलोकयन्ति चरणाभिवृद्धितः।
रविजामरेज्यरुधिराः परे च ये क्रमशो भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः

सं०—त्रिदश-त्रिकोण-चतुरस्र-सप्तमानि 'स्थानानि' ग्रहाः चरणाभिवृद्धितः पश्यन्ति। तथा च रविजाऽमरेज्य–रुधिराः (शनि-गुरु-कुजाः) परे च एषु स्थानेषु क्रमशः वीक्षणे अधिकाः (सम्पूर्णदृशः) भवन्ति किलेत्यागमसूचकम् ॥ १३ ॥

भा०—ग्रह अपने अपने स्थान से ३, १० को १ चरण से, ५।६ को २ चरण से, ४।८ को ३ चरण से, और ७ सप्तम को ४ चरण (पूर्ण) दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार सामान्य कह कर विशेष कहते हैं—शनि ३।१० को, गुरु ५।६ को, मङ्गल ४।८ को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। और शेष ग्रह केवल सप्तम को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

अर्थात् सिद्ध हुआ कि इनसे भिन्न स्थान—(१।२।६।८।११।१२ इन) को नहीं देखते हैं। और दृष्टि के अनुसार ही फल भी देते हैं। लघुजातक में कहा भी है— 'पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति" ॥ १३ ॥

ग्रहों के द्वारा काल और रस का ज्ञान—

अयनक्षणवासरर्तवो मासोऽर्द्धञ्च समा च भास्करात्।
कटुक-लवण-तिक्तमिश्रितो मधुराम्लौ च कषाय इत्यपि॥१४॥

सं०—भास्करात् 'क्रमेण' अयन-क्षण-वासर-र्तवः, मासोऽर्धं (पक्षश्च) समा (वर्षं च) ज्ञेयाः। तथा-कटुक-लवण तिक्त-मिश्रितो मधुराम्लौ कषायश्च, इत्यपि भास्कराज् ज्ञेयम् ॥ १४ ॥

भा०—सूर्य आदि ग्रहों से—अयन, मुहूर्त, दिन, ऋतु, मास, पक्ष और वर्ष क्रम से समझना और सूर्यादि ग्रहों से ही—कटु, लवण, तिक्त, मिश्रित (सब रस मिला हुआ,) मधुर, अम्ल (खट्टा) और कषाय (कसैला) इन रसों को भी समझना चाहिये ॥ १४ ॥

वि०—शत्रु की जय पराजय, परदेशी के आगमन प्रश्न आदि में इसका प्रयोजन होता है। जैसे—लग्न में जिस ग्रह का नवांश जितनी संख्या में हो उस ग्रह सम्बन्धी काल प्रश्न के शुभाशुभ फल में समझना। यथा सारावली का वचन—"लग्नांशकपतितुल्यः कालो लग्नोदितांशसमसंख्यः।

वक्तव्यो रिपुविजये गर्भाधानेऽथ कार्यसंयोगे।"

उदाहरण—मानो किसी ने प्रश्न किया कि—"मेरा कार्य कितने दिन में सिद्ध होगा—उस समय का स्पट लग्न ३।१५।२०।२४ कर्क के ५ वाँ नवांश है तो नवांशपति मङ्गल हुआ। मङ्गल से मास का निर्देश है इसलिये "५ वें महीने में कार्य सम्पन्न होगा" ऐसा कहना। तथा—कोई प्रश्न करे कि मैं आज कौन कौन रस भोजन किया वा करेंगे तो स्पष्ट लग्न वनाकर देखना—लग्न में जो ग्रह हों और जिस ग्रह का नवांश हो उन रसों का आदेश करना। कहा भी है—"स रसाधिपस्य भावैर्विलग्नयोगादिभिश्चिन्त्यः।" मान लो कि—उपरोक्त प्रश्न लग्न कर्क में रवि और बृहस्पति हैं और मङ्गल का नवांश है तो कटुक, तिक्त और मधुर रस भोजन सामग्री कहना ॥१४॥

श्लोक पूर्वार्ध से यवनोक्त और श्लोक उत्तरार्थ से सत्योक्त

नैसर्गिक ग्रहमैत्री—

जीवो जीव-बुधौ सितेन्दु-तनयौ व्यर्का विभौमाः क्रमात्
वीन्द्वर्का विकुजेन्दिनाश्च सुहृदः केषाञ्चिदेवं मतम् ।
सत्योक्ते सुहृदस्त्रिकोणभवनात्स्वात्स्वान्त्यधीधर्मपाः
स्वोच्चायुःसुखपाः स्वलक्षणविधेर्नान्यैर्विरोधादिति ॥१५॥

सं०—जीवः, जीवबुधौ, सितेन्दुतनयौ, व्यर्काः, विभौमाः, वीन्द्वर्काः, विकुजेन्दिनाश्च 'इति सूर्यादिग्रहाणां' क्रमेण सुहृदः, एवं केषाञ्चित् (यवनादीनां) मतम्। सत्योक्ते 'तु' स्वात् त्रिकोणभवनात्, 'स्वान्त्यधीधर्मपाः स्वोच्चायुः-सुखपाः सुहृदो भवन्ति। स्वलक्षणविधेर्विरोधात् अन्यैः (यवनादिभिः प्रतिपादितं मैत्रीलक्षणं) न ग्राह्यमिति ॥ १५ ॥

भा०—बृहस्पति । बृहस्पति, बुध । शुक्र, बुध । रवि वर्जित सब ग्रह । मंगल वर्जित सब ग्रह । रवि, चन्द्र वर्जित सब ग्रह । तथा कुज, चन्द्र, रवि इन तीनों से अतिरिक्त शेष ग्रह । क्रम से सूर्य आदि ग्रहों के मित्र समझना, इस प्रकार किसी (यवन आदि) का मत है । परञ्च सत्याचार्य के मत में-ग्रहो के अपने अपने मूल त्रिकोण से २।१२।५।६। ८।४ इन स्थानों के स्वामी मित्र होते हैं। अर्थात् शेष स्थानों के स्वामी शत्रु होते, तथा जिनमें मित्र और शत्रु दोनों के लक्षण हों वे सम (उदासीन) होते है । इस प्रकार के अपने लक्षणों के विरोध होने के कारण दूसरे (यवन आदि अन्य आचार्य) के कहे मैत्रीविचार नही ग्रहण करना चाहिये ॥१५॥

सत्याचार्योक्त मैत्री का उदाहरण--अपने मूल त्रिकोण से २।१२।५।६। ८।४ इन उक्त स्थानों के स्वामी मित्र होते है शेष (१।३।६।७।१०।११इन) अनुक्त—स्थनों के स्वाभी ग्रह के शत्रु होते है–इसको ध्यान में रखकर विचार करना–जैसे सूर्य के मूल त्रिकोण (सिंह) से उक्त द्वितीय स्थान् के स्वामी होने के कारण बुध सूर्य का मित्र हुआ तथा अनुक्त' एकादश स्थान के स्वामी होने से शत्रु भी हुआ । अतः मित्र और शत्रु होने के कारण बुध सूर्य का सम हुआ । तथा सिंह से ३।१० इन दोनों अनुक्त स्थान के स्वामी होने से शुक्र सूर्य का शत्रु हुआ । तथा सिंह से ४।६ इन दोनों उक्त स्थान के स्वामी होने से मंगल सूर्य का मित्र हुआ । तथा सिह से ५।८ इन दोनों उक्त स्थान के स्वामी होने से गुरु सूर्य का मित्र हुआ । एवं सिंह से ६।७ इन दोनों अनुक्त स्थान के स्वामी होने से शनि सूर्य का शत्रु हुआ । एवं सिंह से १२ उक्त स्थान के स्वामी होने के कारण चन्द्रमा मित्र हुआ । इसी प्रकार सब ग्रहों के अपने अपने मूल त्रिकोण से विचार कर मित्र, सम, शत्रु समझना ॥१५॥

इस प्रकार दोनों उक्त स्थान के स्वामी मित्र, एक उक्त एक अनुक्त स्थान के स्वामी सम और अनुक्त स्थान के स्वामी शत्रु होते है । इस से सिद्ध उदाहरण—

शत्रू मन्द-सितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवे-
स्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः ।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुस्समाश्चापरे ॥१६॥
सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा
सौम्यार्की सुहृदौ समौ कुज-गुरू शुक्रस्य शेषावरी ।
शुक्र-ज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरस्य चाऽन्येऽरयो
ये प्रोक्ताः स्व-त्रिकोणभादिषु पुनस्तेऽमी मया कीर्तिताः॥१७॥

सं०—रवेः मन्दसितौ शत्रू, शशिजः समः, शेषा मित्राणि । शीतगोः (चन्द्रस्य)–तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ, शेषा समाः । कुजस्य–जीवेन्दूष्णकराः सुहृदः, ज्ञः अरिः, सितार्की समौ । बुधस्य–सूर्यसितौ मित्रे, हिमगुः शत्रुः, अपरे च समाः । सूरेः (बृहस्पतेः) सौम्यसितौ अरी, रविसुतो मध्यः, अपरे तु अन्यथा (मित्राणि) । शुक्रस्य सौम्यार्की सुहृदौ, कुजगुरू समौ, शेषौ (रविचन्द्रौ) अरी । सौरस्य (शनेः) शुक्रज्ञौ सुहृदौ, सुरगुरुः समः, अन्ये च अरयः । "स्वत्रिकोणभादिषु" स्वमूलत्रिकोणात् पूर्वं ये प्रोक्तास्ते पुनः मया अमी (एते) कीर्तिताः ॥१६-१७॥

भा०—सूर्य के–शनि शुक्र शत्रु, बुध सम और शेष चन्द्र, मङ्गल, गुरु ये मित्र है । चन्द्रमा के–सूर्य बुध मित्र, तथा शेष सब ग्रह सम है । अर्थात् चन्द्रमा के नैसर्गिक शत्रु नहीं हैं । मङ्गल के–गुरु, चन्द्र, रवि ये मित्र, बुध शत्रु और शुक्र शनि सम हैं । बुध के रवि शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु और बाकी (मङ्गल, गुरु, शनि) सम हैं । बृहस्पति के बुध, शुक्र शत्रु, शनि सम और रवि, चन्द्र, मङ्गल ये मित्र हैं । शुक्र के–बुध शनि मित्र, मङ्गल गुरु सम और शेष (रवि चन्द्र) शत्रु हैं । तथा शनि के–शुक्र, बुध, मित्र, गुरु सम, और अन्य (रवि, चन्द्र, मङ्गल) ये शत्रु हैं । पूर्व "स्वत्रिकोण-

भात्" इत्यादि से जो नैसर्गिक मैत्री कही मैंने फिर से उसी को यहाँ उदाहरण रूप से स्पष्ट कहा है ॥१६-१७॥

यवनोक्त मैत्री चक्र—

ग्रह	र.	चं.	म.	बु.	गु.	शु.	श.
मित्र	गु.	गु.बु.	बु.शु.	च.म.गु. शु.श.	र.चं.बु. शु.श.	मं.बु.गु. श.	बु.गु.शु.
शत्रु	चं.म. बु.शु.श	र.म. शु.श.	र.च. गु.श.	र.	मं.	र.चं.	र.चं.मं.

सत्योक्त नैसर्गिक मैत्री चक्र—

ग्रह	सू.	च.	म.	बु.	गु.	शु.	श.
मित्र	च.म. बृ.	र. बु.	र.च.गु.	र.शु.	र.च. मं.	बु.श.	बु.शु.
सम	बु.	म.गु. शु.श.	शु.श.	म.गु. श.	श.	मं.गु.	गु.
शत्रु	श.श.	×	बु.	चं.	बु.शु.	र.चं.	र.चं. मं.

ग्रहों की तात्कालिक मैत्री—

अन्योऽन्यस्य धनव्ययायसहजव्यापारबन्धुस्थिता-
स्तत्काले सुहृदः स्वतुङ्गभवनेऽप्येकेऽरयस्त्वन्यथा।
दृव्येकानुक्तभपान्सुहृत्समरिपून् सञ्चिन्त्य नैसर्गिकां-
स्तत्काले च पुनस्तु तानधिसुहृन्मित्रादिभिः कल्पयेत्॥१८॥

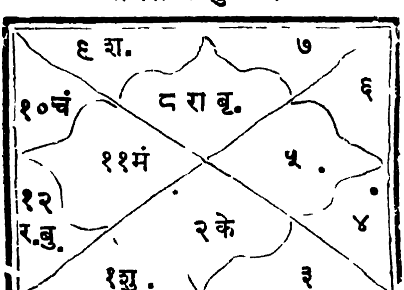
सं०—अन्योन्यस्य धनव्ययाऽऽयसहजव्यापारबन्धुस्थिताः 'ग्रहाः' तत्काले सुहृदः। अन्यथा अरयः। एके (यवनादयः) स्वतुङ्गभवनेऽपि 'स्थिताः सुहृदः' इति कथयन्ति। अथ नैसर्गिकान् दृव्येकानुक्तभपान् 'क्रमेण' सुहृत्-

सम-रिपून् सञ्चिन्त्य, तत्काले च मित्रशत्रून् संचिन्त्य तान् पुनः अधिसुहृन्मित्रादिभिः (अधिमित्र-मित्र-सम-शत्रु-अधिशत्रुभिः) कल्पयेत् ॥१८॥

भा०—जन्म, प्रश्न आदि इष्ट समय में परस्पर द्वितीय द्वादश, तृतीय एकादश और चतुर्थ दशम में स्थित ग्रह तात्कालिक मित्र होते हैं। और अन्य स्थानों में स्थित ग्रह शत्रु होते हैं। किसी (यवन आदि) के मत से अपने उच्च स्थित ग्रह भी मित्र होता है। परञ्च यह आचार्य का अभिप्रेत नहीं है—क्योंकि उन्होंने लघुजातक में "तत्काले च दशायबन्धुसहजस्वान्त्येषु मित्रम्" ऐसा ही कहा है। अब पञ्चधा मैत्री कहते हैं—पूर्व जो दो उक्त स्थान के स्वामी को मित्र, १स्थान के स्वामी को सम और अनुक्त स्थन के स्वामी को शत्रु नैसर्गिक (अर्थात् शत्रू मन्दसितौ इत्यादि) कहे गये हैं उनको विचार कर और तात्कालिक मैत्री भी विचार कर फिर उन्हें अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु और अधिशत्रु इस प्रकार कल्पना (विचार) करना चाहिये ॥ १८ ॥

विशेष--जो ग्रह नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों प्रकार मित्र हो वह अधिमित्र, जो नैसर्गिक सम और तात्कालिक मित्र वह मित्र, जो नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक मित्र वह सम हो जाता है। जो नैसर्गिक सम और तात्कालिक शत्रु वह शत्रु ही होता है। तथा जो दोनों प्रकार से शत्रु हो वह अधिशत्रु होना है।

तात्कालिक कुण्डली-



उदाहरण--तात्कालिक लग्न कुण्डली देखिये सूर्य से १०, ११ १२ और २ द्वितीय स्थान में शनि, चन्द्र, मंगल और शुक्र है इसलिये ये चारों सूर्य के तात्कालिक मित्र हुए। और शेष ग्रह बुध और बृहस्पति ये दो शत्रु हुए। इसी प्रकार सब ग्रहों के अपने अपने स्थान से विचार कर चक्र में दिये जाते हैं। यथा—

तात्कालिक मैत्री चक्र—

ग्रह	सू.	च.	म.	बु.	बृ.	शु.	श.
मित्र	श.चं. मं.शु.	र.म. बु.शु. गु.श.	र.च. बु गु. शु.श.	च म.शु. श	च.मं. श.	र.च. मंबु.	र.च मं.बु. बृ.
शत्रु	बु.बृ.	+	+	बृ.र.	र.बु. शु.	बृ.श.	शु.

अब यहाँ चद्रमा और मङ्गल नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों प्रकार से मित्र हैं अतः ये दोनों सूर्य के अधिमित्र हुए। तथा बुध नैसर्गिक सम और तात्कालिक शत्रु है इस लिये शत्रु ही हुआ। एवं बृहस्पति नैसर्गिक मित्र तात्कालिक शत्रु होने से सम हुआ। शुक्र शनि नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक मित्र होने से सम हुए। इसी प्रकार तात्कालिक और नैसर्गिक चक्र से विचार कर सब ग्रहों का—

पञ्चाधा मैत्री चक्र—

ग्रह	सू.	च.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
अ.मि.	चं.मं.	र.बु.	च. गु.र.	शु.	चं.म.	बु.	बु.
मित्र	०	म.गु. शु.श.	शु.श.	मं.श.	श.	म.	र.चं मं.गु.
सम	बृ.शु. श.	+	बु.	र.च.	र.	र.च. श.	शु.
शत्रु	बु.	+	+	गु.	+	गु.	+
अ.श.	+	+	+	+	बु.शु.	+	+

ग्रहोंका स्थान बल और दिग्बल—

स्वोच्चसुहृत्स्वत्रिकोणनवांशैः स्थानबलं स्वगृहोपगतैश्च ।
दिक्षु बुधाङ्गिरसौ रवि-भौमौ सूर्यसुतः सितशीतकरौ च॥१९॥

सं०—स्वोच्चहृत्स्वत्रिकोणनवांशैः स्वगृहोपगतैश्च स्थानबलं भवति । दिक्षु (लग्न-दशम-सप्तम-चतुर्थ-भावरूप-पूर्व-दक्षिण-पश्चिमोत्तरदिशासु) 'क्रमेण' बुधाङ्गिरसौ, रविभौमौ, सूर्यसुतः, सितशीतकरौ च बलिनौ भवतः । यथा—लग्ने तत्समीपे वा बुधगुरू, एवं दशमे रविभौमौ, सप्तमे शनिः, चतुर्थे शुक्रचन्द्रौ बलयुतौ इत्यर्थः ॥१६॥

भा०—अपने उच्च, मित्र की राशि, अपने त्रिकोण, (मूलत्रिकोण) अपने नवांश, और अपने गृह इन में किसी एक में भी ग्रह के रहने से स्थानबल होता है । और बुध बृहस्पति पूर्वमें, रवि मङ्गल दक्षिण में, शनि पश्चिम् में और शुक्र चन्द्रमा उत्तर दिशा में बली होते हैं । यह दिग्बल कहलाता है ॥१६॥

वि०—कुण्डली देखिये-प्रथमलग्न पूर्व, दशमलग्न दक्षिण, सप्तमलग्न पश्चिम, और चतुर्थ लग्न उत्तर दिशा है । कहा भी है-"यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद् गृहाद्यमिह लग्नमुच्यते। प्राचि, पश्चिमकुजेऽस्तलग्नकं मध्यलग्नमिति दक्षिणोत्तरे ॥" इसलिये बुध बृहस्पति लग्न में, रवि मंगल दशम में शनि सप्तम में और चन्द्रमा शुक्र चतुर्थ लग्न में बली होते हैं । अर्थात् विरुद्ध दिशा में निर्बल होते हैं । इस लिये मध्य में अनुपात से "मन्दाल्लग्नमिनात्कुजाच्च हिबुकं" इत्यादि प्रकार से केशवीय जातकपद्धति में स्पष्ट बल साधन किया गया है ॥१६॥

अयनबल और चेष्टाबल—

उदगयने रविशीतमयूखौ वक्रसमागमगाः परिशेषाः ।
विपुलकरा युधि चोत्तरसंस्थाश्चेष्टितवीर्ययुताः परिकल्प्याः॥२०

सं०—रविशीतमयूखौ उदगयने (मृगादिषट्के) बलिनौ, परिशेषाः

वक्रसमागमगाः 'बलिनः' ।—विपुलकराः, युधि उत्तरसंस्थाश्च बलिनो भवन्ति । इति चेष्टितवीर्ययुताः परिकल्प्याः ॥२०॥

भा०—सूर्य और चन्द्रमा उत्तरायण में, और शेष मङ्गलादि ५ ग्रह वक्रगति और समागम (चन्द्रमा के साथ) होने पर बली होते हैं। और जो ग्रह विपुल (अधिक) किरण वाले हों तथा जो ग्रह युद्ध में उत्तर दिशा में हों वे बली होते हैं। इस प्रकार के बलवाले ग्रह को चेष्टाबली समझना चाहिये ॥२०॥

वि०—"दिवाकरेणास्तमयः समागमः शीतरश्मिसहितानाम् । कुसुतादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम् ।" सूर्य के साथ होने से अस्त, और मङ्गलादिक ग्रह चन्द्रमासे युक्त होते तो समागम कहलाता है। तथा मङ्गलादि ग्रह परस्पर युक्त होते है तो युद्ध कहलाता है। उन में उत्तर वाला ग्रह बली समझा जाता। केवल शुक्र विपुल किरण वाला हो तो दक्षिण में रहने पर भी बली समझा जाता है। यथा पुलिशाचार्य—"सर्वे जयिन उदक्स्था दक्षिणदिक्स्थो जयी शुक्रः"। ग्रहो का शीघ्रकेद्र द्वितीयपद में हो तो विपुल किरण होता है ॥२०॥

ग्रहो के कालबल और निसर्गबल—

निशि शशिकुजसौराः सर्वदा ज्ञोऽह्नि चान्ये
बहुलसितगताः स्युः क्रूरसौम्याः क्रमेण ।
द्व्ययनदिवसहोरामासपैः कालवीर्यं
शकुबुगुशुचराद्या वृद्धितो वीर्यवन्तः ॥२१॥

इत्यवन्तिकाचार्यवराहमिहिरविरचिते बृहज्जातके
ग्रहभेदाध्यायो द्वितीयः ॥२॥

सं०—शशिकुजसौराः निशि, ज्ञः सर्वदा, अन्ये (कुजगुरुशुक्राः) अह्नि दिने बलिनो भवन्ति। तथा क्रूरसौम्याः 'क्रमेण' बहुलसितगताः (क्रूरा बहुले कृष्णे, शुभग्रहाः सिते पक्षे) बलिनो भवन्ति। द्व्ययनदिवसहोरामा-

सर्पैः कालवीर्यं भवति । श-कु-बु-गु-शु-च-राद्या (श-कु-बु-गु-शु-च-रा' इति वर्णा आद्या येषां ते तथोक्ताः शनि कुज-बुध-गुरु-शुक्र-चन्द्र-रवय इत्यर्थः) वृद्धितो (यथोत्तरं) बलिनो भवन्ति ॥२१॥

भा०—चन्द्र, मंगल, शनि ये रात्रि में, बुध सर्वदा, शेषग्रह (रवि बृहस्पति-शुक्र) ये दिन में बली होते हैं। तथा पाप ग्रह बहुल (कृष्ण) पक्ष में, और शुभग्रह शुक्ल पक्ष में बली होते हैं। द्वयन (वर्ष) का स्वामी वर्ष में, दिन का स्वामी दिन में, होरा का स्वामी होरा में, मास का स्वामी मास में बली होते हैं यह कालबल कहलाता है। अब नैसर्गिक बल कहते है-श (शनि), कु (कुज=मंगल), बु (बुध), गु (गुरु), शु (शुक्र) च (चन्द्रमा) और र (रवि) ये क्रम से बली है ॥२१॥

वि०--प्रयोजन—"उच्चबलेन समेतः परां विभूतिं ग्रहः प्रसाधयति । पुंसां त्रिकोणबलाः साचिव्यं बलपतित्वं च ॥ स्वर्क्षबलेन च सहितः प्रमुदित-धनधान्यसम्पदाक्रान्तम् । मित्रभबलसंयुक्तो जनयति कीर्त्यान्वितं पुरुषम् ॥ तेजस्विनमति सुखिनं सुस्थिरभावं नृपाच्च लब्धधनम् । स्वनवांशकबलयुक्तः करोति पुरुषं प्रसिद्धं च ॥ आशाबलसमवेतो नयति स्वदिशं ग्रहेश्वरः पुरुषम् । नीत्वा वस्त्रविभूषणवाहनसौख्यान्वितं कुरुते ॥ क्वचिद्राज्यं क्वचित् पूजां क्वचिद्द्रव्यं क्वचिद्यशः । ददाति विहगश्चित्रं चेष्टावीर्यसमन्वितः ॥" इत्यादि ग्रहबलों का फल ग्रन्थान्तर में प्रसिद्ध है ॥ २१ ॥

इति बृहज्जातकटीकायां तत्त्वार्थदीपिकायां ग्रहस्वरूपाध्यायः ॥ २ ॥

अथ वियोनिजन्माध्यायः ॥ ३ ॥

पशु पक्षी वृक्ष आदि वियोनिजन्म का ज्ञान—

क्रूरग्रहैः सुबलिभिर्विबलैश्च सौम्यैः
क्लीबे चतुष्टयगते तदवेक्षणाद्वा ।
चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपं
सत्त्वं वदेद्यदि भवेत्स वियोनिसंज्ञः॥ १ ॥

सं०—क्रूरग्रहैः सुबलिभिः, सौम्यैः विबलैः, क्लीबे (नपुंसकग्रहे) चतुष्टयगते, वा तदवेक्षणाद् (तस्य नपुंसकग्रहस्य बुधस्य वा शनेर्दर्शनात्) चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपं (चन्द्र उपगतो यस्मिन् द्विरसभागे द्वादशांशे तत्सदृशस्वरूपं) सत्त्वं वदेत् । यदि स (चन्द्रोपगद्विरसभागः) वियोनिसंज्ञो द्विपदराशिभिन्नो (जलचरकीटचतुष्पदाख्यो) भवेत् । तदैव वियोनिजन्म वाच्यमन्यथा नेत्यर्थः ॥ १ ॥

भा०—सब पाप ग्रह बली हो, और सब शुभ ग्रह निर्बल हो, तथा बुध शनि केन्द्र में हो तो—इस योग में जिस प्रकार के द्विरसभाग (द्वादशांश) में चन्द्रमा हो उसी प्रकार प्राणियों का स्वरूप कहना । यदि वह (द्वादशांश) वियोनिसंज्ञक (द्विपद से भिन्न) राशि हो तो वियोनि का जन्म समझना । अथवा पापग्रह बली और शुभग्रह निर्बल हो और बुध वा शनि से दृष्ट लग्न हो तो भी वियोनि का जन्म कहना, यदि चन्द्रमा वियोनि संज्ञक द्वादशांश में हो । अर्थात् चन्द्रमा द्विपद द्वादशांश में हो तो द्विपद का ही जन्म समझना ॥ १ ॥

वि०—"क्रूरैः सुबलसमेतैर्विबलैः सौम्यैर्वियोनिभागगते । चन्द्रे सगनौ केन्द्रे तदीक्षिते वोदये वियोनिः स्यात् ॥ मेषे शशी तदंशे छागादिप्रसवमाहुराचार्याः । गोमहिषाणां गोऽशे नररूपाणां च मिथुनांशे ॥" इत्यादि । अर्थात् चन्द्रमा मेष के द्वादशांश में हो तो छाग, मेढ़ा आदि का जन्म, वृष का अंश हो तो गाय भैंस आदि, कर्क के अंश में हो तो केकड़ा, कछुआ आदि, सिंह के द्वादशांश में हो तो बाघ, सिंह बिलार आदि, वृश्चिक के द्वादशांश में हो तो बिच्छू सर्प आदि, धनु के उत्तरार्ध में घोड़े गदहे आदि, मकर के पूर्वार्ध में हरिण आदि, उत्तरार्ध में गोह आदि जलजन्तु, और मीन के अंश में हो तो मछली आदि जल जन्तु का जन्म समझना । अर्थात् मिथुन कन्या आदि शेष द्विपद राशि के द्वादशांश में चन्द्रमा हो तो मनुष्य का समझना ॥ १ ॥

पापा बलिनः स्वभागगाः पारक्ये विबलाश्च शोभनाः ।

लग्नं च वियोनिसंज्ञकं दृष्ट्वा वाऽपि वियोनिमादिशेत् ॥२॥

सं०—पापा बलिनः स्वभागगाः स्वनवमांशे स्थिताः, तथा शोभनाः शुभग्रहाः विबलाः पारक्ये परनवमांशे स्थिताः, अत्रापि च वियोनिसंज्ञकं (द्विपदभिन्नं) लग्नं दृष्ट्वा वियोनिं आदिशेत् ॥ २ ॥

भा०—पापग्रह बली होकर अपने नवांश में हो और शुभग्रह निर्बल होकर दूसरे के नवांश में हो और वियोनि (द्विपदभिन्न) राशि लग्न हो तो ऐसे योग में चन्द्रोपगत द्वादशांश के (चन्द्रमा जिस राशि के नवांश में हो उसके) समान स्वरूप वियोनि का जन्म समझना ॥ २ ॥

पश्वादि जन्तुओं के राश्यात्मक अङ्गविभाग—

क्रियः शिरो वक्त्रगलो वृषोऽन्ये पादांसकं पृष्ठमुरोऽथ पार्श्वे ।
कुक्षिस्त्वपानांघ्र्यथ मेढ्रमुष्कौ स्फिक्पुच्छमित्याह चतुष्पदाङ्गे ॥

सं०—क्रियः शिरः, वृषो वक्त्रगलः, अन्ये (मिथुनादयः) 'क्रमेण' पादांसकं, पृष्ठं, उरः, अथ पार्श्वे, कुक्षिः, अपानांघ्री, अथ मेढ्रमुष्कौ, स्फिक्, पुच्छम्, इति चतुपदाङ्गे (वियोनिदेहे) आह ॥३॥

भा०—१ मेष मस्तक, २ वृष मुख और गला, ३ मिथुन अगले पैर और कन्धा, ४ कर्क पीठ, ५ सिंह छाती, ६ कन्या दोनों पार्श्व (पांजर), ७ तुला पेट, ८ वृश्चिक अपान (गुदमार्ग), ९ धनु पिछले पैर, १० मकर लिङ्ग और अण्डकोश, ११ कुम्भ स्फिक् (पूठ), १२ मीन पुच्छ । इस प्रकार चतुष्पद के अङ्ग में राशियों का विभाग कहा गया है ॥ ३ ॥

वि०—शुभ, अशुभ ग्रह के योग से वियोनि के अङ्गों की पुष्टि और हानि समझना ॥ ३ ॥

वियोनि का वर्णज्ञान—

लग्नांशकाद्ग्रहयोगेक्षणाद्वा वर्णान् वदेद्बलयुक्ताद्वियोनौ ।
दृष्ट्या समानान् प्रवदेत् स्वसंख्यया रेखां वदेत् स्मरसंस्थैश्च पृष्ठे॥

सं०—लग्नांशकाद् वा ग्रहयोगेक्षणाद् वा बल्युक्ताद् ग्रहाद् वा दृष्ट्या

समानान् वियोनौ वर्णान् वदेत् । स्मरसंस्थैः सप्तमभावगतैः 'ग्रहैश्च' स्वसंख्यया (तत्तद्ग्रहसमां) पृष्ठे रेखां (चिह्नं) प्रवदेत् ॥४॥

भा०—लग्न के नवांश से वियोनि का वर्ण कहना चाहिये। यदि लग्न में किसी ग्रह का योग हो तो उस ग्रह के समान वर्ण कहना। यदि लग्न में ग्रह नहीं हो और जिस किसी ग्रह की लग्न पर दृष्टि हो तो उसी के समान वर्ण कहना। यदि लग्न में बहुत ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो सबसे बली ग्रह के समान वर्ण कहना वा जितने ग्रह की दृष्टि हो उतने ही वर्ण कहना। तथा सप्तम भाव में जितने ग्रह हों उतनी ही रेखा (चिह्न) वियोनि के पृष्ठ (बाहर अङ्ग) अर्थात् सप्तम भाव की राशि जिस अङ्ग की हो उस पर कहना चाहिये ॥ ३ ॥

वि०—"सप्तमसंस्थाः कुर्युः पृष्ठे रेखा स्ववर्णसमाम् ।
वीक्षन्ते यावन्तो वियोनिवर्णाश्च तावन्तः ॥" इति सारावली ॥४॥

पक्षिजन्मज्ञान—

खगे दृक्काणे बलसंयुतेन वा ग्रहेण युक्ते चरभांशकोदये ।
बुधांशके वा विहगाः स्थलाम्बुजाःशनैश्चरेन्द्वीक्षणयोगसम्भवाः

सं०—खगे दृकाणे (पक्षिद्रेष्काणे) 'उदये' वा चरभांशकोदये वा बुधांशके उदये (लग्नगते) बलसयुतेन ग्रहेण युते सति, शनैश्चरेन्द्वीक्षणयोगसम्भवाः 'क्रमेण' स्थलाम्बुजा विहगाः शनैश्चरस्य दृष्टिर्योगो वा चेत् तदा स्थलजाः (पिकमयूरादयः) चन्द्रस्य दृष्टिर्योगो वा चेत्तदा जलजाः (हंसादयः) पक्षिणो वाच्याः ॥ ५ ॥

भा०—लग्न में पक्षी द्रेष्काण हो, वा चर राशि का नवांश हो वा बुध का नवांश हो और बलवान् ग्रह से युक्त हो और उस पर शनि की दृष्टि या योग हो तो स्थल पक्षी, यदि चद्रमा की दृष्टि या योग हो तो जल पक्षी का जन्म कहना। यदि शनि चन्द्रमा दोनों की दृष्टि या योग हो तो जल और थल दोनों स्थान में रहनेवाला पक्षी समझना यह अर्थ से सिद्ध होता है ॥

वि०—पक्षीद्रेष्काण मिथुन का द्वितीय, सिंह का प्रथम, तुला का द्वितीय कुम्भ का प्रथम, यह द्रेष्काणाध्याय में द्रेष्काण के स्वरूप में कहा गया है ॥ ५ ॥

वृक्षजन्मज्ञान—

होरेन्दुसूरिरविभिर्विबलैस्तरूणा-
न्तोये स्थले तरुभवोंऽशकृतः प्रभेदः ।
लग्नाद् ग्रहः स्थलजलर्क्षपतिस्तु यावां-
स्तावन्त एव तरवः स्थलतोयजाताः ॥६॥

सं०—'जन्मकाले प्रश्नकाले वा' होरेन्दुसूरिरविभिर्विबलैः तरूणां 'जन्म वाच्यम्' । तोये (जले), स्थले वा तरुभवः प्रभेदः अंशकृतो ज्ञेयः । (जलचरनवांशे जलगताः, स्थलचरनवमांशे स्थलगतास्तरवो वाच्या इत्यर्थः) स्थलजलर्क्षपतिर्ग्रहः लग्नाद् यावान् (यावत्संख्यराशौ स्थितः) तावन्त एव स्थलतोयजातास्तरवो वाच्याः ॥६॥

भा०—लग्न, चन्द्रमा, बृहस्पति रवि ये निर्बल हो तो वृक्षो का जन्म समझना । जल सम्बन्धी या स्थल सम्बन्धी वृक्ष का प्रभेद नवांश से समझना । अर्थात् जलचर नवांश हो तो जल समीप का, स्थल राशि नवांश हो तो स्थल का वृक्ष समझना । वह जलचर या स्थलचर नवांश का स्वामी लग्न से जितने संख्या आगे राशि में हो उतने ही जल या स्थल के वृक्ष कहना ॥

वि०—नवांशपति अपने उच्च में या वक्र हो तो संख्या को ३ गुना करना, यदि वर्गोत्तम नवांश या स्वनवांश स्वराशि स्वद्रेष्काण में हो तो द्विगुणित संख्या समझना ॥६॥

नवांश स्वामियो से वृक्ष के प्रभेद का ज्ञान—

अन्तःसारान् जनयति रविर्दुर्भगान् सूर्यसूनुः
क्षीरोपेतांस्तुहिनकिरणः कण्टकाढ्यांश्च भौमः ।
वागीशज्ञौ सफलविफलान् पुष्पवृक्षांश्च शुक्रः

स्निग्धानिन्दुः कटुकविटपान् भूमिपुत्रश्च भूयः ॥७॥

सं०—रविः (सूर्यो नवांशपतिश्चेत् तदा) अन्तःसारान् वृक्षान् जनयति। सूर्यसूनुः दुर्भगान्, तुहिनकिरणः (चन्द्रः) क्षीरोपेतान्, भौमः कण्टकाढ्यान्, वागीश-ज्ञौ 'क्रमेण' सफलविफलौ वृक्षौ, शुक्रः पुष्पवृक्षान् जनयति। च (पुनः) इन्दुः स्निग्धान्, भूमिपुत्रश्च भूयः (पुनः) कटुकविटपान् निम्बमरिचादिवृक्षान् जनयति ॥७॥

भा०—नवांशपति सूर्य हो तो मध्य में सारवाले (साखू आदि) वृक्षों का, शनि खराब (दुर्गन्धादियुत) वृक्षों का, चन्द्रमा दूधवाले वृक्षों का, मंगल कांटेवाले वृक्षों का, गुरु फलवाले वृक्षों का, बुध बिना फलवाले वृक्षों का, शुक्र पुष्पो के वृक्षो का उत्पादक है। और जितने चिकने वृक्ष है उनका भी उत्पादक चन्द्रमा, तथा सब कड़ुवे निम्ब आदि वृक्षो का उत्पादक मंगल है ॥७॥

वृक्षों का स्थान—

शुभोऽशुभर्क्षे रुचिरं कुभूमिजं करोति वृक्षं विपरीतमन्यथा।
परांशके यावति विच्युतः स्वकाद्भवन्ति तुल्यास्तरवस्तथाविधाः

इति बृहज्जातके वियोनिजन्माध्यायस्तृतीयः ॥३॥

सं०—शुभः (शुभग्रहः) अशुभर्क्षे पाराराशौ 'स्थितः' रुचिरं मनोहर वृक्षं कुभूमिजं (कुत्सितभूमिगतं) करोति। अन्यथा। विपरीतं करोति। (अंशपतिर्ग्रहः) स्वकात् (स्वनवांशात्) यावति विच्युतो (यावत्संख्ये नवांशे स्थितः) तत्तुल्यास्तथाविधास्तरवो भवन्ति ॥८॥

भा०—अंशपति ग्रह शुभ हो और अशुभ राशि में हो तो सुन्दर वृक्ष खराब भूमि में, अन्यथा विपरीत समझना, (अर्थात् पापग्रह शुभराशि में हो तो खराब वृक्ष सुन्दर भूमि में, तथा शुभग्रह शुभराशि में हो तो सुन्दर वृक्ष सुन्दर भूमि में, एवं पापग्रह पापराशि में हो तो खराब वृक्ष खराब भूमि में समझना)। तथा अंशपति ग्रह अपने नवांश से जितने नवांश

आगे हों उतने तुल्य और उतने ही प्रकार (स्थल वा जल) के वृक्ष होते है ॥

वि०—सारावली–"स्वांशात् परांशगामिषु यावत्संख्या भवन्ति तावन्तः।
स्थलजा वा जलजा वा तरवः प्राक्संख्यया वाच्याः ॥८॥

इति बृहज्जातकटीकायां तत्त्वार्थदीपिकायां वियोनिजन्माध्यायः ॥३॥

अथ निषेकाध्यायः ॥४॥

ऋतु (मासधर्म) निरूपण और स्त्रीपुरुषसंयोगज्ञान—

कुजेन्दुहेतु प्रतिमासमार्तवं गते तु पीडर्क्षमनुष्णदीधितौ ।
अतोऽन्यथास्थे शुभपुंग्रहेक्षिते नरेण संयोगमुपैति कामिनी ॥१॥

सं०—अनुष्णादीधितौ (चन्द्रे) पीडर्क्षङ्गते (स्त्रीजन्मराशितोऽनुपचय-राशिस्थे) सति प्रतिमासं कुजेन्दुहेतु (कुज इन्दुश्च हेतुर्यस्य तत्) आर्तव (रजः) भवति । अतोऽन्यथास्थे (पुरुषराशित उंपचयस्थे) चन्द्रे शुभपुं-ग्रहेक्षिते सति कामिनी नरेण संयोगं (मैथुन) उपैति ॥ १ ॥

भा०—प्रत्येक मास में मङ्गल और चन्द्र हेतुक स्त्रियों को ऋतुधर्म होता है । यदि स्त्री की जन्मराशि से अनुपचयस्थान में चन्द्रमा हो—और मङ्गल से दृष्ट हो तो गर्भधारणक्षम ऋतु होता है । और इससे अन्यथा (अर्थात् पुरुषराशि से उपचयस्थान ३।६।१०।११ में) चन्द्रमा हो तथा शुभ पुरुषग्रह (गुरु) से दृष्ट हो तो स्त्री को पुरुष का संयोग होता है ॥१॥

वि०—"स्त्रीणां गतोऽनुपचयर्क्षमनुष्णरश्मिः संदृश्यते यदि धरातनयेन तासाम् । गर्भग्रहार्तवमुशन्ति तदा न वन्ध्यावृद्धातुराल्पवयसामपि चैतदिष्टम् इति ।

तथा—"पुरुषोपचयगृहस्थो गुरुणा यदि दृश्यते हिममयूखः ।
स्त्रीपुरुषसंप्रयोगं तदा वदेदन्यथा नैव ॥ इति ॥ १ ॥"

मैथुनप्रकार का ज्ञान—

यथास्तराशिर्मिथुनं समेति तथैव वाच्यो मिथुनप्रयोगः ।

असद्ग्रहालोकितसंयुतेऽस्ते सरोष इष्टैः सविलासहासः ॥२॥

सं०—'आधानलग्नात् प्रश्नलग्नाद् वा' अस्तराशिर्यथा मिथुनं समेति तथैव मिथुनप्रयोगो (सुरतविधिः) वाच्यः । अस्ते (सप्तमभावे) असद्ग्र-॰हालोकितसंयुते सति सरोषः, इष्टैः (शुभग्रहैः) आलोकितसंयुते सति सविलासहासो मिथुनप्रयोगो वाच्यः ॥ २ ॥

भा०—गर्भाधानलग्न या प्रश्नलग्न से सप्तमराशिसदृश जन्तु जिस प्रकार मैथुन करता है उसी प्रकार मैथुन का प्रयोग कहना। सप्तम भाव यदि पाप-ग्रह से युत दृष्ट हो तो कलह पूर्वक, यदि शुभ ग्रह से युत दृष्ट हो तो हास-विलास पूर्वक मैथुन का प्रयोग कहना ॥ २ ॥

गर्भसम्भवयोग—

रविन्दु-शुक्राऽवनिजैः स्वभागगैर्गुरौ त्रिकोणोदयसंस्थितेऽपि वा।
भवत्यपत्यं हि विबीजिनामिमे करा हिमांशोर्विदृशामिवाऽफलाः॥

सं०—रवीन्दुशुक्रावनिजैः (सूर्यचन्द्रशुक्रमङ्गलैः) स्वभागगैः, स्वनवा-शगतैः अपि वा गुरौ त्रिकोणोदयसंस्थिते नवमपञ्चमलग्नगते सति अपत्य (सन्ततिः) भवति हि। इमे 'योगाः' विदृशां अन्धानां हिमांशोः करा इव विबीजिनां नपुंसकानां अफला भवन्ति ॥ ३ ॥

भा०—रवि, चन्द्रमा, शुक्र और मङ्गल ये अपने नवांश में हो, अथवा बृहस्पति त्रिकोण वा लग्न में हो तो निश्चय सन्तान (गर्भसंभव) होता है। ये योग—जैसे अन्धे को चन्द्रमा के किरण निष्फल होते है वैसे निर्वीर्य (नपुंसक) लोगों को ही निष्फल होते है ॥ ३ ॥

वि०—लघुजातके–"बलयुक्तौ स्वगृहांशेष्वर्कसितावुपचयर्क्षगौ पुंसाम्। स्त्रीणां वा कुजचन्द्रौ यदा तदा गर्भसम्भवो भवति ॥ स्पष्टार्थ॥३॥

आधानलग्न से स्त्री पुरुष का शुभाशुभ फल का ज्ञान—

दिवाकरेन्द्वोः स्मरगो कुजाऽर्कजो गदप्रदो पुरुषयोषितोस्तदा।
व्ययस्वगौ मृत्युकरौ युतौ तथा तदेकदृष्ट्या मरणाय कल्पितौ॥४॥

सं०—यदि दिवाकरेन्द्वोः (रविचन्द्राभ्यां) कुजार्कजौ स्मरगौ सप्तमभावस्थौ तदा 'क्रमेण' पुंगलयोषितोः (सूर्यात् सप्तमगौ पुरुषस्य, चन्द्रात् सप्तमगौ तत्स्त्रियः) गदप्रदौ रोगकारकौ भवतः । व्ययस्वगौ द्वितीयद्वादशस्थौ कुजार्कजौ तदा तयोः—मृत्युकरौ भवतः । तथा 'दिवाकरेन्दू 'कुजार्कजयोः' एकेन युतौ तदेकदृष्ट्या मरणाय कल्पितौ ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य से सप्तम में शनि मङ्गल हो तो पुरुष के लिये और चन्द्रमा से सप्तम में हो तो स्त्री के लिये रोगप्रद होते हैं। तथा सूर्य से (१२।२) में मङ्गल शनि पुरुष के और चन्द्रमा से १२।२ में हो तो स्त्री के लिये मृत्युकारक होते है। तथा मङ्गल शनि इन दोनों में से किसी एक से युत और एक से दृष्ट सूर्य हो तो पुरुष के, एवं उन्हीं दोनों (मङ्गल शनि) में किसी एक से युत और एक से दृष्ट चन्द्रमा हो तो स्त्री के लिये मरणकारक होते है ॥ ४ ॥

वि०—उक्त योग में शनि मंगल में जो विशेष बली हो उसके मास में फल कहना ॥ ४ ॥

गर्भस्थ जातक के पिता आदि का शुभाशुभ—

दिवार्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ शनैश्चरेन्दू निशि तद्विपर्ययात् ।
पितृव्य-मातृष्वसृसंज्ञितौ च ता-वथौजयुग्मर्क्षगतौ तयोः शुभौ ॥

सं०—दिवा 'निषिक्तस्य, जातस्य वा' अर्कशुक्रौ 'क्रमेण' पितृमातृसंज्ञितौ भवतः । निशि शनैश्चरेन्दू पितृमातृसंज्ञितौ भवतः । तद्विपर्ययात् (दिने शनैश्चरेन्दू , रात्रौ च अर्कशुक्रौ क्रमेण) पितृव्य-मातृष्वसृसंज्ञितौ च भवतः । तौ ओजयुग्मर्क्षगतौ (पितृसंज्ञितो विषमराशिगतो मातृसंज्ञितो युग्मराशिगतः 'क्रमेण') तयोः (मातापित्रोः) शुभौ भवतः । अन्यथाऽशुभौ, इत्यर्थात् सिद्ध्यति ॥ ५ ॥

भा०—दिन में गर्भाधान वा जन्म हो तो सूर्य पितृसंज्ञक और शुक्र मातृसंज्ञक, तथा रात्रि में हो तो शनि पितृसंज्ञक और चन्द्रमा मातृसंज्ञक होते हैं। इसके विपरीत पितृव्य और मातृष्वसृ संज्ञक होते हैं। अर्थात्

दिन में शनि पितृव्य (चाचा आदि) चन्द्रमा मातृष्वसृ (मौसी आदि) संज्ञक, तथा रात्रि में गर्भाधान होने से सूर्य पितृव्य, और शुक्र मातृष्वसृ संज्ञक होते हैं। इनमें पितृसंज्ञक और पितृव्यसंज्ञक यदि विषमराशि हों तो पिता और पितृव्य (चाचा आदि) को शुभ देते हैं, तथा मातृसंज्ञक और मातृष्वसृसंज्ञक ग्रह सम राशि में हों तो माता और मौसी आदि को शुभ देते हैं। अर्थात् इससे अन्यथा अशुभ होते हैं ॥ ५ ॥

गर्भाधानकालिक लग्न से स्त्री का मरण योग—

अभिलषद्भिरुदयर्क्षमसद्भिर्मरणमेति शुभदृष्टिमयातैः ।
उदयराशिसहिते च यमे स्त्री विगलितोडुपतिभूसुतदृष्टे ॥६॥

सं०—असद्भिः (पापग्रहैः) उदयर्क्षमभिलषद्भिः मार्गगत्या द्वादशभवनान्तिमांशस्थैः शुभदृष्टिमयातैः (अप्राप्तैः) स्त्री मरणमेति । यमे (शनैश्चरे) उदयराशिसहिते लग्नगते विगलितोडुपतिभूसुतदृष्टे क्षीणचन्द्रकुजदृष्टे च स्त्री मरणमेति (मृत्युं प्राप्नोति) ॥ ६ ॥

भा०—पापग्रह लग्न जानेका अभिलाषी हो (अर्थात् अन्तिम अंश में द्वादशभाव में मार्गी हो) और शुभग्रह से अदृष्ट हो तो गर्भवती स्त्री का मरण होता है। अथवा गर्भाधानलग्न में शनि हो और क्षीणचन्द्र तथा मंगल इन दोनों से देखा जाता हो तो भी स्त्री का मरण होता है ॥ ६ ॥

पापद्वयमध्यसंस्थितौ लग्नेन्दू न च सौम्यवीक्षितौ ।
युगपत् पृथगेव वा वदेन्नारी गर्भयुता विपद्यते ॥७॥

सं०—लग्नेन्दू पापद्वयमध्यसंस्थितौ सौम्यवीक्षितौ शुभग्रहदृष्टौ च न 'स्यातां तदा युगपत् वा पृथगेव गर्भयुता नारी विपद्यते (म्रियते) इति वदेत् ॥ ७ ॥

भा०—लग्न और चन्द्रमा ये दोनों एक साथ या अलग अलग पापग्रहों के मध्य में हों और शुभग्रह से दृष्ट नहीं हों तो गर्भ सहित स्त्री का मरण कहना चाहिये। अर्थात् शुभग्रह से दृष्ट हो तो मरण नहीं होता है ॥

क्रूरैः शशिनश्चतुर्थगैर्लग्नाद्वा निधनाश्रिते कुजे ।
बन्ध्वन्त्यगयोः कुजार्कयोः क्षीणेन्दौ निधनाय पूर्ववत् ॥८॥

सं०—शशिनः (चन्द्रात्) वा लग्नात् क्रूरैः चतुर्थगैः, कुजे निधनाश्रिते अष्टमभावस्थे, वा कुजार्कयोः बन्ध्वन्त्यगयोः चतुर्थद्वादशभावगतयोः, क्षीणेन्दौ च सति पूर्ववत् निधनाय योगो' भवति ॥ ८ ॥

भा०—लग्न से वा चन्द्रमा से पापग्रह चतुर्थ में और मंगल अष्टम में हों, या चतुर्थ भाव में मंगल और द्वादश में सूर्य हो और चन्द्रमा क्षीण हो तो ये योग पूर्ववत् (गर्भयुत स्त्री के) मरणकारक होते हैं ॥ ८ ॥

उदयास्तगयोः कुजार्कयोर्निधनं शस्त्रकृतं वदेत्तदा ।
मासाधिपतौ निपीडिते तत्काले स्रवणं समादिशेत् ॥९॥

सं०—कुजार्कयोः 'क्रमेण' उदयास्तगयोः लग्नसप्तमस्थयोः शस्त्रकृतं निधनं गर्भिण्या मरणं वदेत् । तथा मासाधिपतौ निपीडिते सति तत्काले तन्मासे स्रवणं (गर्भपतनं) समादिशेत् ॥ ९ ॥

भा०—लग्न में मङ्गल, सप्तम में सूर्य हो तो शस्त्र के द्वारा गर्भिणी का मरण कहना। और गर्भ के जिस महीने का स्वामी निपीडित (युद्ध में पराजित, केतु से अभिधूमित आदि) हो तो उस महीने में गर्भ का पतन कहना ॥९॥

शशाङ्कलग्नोपगतैः शुभग्रहैस्त्रिकोणजायार्थसुखास्पदस्थितैः ।
तृतीयलाभर्क्षगतैश्च पापकैः सुखी तु गर्भो रविणा निरीक्षितः ॥

सं०—शुभग्रहैः शशाङ्कलग्नोपगतैः, वा त्रिकोजायार्थसुखास्पदस्थितैः, पापकैः पापग्रहैश्च तृतीयलाभर्क्षगतैः पुनः लग्नं चन्द्रो वा रविणा निरीक्षितस्तदा गर्भः सुखी (पुष्टः) स्यात् ॥ १० ॥

भा०—चन्द्रमा या लग्न के साथ शुभग्रह हो, वा लग्न और चन्द्र से ५।९।७।२।४।१० इन स्थान में शुभग्रह और ३।११ स्थान में पापग्रह हो और लग्न वा चन्द्र पर रवि की दृष्टि हो तो गर्भ सुखी (पुष्ट) होता है ॥१०॥

गर्भाधान या प्रश्नलग्न से पुत्र-कन्या जन्म ज्ञान—

ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिः
पुंजन्म प्रवदेत्समांशकगतैर्युग्मेषु वा योषितः।
गुर्वर्कौ विषमे नरं शशिसितौ वक्रश्च युग्मे स्त्रियं
द्व्यङ्गस्था बुधवीक्षिताश्च यमलौ कुर्वन्ति पक्षे स्वके ॥११॥

सं०—बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिः ओजर्क्षे विषमराशौ पुरुषांशकेषु विषमराशिनवांशेषु च स्थितैः पुंजन्म प्रवदेत्। तथा तैः (लग्नार्कगुर्विन्दुभिः) समांशकगतैर्युग्मेषु स्थितैः योषितो जन्म प्रवदेत्। गुर्वर्कौ विषमे स्थितौ नरं 'जनयतः'। शशिसितौ वक्रः (मङ्गलश्च) युग्मे समराशौ स्थिताः स्त्रियं जनयन्ति। ते च शशिसितवक्रा द्व्यङ्गस्था द्विस्वभावगता बुधवीक्षिताश्च स्वके पक्षे यमलौ कुर्वन्ति ॥ ११ ॥

भा०—लग्न, रवि, गुरु और चन्द्रमा ये बली होकर विषम राशि विषम नवांश में हो तो पुरुष का जन्म, तथा येही चारों यदि सम राशि सम नवांश में हो तो स्त्री का जन्म कहना। गुरु और रवि ये दोनों विषम राशि में हों तो पुरुष का जन्म, तथा चन्द्रमा शुक्र और मङ्गल ये तीनों सम राशि में हों तो स्त्री का जन्म कहना। तथा ये ही चन्द्र, शुक्र, मङ्गल यदि द्विस्वभाव में हों और बुध की दृष्टि हो तो अपने पक्ष में यमल (जोड़ा) का जन्म देते है ॥ ११ ॥

वि०—यमल के जन्म में-यदि विषम द्विस्वभाव (मिथुन, धनु) में हो तो पुरुष का, यदि सम द्विस्वभाव (कन्या, मीन) में हों तो स्त्री का जोड़ा समझना। यदि विषम और सम दोनो में हो तो एक पुरुष और एक स्त्री समझना। बुध की दृष्टि हो तभी यमल का जन्म होता है, अन्यथा नहीं ॥

विहाय लग्नं विषमर्क्षसंस्थः सौरोऽपि पुंजन्मकरो विलग्नात्।
प्रोक्तग्रहाणामवलोक्य वीर्यं वाच्यः प्रसूतौ पुरुषोऽङ्गना वा॥१२॥

सं०—विलग्नात् लग्नं विहाय विषमर्क्षसंस्थः विषमभवनस्थः सौरोऽपि

शनैश्चरोऽपि पुंजन्मकरः स्यात्। 'एवं' प्रोक्तग्रहाणां वीर्यं अवलोक्य प्रसूतौ पुरुषो वाच्यः, वा अङ्गना वाच्या ॥१२॥

भा०--लग्न से लग्न को छोड़ कर अन्य विषम स्थान में शनैश्चर भी पुरुष का जन्मकारक होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त योगों के बलाबल देखकर यदि पुरुषकारक ग्रह बली हो लो पुरुष का, स्त्रीकारक ग्रह बली हो तो स्त्री का जन्म कहना ॥१२॥

नपुंसक जन्म योग—

अन्योऽन्यं यदि पश्यतः शशिरवी यद्यार्किसौम्यावपि
वक्रो वा समगं दिनेशमसमे चन्द्रोदयौ चेत् स्थितौ।
युग्मौजर्क्षगतावपीन्दुशशिजौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ
पुम्भागे सितलग्नशीतकिरणाः षट् क्लीबयोगाः स्मृताः ॥१३॥

सं०--यदि शशिरवी 'क्रमेण' युग्मौजर्क्षगतौ समविषमराशिस्थौ, अन्योन्यं पश्यतः१, यदि वा आर्किसौम्यौ शनिबुधौ 'क्रमेण' युग्मौजर्क्षगतौ अन्योन्यं पश्यतः २, वा वक्रः मंगलः, असमे स्थितः' समगं दिनेशं पश्यति ३, चेद्वा चन्द्रोदयौ युग्मौजर्क्षगतौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ ४, वा इन्दुशशिजौ युग्मौजर्क्षगतौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ मङ्गलेन दृष्टौ ५, वा सितलग्नशीतकिरणाश्च पुंभागे स्थिताः ६, एते षट् क्लीबयोगाः नपुसकजन्मकारका योगाः स्मृताः ॥

भा०--सम राशि में चन्द्र और विषम में सूर्य हो तथा दोनों में परस्पर दृष्टि हो (१) वा विषम राशि में शनि और सम में बुध इन दोनों में परस्पर दृष्टि हो (२) वा विषम राशिस्थ मंगल यदि सम राशिस्थ सूर्य को देखता हो (३) अथवा सम राशि में चन्द्र और विषम राशि में लग्न हो और इन दोनों को मंगल देखता हो (४) वा सम राशि में चन्द्र और विषम राशिस्थ बुध दोनों को मंगल देखता हो (५) अथवा शुक्र, लग्न, चन्द्रमा ये तीनों किसी राशि में विषम नवांश में हों (६) तो ये ६ प्रकार नपुंसक के जन्मकारक योग होते हैं ॥१३॥

एक गर्भ में दो या तीन सन्तान के योग—

युग्मे चन्द्रसितौ तथौजभवने स्युर्ज्ञारजीवोदया
लग्नेन्दू नृनिरीक्षितौ च समगौ युग्मेषु वा प्राणिनः।
कुर्युस्ते मिथुनं ग्रहोदयगतान्द्व्यंगांशकान् पश्यति
स्वांशे ज्ञे त्रितयं ज्ञगांशकवशाद्युग्मं त्वमिश्रैः समम्॥१४॥

सं०—चन्द्रशितौ युग्मे समराशौ स्थितौ तथा ज्ञारजीवोदया ओजभवने स्युस्तदा मिथुनं (यमलं) कुर्युः। वा लग्नेन्दू समगौ नृनिरीक्षितौ तथा च ते (ज्ञारजीवोदयाः) प्राणिनः (बलिनः) युग्मेषु समराशिषु स्थिताः तदा मिथुनं (अपत्यद्वयं) कुर्युः। तथा च ग्रहोदयगतान् द्व्यङ्गांशकान् ज्ञे स्वांशे स्थिते पश्यति 'सति' गर्भे त्रितयं (अर्भकत्रयं) वाच्यम्। तत्र ज्ञगांशकवशाद् (बुधनवांशवशात्) युग्म, अमिश्रैश्च समं (त्रितयं समलिङ्गं) वाच्यम् ॥१४॥

भा०—चन्द्रमा शुक्र दोनों सम राशि में हो और बुध, मंगल, गुरु और लग्न ये विषम राशि में हों वा लग्न चन्द्रमा दोनों सम राशि में हों और पुरुष ग्रह से देखे जाते हो, वा बुध, मगल, गुरु, और लग्न ये बली होकर सम राशि में हों तो मिथुन (गर्भ में दो सन्तान) उत्पन्न करते है। तथा सब ग्रह और लग्न द्विस्वभाव नवांश में हों और बुध अपने नवाश (मिथुन, या कन्यां के अंश) में होकर ग्रहगत वा लग्नगत द्विस्वभाव नवाश को देखता हो तो इस योग में गर्भ में ३ सन्तान कहना। उनमें बुध के नवाश सजातीय दो और एक लग्न नवांश सजातीय कहना। यदि नवाश एक जातीय ही हो तो, तीनों समान (पुत्र या कन्या एकजातीय) ही सन्तान समझना॥

वि०—यदि बुध विषम (मिथुन) नवाश में हो और ग्रह लग्न सम (कन्या मीन) नवाज में हो तो २ पुत्र, १ कन्या। तथा बुध यदि सम (कन्या) नवांश में हो और ग्रह लग्न विषम (धनु मिथुन) में हों तो २ कन्या, १ पुत्र का जन्म समझना। बुध और ग्रह लग्न विषमनवांश में ही हो तो तीनों पुत्र ही, यदि सब सम नवांश में ही हो तो तीनों कन्या ही समझना चाहिये ॥ १४ ॥

एक गर्भ में ३ से अधिक सन्तान का योग—

धनुर्द्धरस्यान्त्यगते विलग्ने ग्रहैस्तदंशोपगतैर्बलिष्ठैः ।
ज्ञेनार्किणा वीर्ययुतेन दृष्टे सन्ति प्रभूता अपि कोशसंस्थाः ॥

सं०——विलग्ने धनुर्धरस्यान्त्यगते सति वलिष्ठैः सर्वैर्ग्रहैस्तदंशोपगतैः (धनुर्नवांशस्थैः) वीर्ययुतेन ज्ञेन बुधेन, आर्किणा शनिना च लग्ने दृष्टे सति कोशसंस्थाः गर्भाशयस्थाः अर्भकाः प्रभूताः (वहवः) सन्तीति वाच्यम् ॥१५॥

भा०——अन्तिम नवांशगत धनु लग्न हो और सब ग्रह धनुराशि के नवाश में हो तथा बलवान बुध और शनि लग्न को देखता हो तो गर्भ में बहुत (३ से अधिक) सन्तान है ऐसा कहना ॥१५॥

गर्भ की स्थिति और १० मासो के स्वामी—

कललघनांकुरास्थिचर्माङ्गजचेतनपाः
सितकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किबुधाः परतः
उदयपचन्द्रसूर्यनाथाः क्रमशो गदिता
भवति शुभाशुभं च मासाधिपतेः सदृशम्॥१६॥

स०——कललघनाऽङ्कुरास्थि-चर्माङ्गज-चेतनपाः क्रमशः सितकुज-जीव-सूर्य-चन्द्रार्कि-बुधाः, परतः (सप्तमासतः पश्चात्) उदयप-चन्द्र-सूर्यनाथाः गदिताः । शुभाशुभं 'फलं' च मासाधिपतेः सदृशं भवति ॥ १६ ॥

भा०——गर्भके प्रथम मास में कलल (रजवीर्यमिश्रण), दूसरे मास में घन (पिण्ड), तीसरे मास में अङ्कुर (अवयव), चतुर्थमास में अस्थि (हड्डी), पञ्चम मासमें चर्म, षष्ठ मासमें अङ्गज (रोम) और सप्तम मासमें चैतन्य होता है, इन सातो मास के अधिपति क्रम से शुक्र, मंगल गुरु सूर्य चन्द्र शनि और बुध होते है । बाद इसके अष्टम, नवम, दशम मास के स्वामी क्रम से लग्नेश, चन्द्र, और सूर्य होते हैं । मासों के अधिपके शुभाशुभत्वसे गर्भ के शुभ या अशुभ फल होता है । अर्थात् जिस मास का स्वामी बली हो

उस मासमें गर्भवती को सुख, जिस मासका स्वामी निर्बल हो उस में क्लेश होता है ॥ १६ ॥

वि०—अष्टममासमें गर्भस्थ बालक माता के खाये हुए रसको खाता है, नवें मास में गर्भ से निकलने का उद्वेग होता है। और दशवें मास में प्रसव होता है। यथा लघुजातक में—"कललघनावयवास्थित्वग्रोमस्मृतिसमुद्भवाः क्रमशः। मासेषु शुक्र-कुजजीव-सूर्यचन्द्रार्किसौम्यनाम्। अशनोद्वेगप्रसवाः परतो लग्नेशचन्द्रसूर्याणाम्। कलुषैः पीडा, पतनं निपीडितैर्निर्मलैः पुष्टिः" ॥१६॥

अधिकाङ्ग योग, मूकयोग—

त्रिकोणगे ज्ञे विबलैस्तथापरैर्मुखाङ्घ्रिहस्तैर्द्विगुणस्तदा भवेत्।
अवाग्गवीन्दावशुभैर्भसन्धिगैः शुभेक्षिते चेत् कुरुते गिरश्चिरात्॥

सं०—ज्ञे (बुधे) त्रिकोणगे, ततोऽपरैर्ग्रहैर्विबलैः, तदा 'गर्भस्थो' मुखाङ्घ्रिहस्तैर्द्विगुणो भवेत्। इन्दौ (चन्द्रे) गवि (वृषे) अशुभैर्भसन्धिगैः अवाक् भवति। चन्द्रे शुभेक्षिते चेत् तदा चिराद्गिरं कुरुते ॥१७॥

भा०—बुध लग्न से त्रिकोण में हो, और शेष ग्रह निर्बल हो तो जातक २ मुख, ४ पैर, ४ हाथ वाला होता है। यदि चन्द्रमा वृषमें हो और पाप-ग्रह राशिसन्धि (राशिगण्डान्त) में हो तो गूँगा होता है। यदि शुभग्रह की दृष्टि उन पर हो तो अधिक दिनों में बोलता है ॥१७॥

स-दन्त, कुब्ज, पङ्गु और जड (बधिर) योग—

सौम्यर्क्षांशे रविजरुधिरौ चेत्सदन्तोऽत्र जातः
कुब्जः स्वर्क्षे शशिनि तनुगे मन्दमाहेयदृष्टे।
पङ्गुर्मीने यमशशिकुजैर्वीक्षिते लग्नसंस्थे
सन्धौ पापे शशिनि च जडः स्यान्न चेत्सौम्यदृष्टिः ॥१८॥

सं०—रविज-रुधिरौ (शनि-कुजौ) सौम्यर्क्षांशे स्थितौ चेत् तदाऽत्र सदन्तो दन्तसहितो जातः स्यात्। स्वर्क्षे शशिनि तनुगे मन्दमाहेयदृष्टे सति कुब्जः स्यात्। मीने लग्नसंस्थे यमशशिकुजैर्वीक्षिते सति पङ्गुः स्यात्। पापे

शशिनि चन्द्रे च सन्धौ ऋक्षसंधौ स्थिते जड़ः (बधिरः) स्यात् । चेत् सौम्यदृष्टिः न स्यात्तदैते योगा ज्ञेया नान्यथा ॥ १८ ॥

भा०—शनि मंगल यदि बुध की राशि और नवांश में हो तो जातक दन्तसहित उत्पन्न होता है। अपनी राशि (कर्क) का चन्द्रमा लग्न में हो और शनि मंगल से दृष्ट होंतो कुब्ज (कुबड़ा) होता है। मीन लग्न हो और शनि चद्र मंगल तीनों से दृष्ट हो तो पङ्गु (लङ्गड़ा) होता है। पाप ग्रह और चन्द्रमा राशिसन्धि में हो तो जड़ (बहिरा) होता है। यदि शुभ ग्रह की दृष्टि नहीं हो तभी इन योगों का फल समझना। यदि शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो ये उक्त फल नहो होते हैं ॥१८॥

वामन और बिना हाथ बिना पैर और बिना मस्तकवाले का जन्म योग—

सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्टे वामनको मकरान्त्यविलग्ने ।
धीनवमोदयगैश्च दृकाणैः पापयुतैरभुजाङ्घ्रिशिराः स्यात्॥

सं०—मकरान्त्यविलग्ने (मकरस्यान्तिमांशे लग्नगते) सौरशशाङ्क-दिवाकरदृष्टे सति 'जातो' वामनकः स्यात् । धी-नवमोदयगैः दृकाणैः पापयुतैः सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्टैः 'जातः' क्रमेण अभुजाङ्घ्रिशिराः स्यात् ॥१९॥

भा०—मकर अन्तिम द्रेष्काण से लग्न मे हो और शनि, चन्द्र, सूर्य से दृष्ट हो तो जातक वामन (बौना) होता है। और पञ्चम, नवम तथा लग्न इन भावो के द्रेष्काण पाप. (मंगल) से युत हो और शनि, चन्द्र, सूर्य इन से दृष्ट हो तो जातक क्रम से भुजरहित, पैर रहित, और मस्तक रहि। होता है। यदि शुभग्रह से युत दृष्ट न हो तभी यह फल समझना १९

वि०-यथाह भगवान् गार्गिः-"लग्नद्रेष्काणगो भौमः सौरसूर्येन्दुवीक्षितः।
कुर्याद्विशिरसं, तद्वत् पञ्चमे बाहुवर्जितम् ।
विपदं नवमे स्थाने यदि सौम्यैर्न वीक्षितः १९

अन्ध और काण जन्म योग—

रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षिते
नयनरहितः सौम्यासौम्यैः सबुद्बुदलोचनः ।

व्ययगृहगतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रवि-
र्नशुभगदिता योगा याप्या भवन्ति शुभेक्षिताः ॥२०॥

सं०—रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षिते सति जातो नयनरहितः स्यात्। सौम्यासौम्यैर्निरीक्षिते सबुद्बुदलोचनः स्यात्। व्ययगृहगतश्चन्द्रो वामं नेत्रं तथा रविः 'व्ययगृहगतः' अपरं (दक्षिणनेत्रं) हिनस्ति नाशयति। न शुभगदिता योगाः शुभेक्षितास्तदा याप्या भवन्ति ॥२०॥

भा०—रवि चन्द्र सहित सिंह लग्न हो और मंगल शनि से दृष्ट हो तो जातक अन्धा होता है। यदि शुभ और पापग्रह दोनों से दृष्ट हो तो आँखमें फूलावाला होता है। यदि द्वादश भाव में चन्द्रमा हो तो वामनेत्र का तथा सूर्य द्वादशभाव में हो तो दहिने नेत्र का नाश कारक होता है। इन कहे हुए अशुभ योगों में शुभग्रह की दृष्टि हो तो पूर्णफल नहीं होता है ॥२०॥

आधानलग्न से प्रसवकाल का ज्ञान—

तात्कालिकेन्दुसहितो द्विरसांशको य-
स्तत्तुल्यराशिसहिते पुरतः शशाङ्के।
यावांनुदेति दिनरात्रिसमानभाग-
स्तावद्गते दिननिशोः प्रवदन्ति जन्म ॥२१॥

सं०—तात्कालिकेन्दुसहितो यो द्विरसांशः (द्वादशांशः) तत्तुल्यराशिसहिते शशाङ्के 'सति' पुरतः (अग्रे=दशमे मासि) जन्म प्रवदन्ति। दिनरात्रिसमानभागो राशिर्यावानुदेति दिननिशोः तावद्गते 'काले' जन्म प्रवदन्ति 'आचार्या' इति शेषः ॥२१॥

भा०—गर्भाधानकाल में चन्द्रमा जितने संख्यक द्वादशांश में हो उस राशि से उतने संख्यक राशि में १०वें मास में जब चन्द्रमा जाते हैं तब जन्म होता है। अथवा दिन बली वा रात्रि बली गर्भधानकालिक लग्न के जितने अंश उदित हो गये हों उतने ही दिन वा रात्रि बीतने पर जन्म कहना॥

वि०—भगवान् गार्गि का वचन—"यावत्संख्ये द्वादशांशे शीतरश्मिर्व्य-

वस्थितः । तत्संख्यो यस्ततो राशिर्जन्मेन्दौ तद्गते भवेत्" ॥ यथा सारावली—"तत्काले दिवसनिशासंज्ञः समुदेति राशिभागो यः । यावानुदयस्तावान् वाच्यो दिवसस्य रात्रेर्वा ॥" इति स्पष्टार्थं ।

उदाहरण—मानो सं० १९९१ फाल्गुन शुक्ल ३ सोमवार रात्रिगत घटी ७।३० गर्भाधानकाल में लग्न राश्यादि ५।२३।१५।२० ॥ स्पष्ट चन्द्रमा ११।८।१४।२५ है तो यहाँ चन्द्रमा मीन राशि के चतुर्थ (मिथुन) के द्वादशांश में है, इसलिये मिथुन से चतुर्थ कन्या राशि में आधान मास से दशवें मास में जब चन्द्रमा जायगा तब जन्म होगा। तथा—चन्द्रमा की अंशकला समझने के लिये त्रैराशिक से ऐसा अनुपात है कि एक द्वादशांश २।३०′ की कला (१५०″) में ३० अंश तो आधानकालिक गत द्वादशांशकला में क्या ? इस प्रकार जन्मकालिक चन्द्रमा के लब्ध अंशादि = $\frac{३० \times \text{गतद्वादशांशकला}}{१५०} = \frac{\text{गतद्वादशांशकला}}{५}$ अर्थात् गत द्वादशांश की कला में ५ का भाग देने से अंशादि होते हैं। अतः आधानकालिक चन्द्रमा ११।८।१४।२५ के चतुर्थ द्वादशांश की गत कला ४४।२५ में ५ का भाग देने से लब्ध अंशादि ८।५३ ॥० अर्थात् दशवें मास (अग्रहण) में कन्या राशि के ८ अंश ५३ कला में चन्द्रमा के जाने पर जन्म होगा, यह निश्चित हुआ । अतः जन्मकालिक चन्द्रमा ५।८।५३।० राश्यादि हुआ । इस पर से इष्टकाल समझ लेना ।

तथा—आधानकालिक लग्न से जन्मकालिक दिनरात्रि गतेष्टकाल के आनयन का उदाहरण—ऊपर सिद्ध हो चुका है कि उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र के चतुर्थ चरण में चन्द्रमा के जाने पर जन्म होगा। वह संवत् १९९२ अग्रहण कृष्ण ११ गुरुवार में हुआ। तथा गर्भाधान लग्न कन्या दिनबली है, उसके गतांश २३।१५।२० से यह अनुपात हुआ कि ३० अंश में नियमित जन्मकालिक दिनमान, तो गतांश में क्या ? $\frac{\text{दिनमान} \times \text{गतांश}}{३०}$ =

दिनगतेष्टकाल। अर्थात् गतांश से दिनमान को गुनाकर ३० के भाग देने से इष्टकाल होता है। इसी प्रकार रात्रिबली लग्न में रात्रिमान से रात्रिगत इष्टकाल सिद्ध होता है। जैसे नियमित दिनमान २६।३० को लग्न के गतांश २३।१५।२० से गुणा कर ६१६।१६।२० इससे ३० का भाग देने से लब्ध घट्यादि दिन गत इष्टकाल २०।३२ हुआ ॥२१॥

गर्भ होने पर ३ वर्ष और १२ वर्ष पर प्रसव का योग—

उदयति मृदुभांशे सप्तमस्थे च मन्दे
यदि भवति निषेकः सूतिरब्दत्रयेण।
शशिनि तु विधिरेष द्वादशेब्दे प्रकुर्या-
न्निगदितमिह चिन्त्यं सूतिकालेपि युक्त्या ॥२२॥

इति बृहज्जातके निषेकाध्यायः ॥४॥

सं०—मृदुमांशे (शनैश्चरराश्यंशे) उदयति मन्दे (शनैश्चरे) सप्तमस्थे सति यदि निषेको (गर्भाधानं) भवति तदा अब्दत्रयेण सूतिर्वाच्या। एष विधिः यदि शशिनि (चन्द्रे) भवति तदा द्वादशाब्दे सूतिं प्रकुर्यात्। इह (अत्राध्याये) निगदितं 'फलं' सूतिकालेऽपि जन्मसमयेऽपि युक्त्या चिन्त्यं विचार्यम्. ॥२२॥

भा०—लग्न में शनैश्चर की राशि (मकर, वा कुम्भ) के नवांश हो और शनि सप्तम भाव में हो ऐसे योग में यदि गर्भाधान हो तो ३ वर्ष में प्रसव होता है। इस प्रकार चन्द्रमा में हो (अर्थात् लग्न में कर्क का नवांश हो और चन्द्रमा सप्तम भाव में हो ऐसे योग में गर्भाधान हों) तो १२ वर्ष में प्रसव होता है। इस अध्याय में कहे हुए फलों को युक्ति से जन्मकाल में भी विचार करना चाहिये ॥२२॥

वि०—जैसे पितृ मातृ आदि संज्ञक ग्रहो से जन्मकाल में भी पिता, माता आदि का शुभाशुभ विचारना इत्यादि ॥२२॥

इति बृहज्जातकतत्त्वार्थदीपिकायां निषेकाध्यायः ॥४॥

अथ प्रसूतिकाध्यायः ॥ ५ ॥

पिता के परोक्ष में जन्म योग—

पितुर्जातः परोक्षस्य लग्नमिन्दावपश्यति ।
विदेशस्थस्य चरभे मध्याद्भ्रष्टे दिवाकरे ॥ १ ॥

सं०—इन्दौ (चन्द्रे) लग्नं अपश्यति सति, परोक्षस्य (अन्यत्र स्थितस्य) पितुः जातः स्यात् । तत्र दिवाकरे सूर्ये मध्यात् (दशमस्थानात्) भ्रष्टे चरभे सति विदेशस्थस्य पितुर्जातः अर्थात् दिवाकरे स्थिरभे स्वदेशस्थस्यैव पितुः परोक्षस्य जातः, तथा द्विस्वभावगे सूर्ये स्वदेशविदेशयोर्मध्यगतमार्गे स्थितस्य पितुः परोक्षस्य जात इति ॥ १ ॥

भा०—चन्द्रमा लग्न को नहीं देखता हो तो पिता के परोक्ष में जन्म कहना । इस योग में यदि सूर्य दशम स्थान से आगे हटा हुआ चर राशि में हो तो विदेशस्थ पिता के परोक्ष में जन्म कहना ॥ १ ॥

वि० - सूर्य के चर राशिमें रहने पर विदेशस्थ कहा गया है तो अर्थ से सिद्ध होता है कि—स्थिर राशि में सूर्य हो तो स्वदेशस्थ, और द्विस्वभाव राशि में हो तो मार्गस्थ पिता के परोक्ष में जन्म समझना । तथा दशमस्थान से भ्रष्ट (हटे) सूर्य हो और चन्द्रमा लग्न को न देखे तभी यह योग समझना । अर्थात् सूर्य दशम स्थान में हो तो योग नहीं होता है ॥ १ ॥

उदयस्थेऽपि वा मन्दे कुजे वास्तं समागते ।
स्थिते वाऽन्तः क्षपानाथे शशाङ्कसुतशुक्रयोः ॥ २ ॥

सं०—अपि वा मन्दे शनैश्चरे उदयस्थे लग्नगते, वा कुजेऽस्तं समागते सप्तमभावगे, वा क्षपानाथे (चन्द्रे) शशाङ्कसुतशुक्रयोः अन्तःस्थिते बुधशुक्रयोर्मध्यगते सति पितुः परोक्षस्य जातः ॥ २ ॥

भा०—यदि वा शनि लग्न में, अथवा मंगल सप्तम भाव में हो, वा बुध शुक्र के मध्य में चन्द्रमा हो तो पिता के परोक्ष में जन्म कहना ॥ २ ॥

सर्प वा सर्प से वेष्टित मनुष्य का जन्म योग—

शशाङ्के पापलग्ने वा वृश्चिकेशत्रिभागगे।
शुभैः स्वायस्थितैर्जातः सर्पस्तद्वेष्टितोऽपि वा ॥३॥

सं०—शशाङ्के वृश्चिकेशत्रिभागगे, कुजद्रेष्काणगे, वा पापलग्ने वृश्चिकेशत्रिभागगे सति, सौम्यैः स्वायस्थितैः द्वितीयैकादशस्थैः सर्पो जातः स्यात्, वा तद्वेष्टितो जातः स्यात् ॥ ३ ॥

भा०—चन्द्रमा मङ्गलके द्रेष्काण में हो, वा पपायुत लग्न मंगल के द्रेष्काण में हो इन दोनो योग में शुभ ग्रह २।११ स्थान में हो तो सर्प का जन्म अथवा सर्प से वेष्टित मनुष्य का जन्म कहना चाहिये ॥ ३ ॥

वि०—भगवान् गार्गि का वचन—"भौमद्रेष्काणगे चन्द्रे सौम्यैरायधनस्थितैः। सर्पस्तद्वेष्टितस्तद्वत्पापलग्ने विनिर्दिशेत् ॥ इति स्पष्टार्थं ॥३॥

यमल जन्मयोग—

चतुष्पदगते भानौ शेषैर्वीर्यसमन्वितैः।
द्वितनुस्थैश्च यमलौ भवतः कोशवेष्टितौ ॥४॥

सं०—भानौ चतुष्पादगते चतुष्पदराशिस्थे वीर्यसमन्वितैः शेषैः ग्रहैश्च द्वितनुस्थैः द्विस्वभावगतैः कोशवेष्टितौ यमलौ भवतः ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य चतुष्पद राशिमें हो, और शेषग्रह बलवान होकर द्विस्वभाव राशि में हो तो एक जरायु में वेष्टित दो सन्तान (जोड़ा) का जन्म होता है।

जातकके अंग में नाल वेष्टन का ज्ञान—

छागे सिंहे वृषे लग्ने तत्स्थे सौरेऽथ वा कुजे।
राश्यंशसदृशे गात्रे जायते नालवेष्टितः ॥५॥

सं०—छागे, सिंहे वा वृषे लग्ने तत्स्थे सौरे शनैश्चरे अथवा कुजे तत्स्थे राश्यंशसदृशे गात्रे नालवेष्टितो जायते ॥ ५

भा०—मेष, सिंह या वृष लग्न हो उसमें शनि वा मङ्गल हो तो लग्न में

जिस राशिं का नवांश हो उस राशि का जो अंग (कालाङ्गानि इत्यादि प्रकार से) हो उस अंग में नाल से वेष्टित (लपेटा हुआ) जातक का जन्म होता है ।। ५ ।।

परजात जन्म ज्ञान—

न लग्नमिन्दुञ्च गुरुर्निरीक्षते न वा शशाङ्कं रविणा समागतम् ।
सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशी परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात्॥६॥

सं०—गुरुर्यदि लग्नं, इन्दुं च न निरीक्षते, वा रविणा समागतं युतं शशाङ्कं यदि गुरुर्न निरीक्षते, अथवा सपापकः शशी 'यदि' अर्केण युतः तदा निश्चयात् परेण (अन्यपुरुषेण) जातं 'आचार्याः' प्रवदन्ति ।। ६ ।।

भा०—बृहस्पति यदि लग्न और चन्द्रमा को नहीं देखता हो, अथवा सूर्य से युक्त चन्द्रमा हो उसे बृहस्पति नहीं देखता हो, अथवा किसी पापग्रह (शनि, वा मङ्गल) से युत चन्द्रमा यदि सूर्य से भी युक्त हो तो इन तीनों योग में परजात (दूसरे से उत्पन्न) का जन्म कहना ।। ६ ।।

वि०—इनयोगों में चन्द्रमा यदि गुरु की राशि वा द्रेष्काणादि में हो तो परजात नहीं समझना । यथा भगवान् गार्गिका वचन—"गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वाऽन्यराशिगे । तद्द्रेष्काणे तदंशे वा न परैर्जात इष्यते ।।" इति स्पष्टार्थं ।। ६ ।।

पितृ बन्धन योग—

क्रूरर्क्षगतावशोभनौ सूर्याद्द्यूननवात्मजस्थितौ ।
बद्धस्तु पिता विदेशगः स्वे वा राशिवशादथो पथि ।।७।।

सं०—अशोभनौ (पापौ) क्रूरर्क्षगतौ (पापराशिस्थितौ) यदि सूर्याद् द्यूननवात्मजस्थितौ तदा जातस्य पिता बद्धः स्यात् । राशिवशात् विदेशगः, स्वे (स्वदेशे), वा पथि 'बद्धो ज्ञेयः' ।। ७ ।।

भा०—दो पापग्रह यदि पापग्रह की राशि में स्थित होकर सूर्य से ७।९।५ इन स्थान में हो तो जातक के पिता को बद्ध (जेल में बँधा हुआ)

समझना। सूर्य चरराशि में हो तो विदेश में, स्थिर राशि में हो तो स्वदेश में, द्विस्वभाव में हो तो मार्ग में पिता को बँधा हुआ समझना ॥ ७ ॥

नौका पर प्रसव होने का योग—

पूर्णे शशिनि स्वराशिगे सौम्ये लग्नगते शुभे सुखे ।
लग्ने जलजेऽस्तगेऽपि वा चन्द्रे पोतगता प्रसूयते ॥ ८ ॥

सं०—पूर्णे शशिनि (चन्द्रे) स्वराशिगे, सौम्ये (बुधे) लग्नगते, शुभे सुखे चतुर्थभावे 'स्थिते' पोतगता नौकास्थिता प्रसूयते । अपि वा जलजे लग्ने सति चन्द्रेऽस्ते (सप्तमे) सति पोतगता प्रसूयते ॥ ८ ॥

भा०—पूर्ण चन्द्रमा कर्क में हो, बुध लग्न में हो, शुभग्रह चतुर्थ में हो तो नौका पर प्रसव होता है । अथवा जलचर राशि लग्न हो, सप्तम भाव में चन्द्रमा हो तो भी नौका पर प्रसव समझना ॥ ८ ॥

जल में प्रसव होने का योग—

आप्योदयमाप्यगः शशी सम्पूर्णः समवेक्षतेऽथ वा ।
मेषूरणबन्धुलग्नगः स्यात्सूतिः सलिले न संशयः ॥ ९ ॥

सं०—सम्पूर्णः शशी आप्यगः (जलचरराशिगतः) आप्योदयं (जलचरराशिलग्नं) समवेक्षते, अथवा आप्यगः सम्पूर्णः शशी मेषूरणबन्धुलग्नगो दशमचतुर्थप्रथमभावगश्चेत्तदा सलिले सूतिर्जन्म 'अत्र' न संशयः ॥ ९ ॥

भा०—पूर्ण चन्द्रमा जलचर राशि में हो और जलचर राशि लग्न को देखता हो तो जल में प्रसव होता है । तथा जलचर राशि में स्थित चन्द्रमा दशम, चतुर्थ वा लग्न भाव में हो तो भी जल में प्रसव कहना ॥ ९ ॥

जेलखाना और गर्त (गढ़ा) में प्रसव होने का योग—

उदयोडुपयोर्व्ययस्थिते गुप्त्यां पापनिरीक्षिते यमे ।
अलिकर्कियुते विलग्नगे सौरे शीतकरेक्षितेऽवटे ॥१०॥

सं०—यमे (शनौ) उदयोडुपयोर्लग्नचन्द्रयोर्व्ययस्थिते पापनिरीक्षिते

सति गुप्त्यां कारागारे जन्म वाच्यम्। सौरे अलिकर्कियुते विलग्नगे शीत-करेक्षिते सति अवटे (गर्ते) जन्म वाच्यम् ॥१०॥

भा०—लग्न में चन्द्रमा हो उससे १२ स्थान में शनि हों और पापग्रह से दृष्ट हो तो जेलखाना में जन्म कहना। तथा वृश्चिक वा कर्क में स्थित शनि लग्न में हो और चन्द्रमा से दृष्ट हो तो अवट (गर्त=गढ़ा) में जन्म समझना ॥ १० ॥

क्रीडास्थान, देवालय और ऊषरभूमि में प्रसव के योग—

मन्देऽब्जगते विलग्नगे बुधसूर्येन्दुनिरीक्षिते क्रमात्।
क्रीडाभवने सुरालये प्रवदेज्जन्म च सोषरावनौ ॥११॥

सं०- मन्दे शनौ अब्जगते जलराशिगे विलग्नगे बुधसूर्येन्दुनिरीक्षिते 'सति' क्रमेण क्रीडाभवने, सुरालये, सोषरावनौ जन्म प्रवदेत् ॥११॥

भा०—शनि जलचर राशि में स्थित होकर लग्न में हों और बुध से दृष्ट हो तो क्रीड़ाभवन में, सूर्य से दृष्ट हो तो देवालय में और चन्द्र से दृष्ट हो तो ऊषर भूमि में प्रसव कहना ॥११॥

श्मशानादि में प्रसव के योग—

नृलग्नगं प्रेक्ष्य कुजः श्मशाने रम्ये सितेन्दू गुरुरग्निहोत्रे।
रविर्नरेन्द्रामरगोकुलेषु शिल्पालये ज्ञः प्रसवं करोति ॥१२॥

सं०—कुजः नृलग्नगं (द्विपदलग्नगतं) शनिं प्रेक्ष्य (दृष्ट्वा) श्मशाने, सितेन्दू शुक्रचन्द्रौ नृपलग्नगं शनिं दृष्ट्वा रम्ये स्थाने, गुरुः अग्निहोत्रे, रविः नरेन्द्रामरगोकुलेषु, ज्ञः नृलग्नगं शनिं प्रेक्ष्य दृष्ट्वा शिल्पालये प्रसवं करोति ॥

भा०—द्विपदराशि लग्न में स्थित शनि को मंगल देखे तो श्मशानभूमि में, शुक्र और चन्द्रमा ये दोनों देखे तो रमणीय स्थान में, गुरु देखता हो तो अग्नि शाला में, सूर्य देखता हो तो राजगृह में वा देवालय में अथवा गोशाला में, और बुध देखता हो तो चित्रालय में प्रसव होता है ॥१२॥

घर या बाहर में प्रसवस्थान का ज्ञान—

राश्यंशसमानगोचरे मार्गे जन्म चरे स्थिरे गृहे ।
स्वर्क्षांशगते स्वमन्दिरे बलयोगात्फलमंशकर्क्षयोः॥१३॥

सं०—राश्यंशसमानगोचरे (लग्नगतराशितन्नवांशयोर्यादृशो गोचरः स्थानं तादृशे स्थाने) जन्म वाच्यम् । 'तत्र राश्यंशी' चरे 'सति' मार्गे, स्थिरे गृहे जन्म वक्तव्यम् । लग्ने स्वर्क्षांशगते स्वमन्दिरे जन्म । अंशकर्क्षयोः बल-योगात् फलं वाच्यम् ॥१३॥

भा०—लग्न की राशि वा नवांश के सदृश प्रदेश में जन्म कहना । अर्थात् "स्वचराश्च सर्वे" इस प्रकार से जिस राशि के जो स्थान हैं उस प्रकार के स्थान में प्रसव कहना । यदि लग्न या नवांश चर हो तो मार्ग में, स्थिर हो तो घर में जन्म कहना । यदि लग्न में अपने ही नवांश हो तो अपने ही घर में जन्म कहना । तथा लग्न और नवांश की राशियो में जो बली हो उसके सदृश स्थान में ही प्रसव समझना चाहिये ॥१३॥

माता से त्यक्त जातक का योग—

आरार्कजयोस्त्रिकोणगे चन्द्रेऽस्ते च विसृज्यतेऽम्बया ।
दृष्टेऽमरराजमन्त्रिणा दीर्घायुः सुखभाक् च स स्मृतः ॥१४॥

सं०—चन्द्रे आरार्कजयोस्त्रिकोणगे वाऽस्ते (सप्तमे) स्थिते जातकोऽम्बया (मात्रा) विसृज्जते त्यज्यते । अमरराजमन्त्रिणा गुरुणा दृष्टे सति स (त्यक्तोऽपि) दीर्घायुः सुखभाक् च स्मृतः ॥ १४ ॥

भा०—मंगल और शनि दोनों एक राशि में हो उससे त्रिकोण (९।५) या सप्तम में शनि हो तो उस जातक को माता त्याग कर देती हैं । परन्तु चन्द्रमा को बृहस्पति देखता हो तो माता से त्यक्त होने पर भी दीर्घायु और सुखभागी होता है ॥ १४ ॥

पापेक्षिते तुहिनगावुदये कुजेऽस्ते
त्यक्तो विनश्यति कुजार्कजयोस्तथाऽऽये ।

सौम्येऽपि पश्यति तथाविधहस्तमेति
सौम्येतरेषु परहस्तगतोऽप्यनायुः ॥ १५ ॥

सं०—पापेक्षिते तुहिनगौ (चन्द्रे) उदये लग्नगते, कुजेऽस्ते (सप्तमे) सति 'मात्रा' त्यक्तो विनश्यति । तथा-पापेक्षिते तुहिनगौ कुजार्कजयोः आये (एकादशे) स्थिते सति त्यक्तो विनश्यति । सौम्येऽपि पश्यति 'सति' तथा-विधहस्तमेति (तद्ग्रहसदृशजनस्य हस्तं गच्छति) सौम्येतरेषु (पापेषु) पश्यत्सु परहस्तगतोऽप्यनायुर्भवति ॥१५॥

भा०—पापग्रह से दृष्ट चन्द्रमा लग्न में हो उससे सप्तम में मंगल हो तो माता से त्यक्त होकर जातक मर जाता है । तथा पापदृष्ट चन्द्रमा एक राशि गत शनि मंगल से ११ भाव में हो तो भी जातक माता से त्यक्त होने पर मर जाता है । यदि शुभग्रह भी उसे (चन्द्रमा को) देखता हो, तो–वह शुभग्रह जिसवर्ण का अधिप हो उस वर्ण के पुरुष या स्त्री के हाथ में वह जातक जाता है । यदि चन्द्रमा-सौम्येतर (पापग्रह) से दृष्ट हो और बृहस्पति न देखता हो तो दूसरे के हाथ में जाने पर भी मर जाता है ॥

पितृमातृसंज्ञक ग्रहों के बल से, पिता आदि के घर में प्रसव,का ज्ञान—

पितृमातृगृहेषु तद्बलात्तरुशालादिषु नीचगैः शुभैः ।
यदि नैकगतैस्तु वीक्षितौ लग्नेन्दू विजने प्रसूयते ॥१६॥

अ०—तद्बलात् (तेषां पितृमातृसंज्ञकादिग्रहाणां बलात्) पितृमातृ-गृहेषु जन्म वाच्यम् । शुभैर्नीचगैः तरुशालादिषु प्रसूयते । यदि एकगतैर्ग्रहैः लग्नेन्दू न विक्षितौ तदा विजने (जनवर्जितस्थाने) प्रसूयते ॥१६॥

भा०—(पूर्व अध्याय में "दिवार्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ" इत्यादि जो ग्रह कहे गये हैं) उनमें जो ग्रह बली हो उसके अनुसार पिता या माता आदि के घर में जन्म कहना । यदि सब शुभग्रह नीच में हो तो तरुशाला (वन, वाटिका आदि) में जन्म कहना । तथा सब शुभग्रह किसी एक

स्थान में रह कर लग्न और चन्द्रमा को नहीं देखता हो तो जन रहित स्थान में प्रसव कहना चाहिये ॥१६॥

अन्धकार और भूमि में प्रसव ज्ञान तथा माता के क्लेश योग—

मन्दर्क्षांशे शशिनि हिबुके मन्ददृष्टेऽब्जगे वा
तद्युक्ते वा तमसि शयनं नीचसंस्थैश्च भूमौ।
यद्वद्राशिर्व्रजति हरिजं गर्भमोक्षस्तु तद्वत्
पापैश्चन्द्रात्स्मरसुखगतैः क्लेशमाहुर्जनन्याः ॥१७॥

भा०—शशिनि चन्द्रे मन्दर्क्षांशे शनिराश्यंशे स्थिते हिबुके चतुर्थभावे मन्ददृष्टे, वाऽब्जगे (जलचरराश्यंशस्थे) वा तद्युक्ते (तेन मन्देन युक्ते) सति तमसि (अन्धकारे) शयनं वाच्यम्। नीचसंस्थैः ग्रहैश्च भूमौ शयनं वाच्यम्। राशिः यद्वत् हरिजं (लग्नमुदयक्षितिजं) व्रजति तद्वत् गर्भमोक्षः स्यात्। चन्द्रात् स्मरसुखगतैः पापैः जनन्याः क्लेशमाहुः ॥१७॥

भा०—चन्द्रमा शनि की राशि (मकर कुम्भ) के नवांश में हो, वा चतुर्थस्थान में हो, शनि से दृष्ट हो वा शनि से युक्त हो तो अन्धकार में सूतिका का शयन कहना। ३ से अधिक ग्रह नीच में हो तो भूमि में ही सूतिका का शयन समझना। और लग्नराशि जिस प्रकार क्षितिज में उदित होता है उसी प्रकार गर्भ का मोक्ष (गर्भस्थ का जन्म) होता है। तथा चन्द्रमा से ७।४ स्थान में पापग्रह हो तो माता को क्लेश होता है ॥१७॥

वि०—अन्धकार प्रसव के योग में शनि को सूर्य देखता हो तो अन्धकार नहीं कहना। यथा—यवनाचार्य—"सौरांशकरस्थे शशिनि प्रलग्ने जले जलाख्यांशकमाश्रिते वा। स्वांशस्थिते केन्द्रगतेऽर्कजे वा जातस्तमिस्रे यदि नार्कदृष्टः" तथा-शीर्षोदय लग्न में जातक का भी प्रथम शीर्षोदय (अर्थात् गर्भ से प्रथम मस्तक का ही उदय) होता है, पृष्ठोदय में प्रथम पैर का उदय और उभयोदय में प्रथम हाथ का उदय होता है। यथा सारावली में—

"शीर्षोदये विलग्ने मूर्धप्रसवोऽन्यथोदये चरणैः । उभयोदये च हस्तैः शुभदृष्टे शोभनोऽन्यथा कष्टम् ॥" इति ॥ १७ ॥

दीप, वत्ती, और सूतिका गृह का द्वार—

स्नेहः शशाङ्कादुदयाच्च वर्तिर्दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशाच्चराद्यः ।
द्वारश्च तद्वास्तुनि केन्द्रसंस्थैर्ज्ञेयं ग्रहैर्वीर्यसमन्वितैर्वा ॥१८॥

सं०—शशाङ्कात् चन्द्रात्, स्नेहो (तैलं) वाच्यः, उदयात् लग्नात् वर्तिर्वाच्या, अर्कयुक्तर्क्षवशात् (सूर्याक्रान्तराशिवशात्) चराद्यो दीपो वाच्यः । केन्द्रसंस्थैर्ग्रहैस्तद्वास्तुनि (सूतिकागृहे) द्वारं ज्ञेयम् । वा वीर्यसमन्वितैर्ग्रहैः सूतिकागृहे द्वारं ज्ञेयम् (केन्द्रे ग्रहाभावे, लग्नराशिवशात् द्वारं वाच्यम्) इत्यर्थात् सिद्ध्यति ॥ १८ ॥

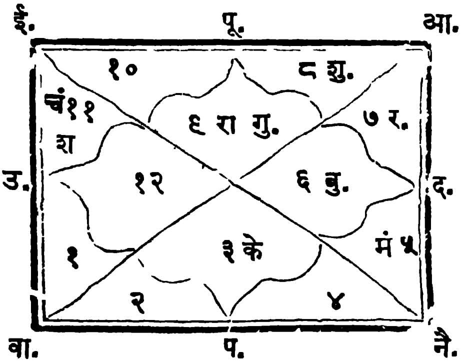
भा०—चन्द्रमा के अंशानुसार दीप में तेल का प्रमाण समझना, अर्थात् चन्द्रमा राशि के आरम्भ अंश में हो तो दीप में तेल भरा हुआ ही समझना ; यदि राशि के अन्त अंश में हो तो तेल का भी अन्त (अभाव) ही समझना, बीच में जितने अंश हो उस अनुपात से तेल का प्रमाण भी समझना चाहिये । तथा उदय (लग्न) के अंश से वाती का प्रमाण इसी प्रकार समझना । तथा सूर्य जिस राशि में हो तदनुसार चर आदि दीप को भी जानना (अर्थात् सूर्य चर में हो तो दीप को भी चलायमान, और स्थिरराशि में हो तो दीप भी स्थिर, तथा द्विस्वभाव के पूर्वार्ध में ही तो दीप स्थिर और उत्तरार्ध में हो तो दीप को चलायमान समझना और जिस दिशा की सूर्यराशि हो उसी दिशा में सूतिका घर में दीप समझना । और केन्द्रस्थित ग्रहों से सूतिका घर का द्वार समझना । केन्द्र में बहुत ग्रह हो तो बलवान् ग्रह की दिशा में सूतिका गृह का द्वार समझना ; केन्द्र में ग्रह नहीं हो तो लग्न राशि की दिशा में द्वार समझना चाहिये ॥ १८ ॥

वि०—जन्मलग्न कुण्डली में प्रथमलग्न पूर्वदिशा, दशमलग्न दक्षिण

दिशा, सप्तमभाव पश्चिम दिशा तथा चतुर्थलग्न को उत्तर दिशा समझना। जिस केन्द्र में ग्रह बली हो उस दिशा में सूतिकागृह का द्वार कहना। अनेको केन्द्र में ग्रहबली हों तो अनेक दिशा में द्वार कहना। यदि केन्द्र में ग्रह नहीं हो तो लग्नराशि जिस दिशा की हो उस दिशा में सूतिका गृह का द्वार कहना। बहुत से टीकाकार का अभिप्राय यह है कि केन्द्र में जो ग्रहबली हों उस ग्रह की दिशा में सूतिकागार का द्वार कहना चाहिये। यथा लघुजातक में—

"द्वारं वास्तुनि केन्द्रोपगाद् ग्रहादसति वा विलग्नर्क्षात्।" स्पष्टार्थ।

उ०—जन्मलग्नकुण्डली—देखिये यहाँ



द्वादश, लग्न और द्वितीय भाव (१२।१।२ ये) पूर्व में, ३, ४, ५ भाव ये उत्तर में ६।७।८ ये भाव पश्चिम में तथा ९,१०,११ ये भाव सर्वदा दक्षिण दिशा में रहते हैं। "दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशात्" इसका अभिप्राय यह है कि लग्नादिद्वादश भाव के अनुसार सूर्य जिस दिशा में हो उस दिशा में दीप समझना। तथा—"प्राच्यादिगृहे क्रियादयो द्वौ द्वौ कोणगता द्विमूर्तयः" इस वचन के अनुसार सूर्य की भावगतदिशा में जो राशि पड़े उस राशि के चर, स्थिर आदि वश दीप को भी चर या स्थिर समझना चाहिये। न कि सूर्य जिस राशि में हो तदनुसार। क्योंकि सूर्य १ राशि में १ मास रहता है। उसके अनुसार तो संसार भर में एक एक मास तक दीप की स्थिति सर्वत्र एक ही होगी जो प्रत्यक्ष असम्भव है।

प्रसङ्गवश कुण्डली में विदिशा का विचार—लग्नकुण्डली देखने से मालूम

होता है कि दो दो भाव दिशा में और एक एक भाव विदिशा (कोण) में रहता है। जैसे द्वादशभाव का भोग्यांश (उत्तरार्ध), प्रथमभाव तथा द्वितीय-भाव का पूर्वार्ध (ये मिलकर २ भाव) पूर्व दिशा में। तथा द्वितीयभाव का उत्तरार्ध और तृतीयभाव का पूर्वार्ध (ये दोनों मिलकर १) ईशानकोण में। एवं तृतीयभाव का उत्तरार्ध, चतुर्थभाव सम्पूर्ण और पञ्चमभाव का पूर्वार्ध (ये मिलकर २ भाव) उत्तर में। पञ्चम का उत्तरार्ध और षष्ठ का पूर्वार्ध (मिलकर १ भाव) वायव्यकोण में। षष्ठ का उत्तरार्ध, सप्तम सम्पूर्ण और अष्टम का पूर्वार्ध (ये मिलकर २ भाव) पश्चिम में। अष्टम का उत्तरार्ध और नवम का पूर्वार्ध (मिलकर १ भाव) नैऋत्य में। नवम का उत्तरार्ध दशम सम्पूर्ण और एकादश का पूर्वार्ध (ये मिलकर २ भाव) दक्षिण में। एवं एकादश का उत्तरार्ध और द्वादशभाव का पूर्वार्ध (मिलकर १ भाव) अग्निकोण में समझना चाहिये ॥ १८ ॥

इस प्रकार जन्मकाल में रवि जिस भाव में हो उस दिशा में दीपक समझना। यथा सारावली--"द्वादशभागविभक्ते वासगृहेऽवस्थिते सहस्रांशौ।
दीपश्चरस्थिरादिषु तथैव वाच्यः प्रसवकाले ॥"

जैसे – प्रथम तो इष्टकाल से दिन वा रात्रि समय समझकर दीपक का विचार करना चाहिये। क्योंकि दिन में प्रायः दीपक नहीं जलाया जाता है। कदाचित् घर में अन्धकार रहता है तभी लोग दिन में दीपक जलाते हैं। यदि इष्टकाल नहीं मालूम हो तो कुण्डली में रवि से आगे ६ राशि के भीतर लग्न हो तो दिन में अन्यथा रात्रि में जन्म समझना चाहिये। यहां जन्मलग्न कुण्डली में रवि से आगे ६ राशि के भीतर ही लग्न है इसलिये दिन में ही जन्म हुआ। यदि दीपक का प्रश्न हो तो रवि एकादश भाव के पूर्वार्ध में है इसलिये दक्षिण भाग में दीपक का स्थान सिद्ध होता है। तथा "प्राच्यादि गृहे क्रियादयो" इत्यादि श्लोकानुसार एकादशभाव का पूर्वार्ध कुम्भ राशि है, वह स्थिर है अतः दीप एक स्थान में स्थिर था। एवं चन्द्रमा=(१०।१३।२५।४३) कुम्भ राशि के १४ वाँ अंश में है अतः

आधा से कुछ कम तेल जल चुका था। तथा लग्न (८।५।१०।१७) के केवल पाँच ही अंश भुक्त हुए हैं इसलिये दीपक में बत्ती का षष्ठांश मात्र जल चुका था ऐसा समझना। तथा लग्न में बृहस्पति और दशम में बुध अपने अपने राशिस्थ हैं। परञ्च बृहस्पति में "दिक्षु बुधाङ्गिरसौ" इस वचन से दिग्बल भी प्राप्त है, इसलिये इन दोनों में बृहस्पति बली है, अतः लग्न की दिशा (पूर्व) अथवा मतान्तर से बृहस्पति की दिशा (ईशान-कोण=उत्तर) में सूतिकागृह का द्वार सिद्ध होता है। मेरे समझने से जिस केन्द्र में बलीग्रह हो या अधिक ग्रह हो उसी दिशा में द्वार समझना। क्योंकि ग्रह तो कोणदिशा का भी अधिपति होता है परञ्च कोण में द्वार बनाना व्यवहार नहीं है। एवं देश-काल और कुल के अनुसार दीप की स्थिति आदि भी समझना। क्योंकि-जिस मकान में बिजली फिट किया हो वहाँ दीप को स्थिर ही कहना। इस प्रकार के विचार लग्न की शुद्धता के लिये ही किये जाते हैं ॥१८॥

ग्रहों के बल से सूतिका गृह का स्वरूप—

जीर्णं संस्कृतमर्कजे क्षितिसुते दग्धं नवं शीतगौ
काष्ठाढ्यं न दृढं रवौ शशिसुते तन्नैकशिल्प्युद्भवम्।
रम्यं चित्रयुतं नवं च भृगुजे जीवे दृढं मन्दिरं
चक्रस्थैश्च यथोपदेशरचनां सामान्तपूर्वो वदेत् ॥१९॥

सं०—अर्कजे शनैश्चरे सर्वग्रहापेक्षया बलान्विते सति जीर्णं (पुराणं) परञ्च संस्कृतं मन्दिरं (सूतिकागृहं) वदेत्। क्षितिसुते (कुजे) बलिनि दग्धं, शीतगौ चन्द्रे बलिनि नवं (नूतन गृहं), रवौ बलिनि काष्ठाढ्यं (बहुकाष्ठसमन्वितं) परञ्च न दृढं, शशिसुते बुधे बलान्विते तत् (सूतिकागृहं) नैकशिल्प्युद्भवं (अनेकशिल्पिविरचितं) भृगौ शुक्रे बलिनि रम्यं चित्रयुतं नवं च, जीवे गुरौ बलिनि दृढं मन्दिरं (सूतिकागृहं) वदेत्।

तथा चक्रस्थैः (जन्मलग्नकुण्डलीस्थितैः) ग्रहैः सामन्तपूर्वां यथोपदेशरचनां (गृहदातृग्रहसमन्तात् स्थितान्यभवनादिस्थितिं) च वदेत् ॥१६॥

भा०—जन्मकाल में यदि सब ग्रहों की अपेक्षा शनैश्चर बलवान् हो तो संस्कार (मरम्मत) किया हुआ पुराना सूतिका गृह कहना । मङ्गल बली हो तो जला हुआ, चन्द्रमा बली हो तो नवीन, रवि बली हो तो बहुत काष्ठों से युक्त होने पर भी मजबूत नहीं, बुध बली हो तो बहुत कारीगरों से बनाया हुआ, शुक्र बली हो तो परम मनोहर चित्रों से युक्त और नवीन तथा बृहस्पति बली हो तो खूब दृढ़ (मजबूत) सूतिका का घर कहना चाहिये । तथा जन्मलग्न कुण्डली में स्थित ग्रहों के अनुसार सूतिकागृह के चारो दिशा में आस पास के मकानों का स्वरूप भी कहना चाहिये ॥१६॥

वि०—अभिप्राय यह है कि—जो ग्रह सब से बली हो उस ग्रह के अनुसार उक्त प्रकार का सूतिका गृह का स्वरूप समझना । तथा उस ग्रह से जिस भाग में जो जो ग्रह हों उस भाग में उस उस ग्रह के सदृश उक्त रीति से अन्य भवनों का भी स्वरूप समझना चाहिये ॥

उ०—जैसे-उक्त कुण्डली में सबसे बली बृहस्पति है, अतः सूतिकागृह खूब मजबूत है । तथा उसके बाएँ भाग (पिछुआड़े की ओर) शुक्र पड़ता है इसलिये उधर मनोहर चित्रों से युक्त नवीन मकान समझना । तथा बृहस्पति के बाएँ भाग में रवि बुध और मंगल है अतः उधर १ मकान, काष्ठों से युक्त परञ्च, अदृढ़, दूसरा अनेक कारीगरों से बनाया हुआ तथा तीसरा कुछ जला हुआ मकान कहना । एवं बृहस्पति से दहिने भाग में चन्द्रमा और शनि है इसलिये सूतिका गृह के दहिने भाग में १ नवीन और दूसरा पुराण मकान भी है ऐसा कहना चाहिये ॥क्ष॥

विशेषध्येय—अपने से सप्तम सम्मुख, दसमभाव वाम, चतुर्थभाव दहिने भाग में तथा साथ में रहनेवाला ग्रह पृष्ठ भाग में समझा जाता है । इस प्रकार सब से बली ग्रह से सूतिका गृह तथा उसके आगे पीछे अन्य ग्रहों की स्थिति से अन्य गृहों का स्वरूप समझना चाहिये ॥१६॥

सूतिका गृह में सूतिका निवास भाग का ज्ञान—

मेष-कुलीर-तुला-ऽलि-घटैः प्रागुत्तरतो गुरुसौम्यगृहेषु ।
पश्चिमतश्च वृषेण निवासो दक्षिणभागकरौ मृगसिंहौ ॥२०॥

सं०—मेष-कुलीर-तुला-ऽलि-घटैः 'लग्नगतैः', प्राग् (गृहपूर्वभागे) सूतिकाया निवासो ज्ञेयः । गुरुसौम्यगृहेषु (धनुर्मीन-कन्या-मिथुनेषु) लग्नगतेषु उत्तरतः (गृहोत्तरभागे), वृषेण 'लग्नगतेन' पश्चिमतः (पश्चिमभागे) निवासो ज्ञेयः । मृग-सिंहौ लग्नगतौ दक्षिणभागकरौ भवतः 'मकरे सिंहे वा लग्नगते सति गृहदक्षिणे भागे सूतिकानिवासस्थानं ज्ञेयमित्यर्थः ॥२०॥

भा०—मेष, कर्क, तुला, वृश्चिक और कुम्भ लग्न हो तो घर के पूर्वभाग में सूतिका का निवास समझना । धनु, मीन, कन्या या मिथुन लग्न हो तो उत्तर भाग में, वृषलग्न हो तो पश्चिमभाग मे और मकर या सिंह लग्न हो तो दक्षिण भाग में सूतिका का निवास समझना चाहिये ॥२०॥

सूतिकागृह में मेषादि १२ राशियों के तथा शय्या में लग्नादि १२ भावों के स्थान—

प्राच्यादिगृहे क्रियादयो द्वौ द्वौ कोणगता द्विमूर्तयः ।
शय्यास्वपि वास्तुवद्वदेत्पादैः षट्त्रिनवान्त्यसंस्थितैः॥२१॥

सं०—गृहे (सूतिकाभवने) प्राच्यादि यथा स्यात् तथा (पूर्वदिशमारम्य क्रमेण) क्रियादितः (मेषादितः) द्वौ द्वौ 'चर-स्थिरौ' तथा द्विमूर्तयः (द्विस्वभावा मिथुनादयः) कोणगताः (ऐशान्यादिविदिग्गताः) ज्ञेयाः । शय्यास्वपि वास्तुवत् (सूतिकागृहवद्) वदेत् किन्त्वत्र लग्नात् द्वौ द्वौ शिरोभागादिचतुर्दिक्षु ज्ञेयौ, पादैः (खट्वाचरणैः) षट्त्रिनवान्त्यसंस्थितैर्भवितव्यम् । अत्रैतदुक्तं भवति—खट्वायाः शिरोभागं पूर्वदिशं प्रकल्प्य-लग्नद्वितीयभावौ शिरसि, तृतीयभाव ईशानगतपादे, चतुर्थपञ्चमौ उत्तरभागे, षष्ठो भावो वायव्यदिग्गतपादे, सप्तमाष्टमौ पश्चिमेभागे, नवमभावो नैर्ऋतिदिग्गतपादे, दशमैकादशौ दक्षिणभागे, द्वादशभावस्त्वाग्नेयकोणगतपादे ज्ञेयः ॥

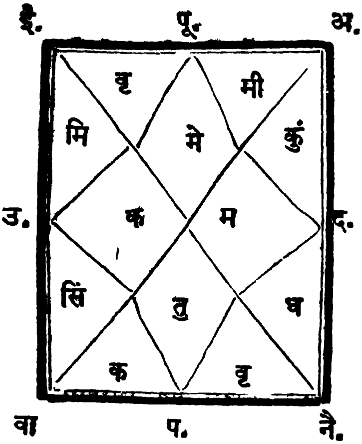
भा०—सूतिका भवन में मेष और वृष पूर्व में, मिथुन ईशानकोण में, कर्क और सिंह उत्तर भाग में, कन्या वायव्य भाग में, तुला वृश्चिक पश्चिम भाग में, धनु नैर्ऋत्यकोण में, मकर कुम्भ दक्षिण में और मीन अग्निकोण में रहता है। अर्थात् इस प्रकार सूतिकागृह में राशियों के स्थान हैं । इसी प्रकार शय्या (सूतिका की खटिया) में भी लग्नादि द्वादश भाव के स्थान समझे परञ्च वहाँ ६।३।६।१२ भाव खटिया के पाँवों में समझना। अर्थात् खटिया के शिरहाने को पूर्वदिशा कल्पना करके लग्न और द्वितीय (१।२) भाव पूर्व (शिरहाने) में ३ तृतीयभभाव शिरहाने के बाएँ पावे में। ४,५ भाव उत्तर (बाएँ भाग) में, ६ षष्ठभाव पिछले बाएँ पावे में। ७,८ भाव पश्चिम (पौथान) भाग में, ९ नवम भाव पौथाने के दहिना पाव में । १०,११ भाव दक्षिण (दहिने भाग) और १२ द्वादश भाव शिरहाने के दहिने पाव में समझना। इसका प्रयोजन शय्यादि के स्वरूप समझने में होता है। यथा आचार्य ने स्वयं लघुजातक में कहा है—

"षट्त्रिनवान्त्याः पादाः खट्वाङ्गान्यन्तरालभवनानि ।
विनतत्त्वं यमलर्क्षैः क्रूरैस्तत्तुल्य उपघातः ॥" इति ॥

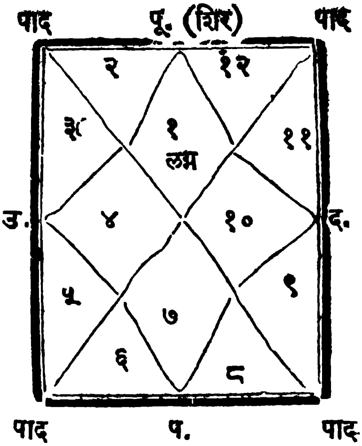
भावार्थ यह है कि—लग्न से ६,३,९,१२ ये शय्या के पावे, और १,२ आदि भाव सिरहाने आदि चारों भाग में रहते हैं। जिस स्थान में द्विस्वभाव राशि पड़ती है उस स्थान में नम्रता (झुकाव) और जिस स्थान की राशि पापग्रह से युक्त हो वहाँ शय्या के अंग में उंपघात समझना ॥ २१ ॥

वि०—यहाँ भट्टोत्पल ने वस्तुस्थिति से उल्टा ही अर्थ किया है कि—मेष, वृष, पूर्व, मिथुन अग्निकोण, कर्क, सिंह दक्षिण और कन्या नैर्ऋत्यकोण, तुला, वृश्चिक पश्चिम, धनु वायुकोण, मकर कुम्भ उत्तर और मीन ईशानकोण में। परञ्च इस प्रकार की कल्पना प्रत्यक्ष विरुद्ध प्रतीत होती है । क्योंकि सृष्ट्यारम्भ में जो राशियों के स्थान थे उसके अनुसार पूर्व कथित अर्थ ही ठीक है। तथा लग्नादि द्वादश भावों के स्थान भी पूर्वकथित अर्थानुसार ही रहते हैं। नीचे कुण्डली देखिये।

सृष्ट्यादिमेंराशिस्थिति-



तात्कालिकभावस्थिति-



इससे स्पष्ट सिद्ध है कि सृष्टिक्रम से मेष पूर्व, कर्क उत्तर, तुला पश्चिम और मकर दक्षिण दिशा में होता है। एवं लग्न पूर्व, चतुर्थ भाव उत्तर, सप्तम पश्चिम तथा दशम दक्षिण दिशा में पड़ता है। भट्टोत्पल के अर्थानुसार इससे विरुद्ध होता है। मेरा आग्रह यह नहीं है कि भट्टोत्पल का अर्थ असङ्गत ही है। मै तो अपना आशय प्रकट कर दिया है, क्योंकि यह आगम शास्त्र है, जिस अर्थ के अनुसार फल घटित हो वही वास्तव मानना चाहिये। कहा भी है—

"ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये ॥" इति ॥

उपसूतिका की संख्या का ज्ञान—

लग्नचन्द्रान्तरगतैर्ग्रहैः स्युरुपसूतिकाः।
बहिस्थाश्च चक्रार्द्धे दृश्यांऽदृश्येऽन्यथापरे ॥ २१॥

सं०—लग्नचन्द्रान्तरगतैः (लग्नादारभ्य चन्द्रावधिस्थितैः) ग्रहैरुपसूतिकाः (सूतिकासमीपस्थिताः स्त्रियः) स्युः, लग्नचन्द्रान्तरगता यावन्तो

ग्रहास्तावत्यस्तत्तद्ग्रहजातिवयोवर्णस्वरूपा उपसूतिका वक्तव्या इत्यर्थः । अथ प्रकारान्तरेण कथयति बहिरन्तश्चेति । दृश्ये चक्रार्धे (सप्तमभावभोग्यांशादारभ्य लग्नभुक्तांशावधि दृश्यं चक्रार्धं तस्मिन्) यावन्तो ग्रहास्तावत्य उपसूतिका बहिः (सूतिकागृहाद् बाह्यस्थिताः) तथा चादृश्ये चक्रार्धे (लग्नभोग्यांशानारभ्य सप्तमभुक्तांशावधि-अदृश्यं चक्रार्धं तस्मिन्) यावन्तो ग्रहाः स्थितास्तावत्यस्तद्ग्रहजातिवयोवर्णरूपा उपसूतिका अन्तः (सूतिकागृहाभ्यन्तर्गताः) विज्ञेयाः । अपरेऽन्ये आचार्या अन्यथाऽर्थाद् यावन्तो ग्रहा दृश्यचक्रार्धे तावत्यो गृहान्तर्गताः, यावन्तो ग्रहा अदृश्यचक्रार्धे स्युस्तावत्यो बहिःस्थिता विज्ञेया इति वदन्ति ॥२२॥

भा०—लग्न से चद्रमा पर्यन्त जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिका (सूतिका के समीप में रहनेवाली अन्य स्त्रियों) की संख्या समझनी चाहिये । दूसरा प्रकार कहते है कि—दृश्य चक्रार्ध में जितने ग्रह हों उतनी स्त्री सूतिकागृह के बाहर, और अदृश्यचक्रार्ध में जितने ग्रह हों उतनी सूतिकागृह में अन्य स्त्रियों की संख्या समझे । अन्य आचार्य इससे अन्यथा कहते हैं, अर्थात् जितने ग्रह दृश्यचक्रार्ध में, हों उतनी घर में, और जितने ग्रह अदृश्यचक्रार्ध में हों उतनी उपसूतिका घर से बाहर समझे ॥२२॥

विशेष—यहाँ विशेषता यह है कि जो ग्रह अपने उच्च या मूलत्रिकोण में या वक्र हों उतनी संख्या को ३ गुना और जितने ग्रह स्वराशि स्वनवांश स्वद्रेष्काण में हों उतनी संख्या को दो गुंना करके उपसूतिका की संख्या बतावे । यथा आचार्य स्वयं आगे कहे हैं—"स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसङ्गुणं द्विरुत्तमस्वांशकमत्रिभागगैः ॥" तथा उन उन ग्रहों के वयस, रूप, स्वभाव, वर्ण आदि उपसूतिका के समझना । यथा सारावली—

"लक्षणरूपविभूषणयोगास्तासां शुभैर्योगात् ।
क्रूरैर्विरूपदेहा लक्षणहीनाश्च रौद्रमलिनाश्च ॥
मिश्रैर्मध्यमरूपा बलसहितैः सर्वमेतदवधार्यम् ॥" इत्यादि ॥

तथा सप्तमभाव के भोग्यांश, ८,९,१०,११,१२ और लग्नभुक्तांश ये

दृश्य तथा लग्नभोग्यांश २,३,४,५,६ भाव और सप्तमभाव 'भुक्तांश' ये अदृश्य चक्रार्ध है ॥२२॥

जातक का शरीर और वर्ण ज्ञान—

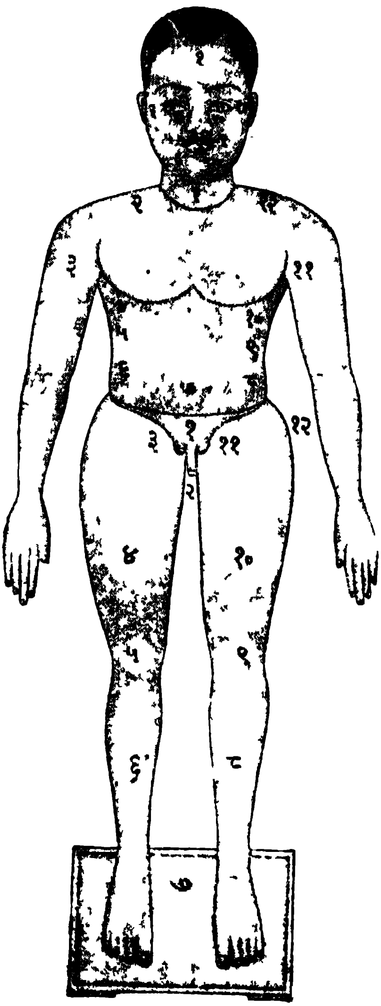
लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद्वीर्ययुतग्रहतुल्यवपुर्वा ।
चन्द्रसमेतनवांशपवर्णः कादिविलग्नविभक्तभगात्रः ॥२३॥

सं०—लग्ननवांशपतुल्यतनुः [लग्ने यो नवांशस्तत्स्वामिग्रहसदृशाकारो जातकः) स्यात् । वा 'लग्ननवांशपतौ निर्बले सति' वीर्ययुतग्रहतुल्यवपुः [जन्मनि यो ग्रहो वीर्याधिकस्तत्तुल्यशरीरो जातको] वक्तव्य इत्यर्थः । तथा चन्द्रसमेतनवांशपवर्णः [चन्द्रेण समेतः सहितो यो नवांशस्तत्पतिग्रह-वर्णसदृशवर्णो गौरश्यामादिको] जातकोऽपि ज्ञेयः । तथा च जातकः—कादिविलग्नविभक्तभगात्रः (कादिषु शीर्षादिपु विलग्नाद्विभक्तानि भानीति कादिविलग्नविभक्तभान्यैवं भूतानि गात्राणि यस्य स तथोक्तो] ज्ञेयः ॥२३॥

भा०—लग्न जिस ग्रह के नवमांश में हो उस ग्रह के समान जातक का (ह्रस्व, मध्य, या दीर्घ) आकार समझना चाहिये अथवा नवांशपति निर्बल हो तो जो ग्रह सब से बली हो उसी के समान आकार समझना । तथा चन्द्रमा जिस ग्रह के नवांश में हो उस ग्रह के समान (गौर, कृष्ण आदि) वर्ण कहना चाहिये । तथा आगे कहे हुए श्लोकानुसार मस्तकादि अङ्गों में लग्नादिराशियों द्वारा विभक्त अवयव जातक का समझकर फल कहना चाहिये ॥२३॥

विशेष—यहाँ वर्ण आकृति आदि का ज्ञान देश, कुल, जाति के अनुसार भी तारतम्य से समझकर बताना चाहिये । जैसे चन्द्रमा यदि शनि के नवमांश में हो तो शनि के समान जातक भी कृष्ण वर्ण होना चाहिये, किन्तु यदि किसी यूरोपीय, या भारतीय भी काश्मीर प्रान्त के ब्राह्मण या क्षत्रिय हो तो उसे कृष्ण (काला) वर्ण नहीं समझकर गौर वर्ण ही कहना चाहिये । यथा—आचार्य ने स्वयं भी लघुजातक में कहा है कि—"बुध्वा वा जातिकुलदेशान् ।" इति ॥२३॥

व्रणमशकादि ज्ञानार्थं लग्नद्रेष्काणवश अङ्गों का विभाग--



कं दृक्छ्रोत्रनसाकपोल-
हनवो वक्त्रं च होरादय-
स्ते कण्ठांशकबाहुपार्श्व-
हृदयक्रोडानि नाभिस्ततः।
बस्तिः शिश्नगुदे ततश्च
वृषणावूरू ततो जानुनी
जङ्घाङ्घ्रीत्युभयत्र वाम-
मुदितैर्दृक्काणभागैस्त्रिधा ॥

सं०—'लग्नगतैस्त्रिभिः' द्रेष्काणभागैस्त्रिधा अङ्गविभागा ज्ञेयाः । यथा- प्रथमे द्रेष्काणे होरादयो [लग्नादयो] राशयः क्रमेण कंदृक्-श्रोत्र-नसा-कपोल-हनवो वक्त्रं [मुख] चेति । द्वितीये द्रेष्काणे ते [होरादयः] क्रमेण कण्ठांसकबाहुपार्श्वहृदय क्रोडानि तथा नाभिः । ततस्तृतीये द्रेष्काणे वस्तिः शिश्नगुदे, ततश्च वृषणौ, ऊरू, ततो जानुनी जङ्घाङ्घ्रीति–उभयत्र [दक्षिण-विभागे वामविभागे च] ज्ञेयम्।

तत्र उदितैः (क्षितिजोर्ध्वगतैः = सप्तमभोग्यांशानारभ्याष्टमनवमदशमैकादश-

द्वादशभावलग्नभुक्तांशैः) वाममङ्गमर्थादेवानुदितैः [लग्नभोग्यांशद्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठभावसप्तमभुक्तांशैः = क्षितिजाधोगतैः] दक्षिणमङ्गं ज्ञेयम् ॥ २४ ॥

भा०—लग्नगत द्रेष्काण से लग्नादि द्वादश भावों से मस्तकादि अङ्ग-विभाग तीन प्रकार होते हैं। उनमें उदित (क्षितिजोर्ध्वगत = सप्तमभाव का भोग्यांश, ८,९,१०,११,१२ और लग्नका भुक्तांश इन) भावों से वाम अङ्ग तथा-अनुदित (क्षितिजाधः स्थित—लग्नभोग्यांश, २,३,४,५,६ और सप्तमभाव का भुक्तांश इन) भावों से दक्षिण अङ्ग समझना। जैसे लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न १ मस्तक, और २,१२ नेत्र ३,११ कान, ४,१० नाक, ५,९ गाल, ६,८ हनु (दोनों गालों के नीचे भाग) और ७म भाव मुख। एवं लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न कण्ठ, २,१२ कन्धा, ३,११ बाहु, ४,१० बगल, ५,९ दोनों तरफ के हृदय भाग, ६,८ दोनों तरफ के पेट भाग, और ७म भाव नाभि। यदि तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न वस्ति (नाभि और लिङ्ग के मध्य भाग), २,१२ लिङ्ग गुदा, ३,११ दोनों अण्डकोश, ४,१० ऊरू, ५,९ जानू, ६,८ घुटना और सप्तम भाव पैर समझना चाहिये। स्पष्टार्थ आकार चक्र देखिये ॥ २४ ॥

अब अङ्ग में व्रण, चिह्नादि का ज्ञान—

तस्मिन् पापयुते व्रणं शुभयुते दृष्टे च लक्ष्मादिशे-
त्स्वर्क्षांशे स्थिरसंयुतेषु सहजः स्यादन्यथागन्तुकः।
मन्देऽश्मानिलजोऽग्निशस्त्रविषजो भौमे बुधे भूभवः
सूर्ये काष्ठचतुष्पदेन हिमगौ शृङ्ग्यब्जजोऽन्यैः शुभम् ॥२५॥

सं०—तस्मिन् [द्रेष्काणवशविभक्तराश्यङ्गे] पापयुते पापग्रहसहिते सति तत्र व्रणं आदिशेत् [कथयेत्], तथा च पापयुतेऽपि तस्मिन् शुभयुते शुभैर्दृष्टे वा लक्ष्म [केवलं तत्राऽङ्गे चिह्नं] आदिशेत्। यदि स पापग्रहः स्वर्क्षे स्वराशौ स्वांशे, अथवा स्थिरमेऽग्रके स्थिरराशौ, स्थिरनवांशे

च स्थितस्तदा सहजः जन्मनि सहैव जातो व्रणः स्यात् अन्यथा [अन्यराशौ, चरादिस्वभावे राश्यंशे वा स्थितश्चेत् तदा] आगन्तुकः [जन्मकालोत्तरं तद्ग्रहदशाऽन्तर्दशासमये भावी] व्रणो वक्तव्यः । अथ स व्रणः किम्भूत इत्याह-मन्दे शैवश्चरेऽश्मानिलजः [पाषाणघातोद्भवो वातव्याधिजो वा] वाच्यः । भौमेऽग्निशस्त्रविषजः [अग्न्युद्भवः, शस्त्रजः, विषजो वा] वक्तव्यः । बुधे [पापयुतबुधे] भूभवः [भूमौ पतनादिसम्भवः] व्रणो वाच्यः । सूर्ये काष्ठचतुष्पदेन [काष्ठहेतुकश्चतुष्पदजनितो वा] व्रणो वाच्यः । हिमगौ [क्षीणे चन्द्रे] शृङ्ग्यब्जजः [शृङ्गिजन्तुजनितः, अब्जजो जलचरजन्तुकृतो वा] व्रणो वक्तव्यः । अन्यैः शुभग्रहैः [अपापयुतबुध-पूर्णचन्द्र-गुरु-शुक्रैः] युते शुभं वाच्यम् । यत्र केवलं पापग्रहस्तत्र व्रणः । यत्र शुभयुतः पापस्तत्र मशकादिचिह्नम्, यत्र केवलं शुभग्रहस्तत्राङ्गे पुष्टतादि शुभं फलं वाच्यमित्यर्थः ॥२५॥

भा०—पूर्वरीति से विभक्त अङ्ग विभागस्थराशियों में-जिसमें केवल पापग्रह (पापयुत बुध, क्षीणचन्द्र रवि मंगल वा शनि) हो उस अङ्ग में व्रण (घाव) कहना । यदि वह पापग्रह शुभ से युक्त या दृष्ट हो तो उस अङ्ग में मशक तिल आदि चिह्नमात्र कहना। यदि वह पापग्रह अपनी राशि नवांश, या स्थिर राशि नवांश में हो तो जन्म के साथ ही उस स्थान में व्रण या चिह्न कहना । यदि अन्यराशि नवांश में हो तो उस ग्रह की दशा अन्तर्दशा काल में वर्ण आदि भावी कहना । जिस अङ्ग में शनैश्चर हो वहां पत्थल के चोट से, अथवा वातरोग से व्रण कहना । जिसमें मङ्गल हो वहाँ अग्नि, शस्त्र या विष से, जहाँ पापयुत बुध हो वहाँ पृथ्वी पर गिरने आदि से, जहाँ सूर्य हो वहाँ लकड़ी या पशुओं के आघात से और जहाँ क्षीण चद्रमा हो वहाँ सींगवाले जन्तु या जलचर जन्तु के आघात से व्रण कहना चाहिये । और अन्य अर्थात् शुभग्रह जहाँ हो उस अङ्ग में शुभफल (पुष्ट वा मनोहरता आदि) कहना चाहिये ॥२५॥

वि—यहां केवल पापग्रह ही व्रणकारक कहा गया है। अतः बुध के स्थानमें पापयुत बुध, चन्द्रमाके स्थान में क्षीण चद्रमा ही समझना चाहिये ॥

निश्चयात्मक व्रणयोग—

समनुपतिता यस्मिन् भागे त्रयः सबुधा ग्रहा
भवति नियमात्तस्यावाप्तिः शुभेष्वशुभेषु वा ।
व्रणकृदशुभः षष्ठे देहे तनोर्भसमाश्रिते
तिलकमसकृद्दृष्टः सौम्यैर्युतश्च स लक्ष्मवान् ॥२६॥

इति बृहज्जातके सूतिकाध्यायः ॥५॥

सं—सबुधा बुधेन सहितास्त्रयो ग्रहा यस्मिन् भागे समनुपतिताः तेषु शुभेषु अशुभेषु वा तस्य [व्रणस्य] अवाप्तिः नियमात् भवति । तनोः [लग्नात्] षष्ठे अशुभो भसमाश्रिते देहे [कालाङ्गानीत्यादिना राश्यङ्गे] व्रणकृत् भवति । सौम्यैर्दृष्टः तिलकमसकृद्भवति । सः [पापः] सौम्यैर्युतस्तदा लक्ष्मवान् [चिह्नयुतो] भवति ॥२६॥

भा०—बुध के सहित और तीन ग्रह जिस अङ्ग विभाग में पड़े वे पाप-ग्रह वा शुभग्रह हों उस अंग में व्रण या चिह्न अवश्य होता है। और लग्न से षष्ठभाव में पापग्रह हो तो 'कालाङ्गानीत्यादि" क्रम से वह राशि जिस अङ्ग में हो उस अङ्ग में भी व्रण होता ही है। वह षष्ठस्थ पापग्रह यदि शुभग्रह से दृष्ट हो तो उस अङ्ग में तिल वा मसक (मांस वृद्धि), तथा शुभग्रह से युक्त हो तो केवल चिह्न कहना चाहिये ॥२६॥

इति बृहज्जातकटीकायां तत्त्वार्थदीपिकायां प्रसूतिकाध्यायः ॥५॥

स-भङ्गारिष्टाध्यायः ॥ ६ ॥

अरिष्टयोग—

सन्ध्यायां हिमदीधितिहोरा पापैर्भान्तगतैर्निधनाय ।
प्रत्येकं शशिपापसमेतः केन्द्रैर्वा स विनाशमुपैति ॥ १ ॥

सं०—सन्ध्यायां हिमदीधितिहोरा पापैर्भान्तगतैर्जातकस्य निधनाय भवति । वा प्रत्येकं केन्द्रैः शशिपापसमेतैः 'यस्य जन्म भवति' स विनाश-मुपैति ॥ १ ॥

भा०—सन्ध्याकाल में चन्द्रमा की होरा हो और पापग्रह सब राशि के अन्तिम नवांश में हों तो जातक के मरणकारक होते हैं । वा चारो केन्द्र में चन्द्रमा और पापग्रह हों तो भी वह जातक मर जाता है ॥ १ ॥

चक्रस्य पूर्वापरभागगेषु क्रूरेषु सौम्येषु च कीटलग्ने ।
क्षिप्रं विनाशं समुपैति जातः पापैर्विलग्नास्तमयाभितश्च ॥२॥

सं०—क्रूरेषु सौम्येषु 'क्रमेण' चक्रस्य पूर्वापरभागगेषु दशमभावभोग्यांशैकादश-द्वादश-लग्न-द्वितीय-तृतीयभाव चतुर्थभावभुक्तांशाश्च कस्य पूर्वभागः, शेषं परभागः, क्रूरेषु पूर्वभागगेषु, शुभेषु परभागगेषु सत्सु, कीटलग्ने कर्के वृश्चिके वा लग्नगते च सति 'यस्य जन्म' स क्षिप्रं विनाशं समुपैति । वा पापैर्विलग्नास्तमयाभितश्च (लग्नसप्तमयोरग्रपृष्ठतः) स्थितैः जातः क्षिप्रं विनाशं समुपैति ॥ २ ॥

भा०—चक्र के पूर्वार्ध में (दशमभावराश्यादि से आगे चतुर्थभाव-राश्यादिपर्यन्त अर्थात् पूर्वकपाल में) पापग्रह हों, और चक्र के परार्ध (पश्चिमकपाल = चतुर्थभाव से आगे दशमभावपर्यन्त) में शुभग्रह हों तो जातक शीघ्र मर जाता है । तथा लग्न से द्वितीय द्वादश और सप्तम से द्वितीय द्वादश में पापग्रह हों तो भी शीघ्र जातक का मरण होता है ॥ २ ॥

वि०—भगवान गर्ग का वचन "रिपुव्ययगतैः पापैर्यदि वा धनमृत्युगैः। लग्ने वा पापमध्यस्थे द्यूने वा मृत्युमाप्नुयात्।" ॥ २ ॥

पापावुदयास्तगतौ क्रूरेण युतश्च शशी।
दृष्टश्च शुभैर्न यदा मृत्युश्च भवेदचिरात् ॥ ३ ॥

सं०—पापौ उदयास्तगतौ शशी चन्द्रश्च क्रूरेण युतः, यदा च शुभैर्न दृष्टस्तदाऽचिरादर्थात् (शीघ्रं) मृत्युर्भवेत् ॥ ३ ॥

भा०—लग्न और सप्तम में पापग्रह हो, चन्द्रमा भी पापग्रह से युक्त हो तथा शुभग्रह से दृष्ट न हो तो जातक का शीघ्र मरण होता है ॥ ३ ॥

क्षीणे हिमगौ व्ययगे पापैरुदयाष्टमगैः।
केन्द्रेषु शुभाश्च न चेत् क्षिप्रं निधनं प्रवदेत्॥४॥

सं०—क्षीणे हिमगौ चन्द्रे व्ययगे, पापैरुदयाष्टमगैः, केन्द्रेषु शुभाश्च न चेत् तदा क्षिप्रं निधनं प्रवदेत् ॥ ४ ॥

भा०—क्षीण चन्द्रमा द्वादशभाव में हो और लग्न तथा अष्टम में पापग्रह हो और किसी केन्द्र में शुभग्रह नहीं हो तो शीघ्र ही मरण कहना ॥४॥

खलेन संयुतः शशी स्मरान्त्यमृत्युलग्नगः।
चतुष्टयाद्बहिः शुभैरवीक्षितश्च मृत्युदः ॥५॥

सं०—यदि खलेन पापग्रहेण संयुतः शशी चन्द्रः स्मरान्त्यमृत्युलग्नगः, चतुष्टयाद्बहिः शुभैः अवीक्षितः न दृष्टश्च तदा मृत्युदः स्यात् ॥ ५ ॥

भा०—पापग्रह से युक्त चन्द्रमा यदि ७, १२, ८, १ इन भावों में हो और केन्द्र से भिन्न स्थान में शुभग्रह हो उन शुभग्रहों से दृष्ट न हो तो मृत्युप्रद होता है ॥ ५ ॥

शशिन्यरिविनाशगे निधनमाशु पापेक्षिते
शुभैरथ समाष्टकन्दलमतश्च मिश्रैः स्थितिः।

असद्भिरवलोकिते बलिभिरत्र मासं शुभे
कलत्रसहिते च पापविजिते विलग्नाधिपे ॥ ६ ॥

सं०—शशिनि चन्द्रे अरिविनाशगे षष्ठाष्टमस्थे पापेक्षिते सति, आशु निधनं भवति, अथ शुभैरीक्षते समाष्टकं स्थितिः, मिश्रैः 'ईक्षिते' अतो दलं (वर्षचतुष्टयं) स्थितिः । तथा अत्र (अस्मिन् अरिविनाशस्थाने) शुभे स्थिते' बलिभिरसद्भिरवलोकिते सति मासं स्थितिः' विलग्नाधिपे कलत्रसहिते पापविजिते च 'जातस्य' मासं स्थितिः (जीवनं) स्यात् ॥ ६ ॥

भा०—चन्द्रमा ६।८ स्थान में पापग्रह से दृष्ट हो तो शीघ्र मरण कहना । यदि शुभग्रह से दृष्ट हो तो जातक की स्थिति (जीवन) ८ वर्ष तक, यदि पाप शुभ दोनों से दृष्ट हो तो उसका आधा (४ वर्ष तक) स्थिति कहना । यदि ६।८ में शुभग्रह हो और बलवान पाप से दृष्ट हो तो १ मास मात्र तथा पापग्रह से पराजित लग्नेश यदि सप्तम भाव में हो तो भी १ मास स्थिति (जीवन) कहना ॥ ६ ॥

लग्ने क्षीणे शशिनि निधनं रन्ध्रकेन्द्रेषु पापैः
पापान्तःस्थे निधनहिबुकद्यूनसंस्थे च चन्द्रे ।
एवं लग्ने भवति मदनच्छिद्रसंस्थैश्च पापै-
र्मात्रा सार्द्धं यदि न च शुभैर्वीक्षितः शक्तिभृद्भिः ॥७॥

सं०—क्षीणे शशिनि लग्ने सति, पापैः रन्ध्रकेन्द्रेषु 'स्थितैः' निधनं (मरणं) भवति । 'तथा' चन्द्रे पापान्तःस्थे निधनहिबुकद्यूनयुक्ते च निधनं भवति । एवं लग्ने 'पापान्तःस्थे' सति, पापैर्मदनच्छिद्रसंस्थैश्च मात्रा सार्धं निधनं भवति । यदि च शक्तिभृद्भिः शुभैः वीक्षितो न तदैव, (अर्थात् शुभेक्षिते निधनं न भवति) ॥ ७ ॥

भा०—क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो और पापग्रह अष्टम तथा केन्द्रस्थान में हो तो जातक का मरण होता है । तथा चन्द्रमा यदि पापग्रहों के मध्य

में होकर ८।४।७ इन स्थान में हो तो मरण कहना। तथा यदि लग्न इस प्रकार पाप मध्य में हो और ७।८ में पापग्रह हों तो माता के सहित जातक का मरण होता है। यदि बलवान् शुभग्रह से दृष्ट न हो तभी मरण होता, अर्थात् बली शुभग्रह से दृष्ट हो तो उपरोक्त योग में मरण नहीं कहना ॥७॥

राश्यन्तगे सद्भिरवीक्ष्यमाणे चन्द्रे त्रिकोणोपगतैश्च पापैः।
प्राणैः प्रयात्याशु शिशुर्वियोगमस्ते च पापैस्तुहिनांशुलग्ने ॥

सं०—चन्द्रे राश्यन्तगे सद्भिः शुभैरविक्ष्यमाणे सति पापैस्त्रिकोणोपगतैश्च शिशुर्जातक आशु प्राणैर्वियोगं प्रयाति मरणमेति। तथा च पापैरस्ते 'स्थितैः' तुहिनांशुलग्ने सति आशु प्राणैर्वियोगं प्रयाति ॥ ८ ॥

भा० – यदि चन्द्रमा राशि के अन्तिमनवांश में हो और शुभग्रह से दृष्ट न हो तथा त्रिकोण में पापग्रह हों तो जातक शीघ्र मरण प्राप्त करता है। तथा सप्तमभाव में पापग्रह और चन्द्रमा लग्न में हो तो भी शीघ्र मर जाता है ॥

अशुभसहिते ग्रस्ते चन्द्रे कुजे निधनाश्रिते
जननिसुतयोर्मृत्युर्लग्ने रवौ तु स शस्त्रजः।
उदयति रवौ शीतांशौ वा त्रिकोणविनाशगै-
र्निधनमशुभैर्वीर्योपेतैः शुभैर्न युतेक्षिते ॥ ९ ॥

सं०—अशुभसहिते ग्रस्ते चन्द्रे लग्ने सति, कुजे निधनाश्रिते सति जननिसुतयोर्मृत्युर्भवति। एवं रवौ (अशुभसहिते ग्रस्ते रवौ लग्ने, कुजे निधनाश्रिते) तु स (जननिसुतयोर्मृत्युः) शस्त्रजो भवति। रवौ उदयति वा शीतांशौ उदयति सति, अशुभैस्त्रिकोणविनाशगैः निधनं भवति, यदि वीर्योपेतैः शुभैर्न युतेक्षिते, अर्थात् शुभैर्युतेक्षिते निधनं न भवति ॥ ९ ॥

भा०—पापग्रह से युक्त और राहु से ग्रस्त चन्द्रमा लग्न में हो और मङ्गल ८ भाव में हो तो माता सहित जातक का मरण होता है। यदि इस प्रकार का योग सूर्य में हो (अर्थात् पापयुत और राहुग्रस्त सूर्य लग्न में और मङ्गल अष्टम में हो) तो उक्त मरण शस्त्र के द्वारा समझना। सूर्य उदय (लग्न) में हो वा चन्द्रमा लग्न में हो और पापग्रह ५।९।८ स्थान में हो तो मरण होता है। यदि बली शुभग्रह से युत दृष्ट न हो, अर्थात् शुभग्रह से युत दृष्ट हो तो मरण नहीं होता है ॥९॥

असितरविशशाङ्कभूमिजै—र्व्ययनवमोदयनैधनाश्रितैः।
भवति मरणमाशु देहिनां यदि बलिना गुरुणा न वीक्षिताः ॥

सं०—असितरविशशाङ्कभूमिजैः शनिरविचन्द्रकुजैर्व्ययनवमोदयनैधनाश्रितैः देहिनां जन्मवतां आशु मरणं भवति। यदि बलिना गुरुणा न विक्षितास्तदा ॥ १० ॥

भा०—शनि, रवि, चन्द्र, मङ्गल ये क्रम से १२,९,१,८ में स्थित हों तो जातकों का शीघ्र मरण होता है। यदि बलवान् गुरु से दृष्ट न हो, अर्थात् बलवान् गुरु से दृष्ट हो तो मरण नहीं होता है ॥१०॥

सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः।
भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा ॥

सं०—अशुभयुतः शीतरश्मिश्चन्द्रः सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेषु 'स्थितः' मरणाय भवति, यदि बलिभिर्भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्युतो वाऽवलोकितो न भवति ॥११॥

भा०—पापयुक्त चन्द्रमा ५,७,९,१२,१,८ स्थान में हो तो मरण होता है। यदि बली शुक्र, बुध या गुरु से युत वा दृष्ट न हो। यदि इनसे युत वा दृष्ट हो तो मरण नहीं होता है ॥११॥

❀ यागे स्थानं गतवति बलिनश्चन्द्र् स्वं वा तनुगृहमथ वां ।
पापैर्दृष्टे बलवति मरणं वर्षस्यान्तः किल मुनिगदितम् ॥१२॥

ग्रन्थान्तरोक्तारिष्टभङ्गयोगाः—

❀ सर्वानिमानतिबलः स्फुरदंशुजालो लग्नस्थितः प्रशमयेत् सुरराजमन्त्री ।
एको बहूनि दुरितानि सुदुस्तराणि भक्त्या प्रयुक्त इव शूलधरप्रणामः ॥१॥

लग्नाधिपोतिबलवानशुभैरदृष्टः केन्द्रस्थितैः शुभखगैरवलोक्यमानः ।
त्युं विधूय विदधाति सुदीर्घमायुः सार्धं गुणैर्बहुभिरूर्जितया च लक्ष्म्या ॥२॥

लग्नादष्टमवर्त्यपि गुरुबुधशुक्रदृकाणगश्चन्द्रः ।
मृत्युं प्राप्तमपि नरं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ॥३॥

चन्द्रः सम्पूर्णतनुः सौम्यर्क्षगतः शुभेक्षितश्चापि ।
प्रकरोत्यरिष्टभङ्गं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः ॥४॥

बुधभार्गवजीवानामेकतमः केन्द्रमागतो बलवान् ।
यद्यक्रूरसहायः सद्योऽरिष्टस्य भङ्गाय ॥५॥

रिपुभवनगतोऽपि शशी गुरुसितचन्द्रात्मजदृकाणस्थः ।
अगद इव भोगिदष्टं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ॥६॥

सौम्यद्वयान्तरगतः सम्पूर्णः स्निग्धमण्डलः शशभृत् ।
निःशेषारिष्टहन्ता भुजङ्गलोकस्य गरुड इव ॥७॥

शशभृति पूर्णशरीरे शुक्ले पक्षे निशाभवे काले ।
रिपुनिधनस्थेऽरिष्टं प्रभवति नैवात्र जातस्य ॥८॥

प्रस्फुरितकिरणजाले स्निग्धामलमण्डले बलोपेते ।
सुरमन्त्रिणि केन्द्रगते सर्वारिष्टं शमं याति ॥९॥

सौम्यभवनोपयाताः सौम्यांशकसौम्यदृकाणस्थाः ।
गुरुचन्द्रकाव्यशशिजाः सर्वेऽरिष्टस्य हन्तारः ॥१०॥

सं०—योगे 'अनुक्तमरणकालयोगे' बलवति चन्द्रे स्वं स्थानं गतवति, अथवा बलिनो ग्रहस्य स्थानं गतवति, अथवा तनुगृहं गतवति पापैश्च दृष्टे सति 'जातस्य' वर्षस्यान्तः (वर्षमध्ये) मुनिगदितं मरणं किल निश्चयेन भवति ॥

भा०—जिन योगों में मरण का काल नहीं कहा गया है उन योगों में वर्ष के भीतर जब चन्द्रमा बलवान होकर अपने स्थान में, वा किसी बली ग्रह के स्थान में, या लग्न राशि में जाय और पापग्रहों से दृष्ट हो उस समय उस जातक का मरण मुनियों ने कहा है ॥ १२ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातकेऽरिष्टाध्यायः ॥ ६ ॥

—०❀०—

चन्द्राध्यासितराशेरधिपः केन्द्रे शुभग्रहो वापि ।
शमयत्यरिष्टयोगं पापानि यथा हरिस्मरणम् ॥११॥

पापा यदि शुभवर्गे सौम्यैर्दृष्टा शुभांशवर्गस्थैः ।
निघ्नन्ति तदाऽरिष्टं पतिं विरक्ता यथा युवतिः ॥१२॥

राहुस्त्रिषष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सम्यक् ।
नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तूलसङ्घातम् ॥१३॥

शीर्षोदयेषु राशीषु सर्वे गगनाधिवासिनः सूतौ ।
प्रकृतिस्थश्चारिष्टं विलीयते घृतमिवाग्निस्थम् ॥१४॥

तत्काले यदि विजयी शुभग्रहः शुभनिरीक्षितोऽवश्यम् ।
नाशयति सर्वरिष्टं मारुत इव पादपान् प्रबलः ॥१५॥

सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टश्चन्द्रो विनाशयति रिष्टम् ।
आपूर्यमाणमूर्तिर्यथा नृपः स्वं नयेद्द्वेषीति ॥१६॥

अथाऽऽयुर्दायाध्यायः ॥७॥

मय-यवन-मणित्थ आदि के मत से आयुर्दाय—

मयययवनमणित्थशक्तिपूर्वैर्दिवसकरादिषु वत्सराः प्रदिष्टाः ।
नवतिथिविषयाश्विभूतरुद्रदश सहिता दशभिः स्वतुङ्गभेषु ॥

सं०—मयययवनमणित्थशक्तिपूर्वैः (मयः सूर्यलब्धवरो रोमनिवासी-दानवः, यवना म्लेच्छजातीया ज्योतिर्विदः, मणित्थः प्रसिद्धः, शक्तिपूर्वः पराशरः, एतैराचार्यैः) दिवसकरादिषु ग्रहेषु स्वतुङ्गभेषु स्वस्वपरमोच्चांश-गतेषु सत्सु दशभिः सहिताः नवतिथिविषयाश्विभूतरुद्रदश वत्सराः क्रमेण परमायुःप्रमाणसंवत्सराः प्रदिष्टाः कथिताः, यथा-सूर्ये स्वपरमोच्चगते दशसहिता नवार्थादेकोनविंशतिर्वत्सरा तदायुः प्रमाणम् । एवमन्यग्रहेष्वपि ज्ञेयम् ॥१॥

भा०—मय, यवन, मणित्थ, पराशर आदि दैवज्ञों का मत है कि–यदि सूर्यादि ग्रह अपने अपने उच्च में हों तो क्रम से १९,२५,१५,१२,१५,२१,२० इतने वर्ष रव्यादि ग्रहों की आयु होती है। जैसे रवि अपने परम उच्च (मेष के १० अंश पर) में हो तो रविकृत आयु १६ वर्ष, एवं सब ग्रहों के क्रम से समझना चाहिये ॥ १ ॥

नीचेऽतोऽर्द्धं ह्रसति हि ततश्चान्तरस्थेऽनुपाता
होरा त्वंशप्रतिममपरे राशितुल्यं वदन्ति ।
हित्वा वक्रं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वत्रिभागः
सूर्योच्छिन्नद्युतिषु च दलं प्रोज्झ्य शुक्रार्कपुत्रौ ॥२॥

नीचे (स्वस्वपरमनीचांशे) स्थिते ग्रहे अतः (स्वस्वोच्चकथितायुः-पिण्डात्) अर्धं ह्रसति [illegible]ति । ततोऽन्तरस्थे ([illegible]नीचयोरन्तरस्थिते)

स्पष्टार्थचक्र—

ग्रह	र.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	
उच्चमें	१९	२५	१५	१२	१५	२१	२०	व.
नीच में	९ / ६	१२ / ६	७ / ६	६ / ०	७ / ६	१० / ६	१० / ०	व. / मा.

अनुपातः कार्यः, अर्थात् यदि राशिषट्केनोच्चग्रहान्तरेणायुषोऽर्धं ह्रसति तदेष्टोच्चग्रहान्तरेण किमिति त्रैराशिकेन लब्धं ह्रासमानमुक्तो-क्तायुःपिण्डाद् विशोध्यावशेषं तद्ग्रहप्रदत्तमायुर्ज्ञेयमिति । होरा (लग्नं) तु अंशप्रतिमं (स्वभुक्तनवांशसंख्य-वत्सरतुल्यं) आयुर्ददाति । अपरे आचार्यास्तु राशितुल्यं (स्वभुक्तराशिसंख्य-वत्सरसमं) आयुर्लग्नं ददातीति वदन्ति । अंशपतिर्बली चेदंशतुल्यं, लग्नपतिर्बली चेद्राशितुल्यं लग्नायुर्ग्राह्यमित्याचार्यस्याऽभिप्रेतम् । यथा स्वयमग्रे वक्ष्यति— "वीर्यान्विता राशिसमं च होरा" इति । अथायुषो ह्रासमाह—वक्रं वक्रगतिं ग्रहं हित्वा रिपुगृहगतैः स्वत्रिभागः स्वदत्तायुर्दायत्र्यंशो हीयते । शत्रुगृहगतस्य मार्गगतिग्रहस्यायुषस्त्र्यंशो नश्यतीत्यर्थः । तथा शुक्रार्कपुत्रौ प्रोज्झ्य त्यक्त्वा-ऽन्येषु सूर्योच्छिन्नद्युतिषु (सूर्येण उच्छिन्ना खण्डिता विनष्टा द्युतिर्येषां तेषु सूर्यसांनिध्यवशेनास्तमितेषु) ग्रहेषु च दलं (आयुषोऽर्धं) ह्रसति । शनि-शुक्रयोस्त्वस्तमितयोरपि न ह्रसतीत्यर्थः ॥ २ ॥

भा०—ग्रह अपने परम नीच में हो तो उपरोक्त आयु का आधा नाश हो जाता है, अर्थात् आधा रहता है । इसलिये उच्च और नीच के मध्य में अनुपात से आयुर्दाय का मान समझना ।, लग्न की आयु-अंश (लग्नभुक्त-नवांश) तुल्य वर्षादि होती है । दूसरे आचार्य लग्न के भुक्तराशितुल्य वर्षादि लग्नायु कहते हैं । वक्रगति ग्रह को छोड़कर शत्रुगृह में रहनेवाले ग्रहों का गणितागत आयु का तृतीयांश नष्ट हो जाता है । एवं शुक्र और शनि को छोड़कर अन्य ग्रह यदि सूर्यसान्निध्य वश अस्त हो तो उसका आधा आयुर्दाय नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

वि०—उच्च और नीच के मध्य में अनुपात इस प्रकार है—"यदि उच्च और नीच के अन्तर (६ राशि) में आधा नष्ट होता है तो ग्रह और उच्च

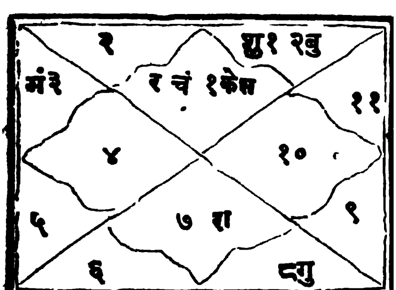
के इष्ट अन्तर में क्या ? इस प्रकार उच्च और ग्रह के अन्तर राश्यादि को पठित वर्ष के आधे मान से गुनाकर ६ के भाग देने से लब्धि तुल्य वर्षादि या मासादि मान को पठित उच्चस्थ प्रमाण वर्ष में घटाने से उस ग्रह का आयुर्दाय होता है।

लग्नायु के विषय में–आचार्य का अभिप्राय है कि–यदि लग्न की राशि बली हो तो राशितुल्य वर्षादि, यदि लग्न के नवांश बली हो तो लग्न भुक्त-नवांश तुल्य वर्षादि लग्नायुर्दाय समझना।

वक्रीग्रह–शत्रुगृह में भी हो तो उसका तृतीयांश नष्ट नहीं होता है। क्योंकि वक्रीग्रह के आयुर्दाय की वृद्धि ही होती है। इसलिये यहाँ 'वक्र' शब्द से वक्रगति समझना चाहिये। कोई 'वक्र' शब्द से मङ्गल का ग्रहण किया वह असङ्गत होने के कारण बहु सम्मत नहीं है ॥२॥

उदाहरण—सं० १९९९ वैशाखशुक्ल प्रतिपद् गुरुवार सूर्योदय से इष्ट घटीपल १।५९ समय में किसी का जन्म है। तो उस समय के स्पष्टग्रह और जन्म कुण्डली—

जन्मलग्नचक्र—



स्पष्ट रवि ०।६।४९।४०
चन्द्र ०।१२।१५।५७
मङ्गल २।१३।२०।२७
बुध ११।२४।१७।२५
गुरु ७।१४।१०।२७
शुक्र ११।१६।२०।७
शनि ०।२८।५।५५
ल० ०।२१।२१।९

स्पष्टसूर्य ०।६।४९।४० को उसके उच्च ०।१० के साथ अन्तर ०।३। १०।२० की कला १९० ।२० को रवि परमायुर्दाय के आधे ९ वर्ष ६ मास अर्थात् ११४ मास से गुना करके २१६९८।० इसमें चक्रार्धकला १०८०० का भाग देकर लब्ध वर्षादि ०।२।०।१६।२० को उच्च गतवर्ष १९ में

घटाने से १८।३।२६।४३।४० वर्षादि सूर्यायुर्दाय हुआ । इसी प्रकार चन्द्रा-युर्दाय २३।६।२१।४० भौमायु ६।४।१०।०।० ॥ बुधायु ६।३।२१।२६।० जीवायु ६।७।१२।३०।० ॥ शुक्रायु २०।४।१६।२१।० ॥ शनैश्चरायु १०।५।१२।०।० ॥ लग्नायु साधन—राश्यादि लग्न ०।२१।२१।१६ यहाँ लग्न की राशि मेष और तुला का नवमांश है । ये दोनों—"स्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुत" नहीं होने के कारण निर्बल हैं । इसलिये लग्न भुक्त नवांशतुल्य वर्षादि लग्नायु होगी । लग्न के भुक्तांश २१।२१।१६ इसकी कला १२८१।१६ इसमें २०० का भाग देने से लब्ध ६ वर्ष, शेष ८१।१६ को १२ से गुना कर २०० के भाग देने से लब्धि मास ४ शेष को ३० से गुनाकर २०० के भाग देकर लब्ध दिन २६ एवं घटीपल २२।१२ इस प्रकार लग्नायु ६।४।२६।२२।१२ लग्नायु हुई ।

ऊपर साधित आयुर्दाय जानने का दूसरा सरल प्रकार सारावली में इस प्रकार है यथा—"स्वोच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यः षड्भाश्यूनो भमण्डलात् ।
स्वपिण्डगुणितो भक्तो भादिमानेन वत्सराः ॥"

अर्थ—ग्रह को अपने उच्च में घटाकर ६ राशि से कम हो जाय तो उसको १२ राशि में घटाकर ग्रहण करे, और ६ राशि या उससे अधिक हो तो उसी को ग्रहण करके अपने पिण्ड (उच्चगत पठित वर्ष) संख्या से गुना करके राश्यादि में अपने अपने मान से भाग देने (अर्थात् विकला और कला स्थान में ६० के, अंश स्थान में ३० के और राशि स्थान में १२ के भाग देने) से वर्षादि आयुमान होता है ।

जैसे—सूर्य को अपने उच्च में घटाने से ०।३।१०।२० यह ६ राशि से कम है इसलिये १२ राशि में घटाकर ११।२६।४६।४० इसको सूर्य के पिण्ड १६ से गुना करने से २०६।४६४।६३१।७६० विकला में ६० के भाग देकर लब्धि को कला में जोड़कर फिर कला में ६० के भाग देकर लब्धि को अंश में, पुनः अंश में ३० के भाग देकर लब्धि को राशि में, फिर राशि में १२ के भाग देने से लब्धि वर्ष और शेष मासादि एवं पूर्व

तुल्य ही वर्षादि १८।६।२६।४३।४० सूर्यायुर्दाय हुआ। 'इसी प्रकार सब ग्रहों के आयुर्दाय बनते हैं ॥

अब जो ग्रह शत्रु गृह में हो उसका तृतीयांश और अस्त का आधा आयुनाश कहा गया है। तथा आगे के श्लोकानुसार चक्रार्ध हानि भी कही गई है। इसलिये १२ द्वादश भाव में बुध और शुक्र दो पड़े हैं उनमें शुक्र उच्च में होने के कारण बली है। अतः केवल शुक्र की ही चक्रार्ध हानि करने से पूर्वसाधित आयु का आधा १०।२।८।१०।३०।० वर्षादि इसमें शत्रुगृह में रहने के कारण से फिर इसका तृतीयांश ३।४।२२।४३।३० वर्षादि घटाने से ६।६।१५।२७।० यह शुक्र का स्पष्टायुर्दाय हुआ। एवं बुध शत्रु के गृह में है इसलिये बुधायु के तृतीयांश २।१।७।१२ बुधायु में घटाने से बुध का स्पष्टायुर्दाय ४।२।१४।२४।० हुआ। एवं गुरु अष्टमभाव में है इसलिये जीवायु के दशमांश ०।११।१६।१५ को जीवायु में घटाने से ८।७।२६।१५।० गुरु का स्पष्टायुर्दाय हुआ। तथा चन्द्रमा सूर्यरश्मि से अस्त है इसलिये उसका पूर्व साधित आयु का आधा ११।६।१०।५० स्पष्टायुर्दाय हुआ एवं सबका योग = ७६।५।२५।१।५२ वर्षादि आयु हुई।

सूर्यायु	१८।६।२६।४३।४०
चन्द्रायु	११।६।१०।५०।०
भौमायु	६।४।१०।०
बुधायु	४।२।१४।२४।०
जीवायु	८।७।२६।१५।०
शुक्रायु	६।६।१५।२७।०
शनैश्चरायु	१०।५।१२।०।०
लग्नायु	६।४।२६।२२।१२
योग =	७६।५।२५। १ ।५२

बहुसम्मत राशितुल्य लग्नायुर्दाय साधन प्रकार—

"लग्नराशिसमाश्चाब्दा, द्विघ्नांशाद्याः शरोद्धृताः।
मासाः,शेषांशकाद्यास्तु रसघ्ना दिवसादिकाः॥"

लग्न की जितनी भुक्तराशि सङ्ख्या हो उतने ही वर्ष, और अंशादि को २ से गुनाकर ५ के भाग देने से लब्धि तुल्य मास. फिर शेष अंशादि को ६ से गुना करने से दिनादि होते हैं।

यथा लग्न राश्यादि १०।२६।२८।५, यहाँ राशि तुल्य वर्ष १०, अंशादि २६।२८।५ को २ से गुनाकर ५२।५६।१० इसमें ५ के भाग देने से लब्धि

तुल्य १० मास शेष अंशादि को ६ से गुना करने से दिनादि १७।३७।० एवं लब्धायु वर्षादि १०।१०।१७।३७।० ॥

इसकी युक्ति यह है कि–यदि ३० अंश में १२ मास तो शेष अंशादिकोंमें क्या ? $\frac{१२ \times शेअं}{३०} = \frac{२शेअं}{५}$=लब्धि मास सङ्ख्या, शेष$\left(\frac{शेअं}{५}\right)$

को३०से गुना करने से $\frac{शेअं \times ३०}{५}$=शेअं × ६=दिनादि होते हैं ॥२॥

चक्रोत्तरार्धस्थित ग्रहों की आयु में हानि—

सर्वार्द्धत्रिचरणपञ्चषष्ठभागाः क्षीयन्ते व्ययभवनादसत्सु वामम्।
सत्स्वर्द्धं ह्रसति तथैकराशिगानामेकोंऽशं हरति बली तथाहसत्यः

सं० - व्ययभवनात् (द्वादशभावादारभ्य) वामं (व्युत्क्रमेण सप्तमभावं यावत् स्थितेषु) असत्सु पापग्रहेषु यथाक्रमं सर्वार्धत्रिचरणपञ्चषष्ठभागा; क्षीयन्ते नश्यन्ति। यथा द्वादशस्थे सर्वं, एकादशस्थेऽर्धमित्यादि बोध्यम्। तेष्वेव व्ययादिसप्तमान्तेषु स्थानेषु सत्सु शुभग्रहेषु अर्धं (सर्वार्धत्रीत्यादिहानिभागानामर्धं) ह्रसति नश्यति। यथा द्वादशेऽर्धं, एकादशे चतुर्थांशः, दशमे षष्ठांशः, नवमेऽष्टमांशः, अष्टमे दशमांशः, सप्तमे द्वादशांश इति। तथा—एकराशिगानां बहूनां ग्रहाणां मध्ये यो ग्रहोऽधिकबली स एक एव अंशं कथितभागं हरति। न सर्वे। तथा सत्यः सत्याचार्य आह कथयति ॥३॥

भा०—द्वादशभाव से उत्क्रम से सप्तमभाव पर्यन्त पापग्रह हो तो क्रम से गणितागत आयु का सब, आधा, तृतीयाश, चतुर्थांश, पञ्चमांश और षष्ठांश नाश हो जाता है। और उन्हीं स्थानो में शुभग्रह हो तो पापग्रह की अपेक्षा आधा नाश होता है। जैसे द्वादश में पापग्रह हो तो उसका सब, और शुभग्रह का आधा, तथा एकादश में पापग्रह का आधा और शुभग्रह का चतुर्थांश, दशम में पाप का तृतीयांश और शुभग्रह का षष्ठांश, नवम में पाप का चतुर्थांश और शुभग्रह का अष्टमांश, अष्टम में पाप का पञ्चमांश और शुभग्रह का दशमांश तथा सप्तमभाव में पाप का षष्ठांश और शुभग्रह

का द्वादशांश आयुर्दाय का नाश होता है। यदि एक ही स्थान में २, या अधिक ग्रह हो तो उनमें सब से जो बली हो केवल उसी एक ग्रह का अंश नष्ट होता है; सब ग्रहों का नहीं, ऐसा सत्याचार्य ने कहा है ॥३॥

उदाहरण—पूर्व श्लोक में देखिये ॥३॥

लग्न में पापग्रह हो तो आयु में हानि—

सार्द्धोदितोदितनवांशहतात् समस्ता-
द्भागोऽष्टयुक्तशतसंख्य उपैति नाशम् ।
क्रूरे विलग्नसहिते विधिना त्वनेन
सौम्येक्षिते दलमतः प्रलयं प्रयाति ॥४॥

सं०—क्रूरे (कुजार्कशनीनामन्यतमे पापग्रहे) विलग्नसहिते समस्तात् 'गणितागतायुःपिण्डात्' सार्द्धोदितोदितनवांशहतात् अर्धोदितेन वर्तमानेन सहिता ये उदिता गता नवांशास्ते सार्धोदितोदितनवांशास्तैर्हतात् (गुणितात्) अष्टयुक्तशतसंख्यो भागो नाशमुपैति। तस्मिन् लग्नगते क्रूरे सौम्येक्षिते शुभदृष्टे सति अनेनोक्तविधिना यत् हानिमानं तद्दलं तदर्धं विलयं नाशं प्रयाति ॥ ४ ॥

भा०—यदि लग्न में पापग्रह हों तो लग्न के अर्धोदित (वर्तमान) नवांश सहित जितने गतनवांश हों उससे गणितागत समस्त आयुःप्रमाण (वर्षादि) को गुना करके उसमें १०८ का भाग देकर जो वर्षादि लब्ध हो उतना नाश हो जाता है, अर्थात् उतने वर्षादि गणितागत आयु में घटा देना चाहिये। यदि लग्नगत पाप पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो उक्तविधि से प्राप्त फल (वर्षादि) का आधामात्र नाश होता है ॥४॥

वि०—यहाँ अर्धोदित पद का अभिप्राय यह है कि जो नवांश पूर्ण उदित नहीं हो गया हो अर्थात् वर्तमान नवांशके जितनी कला उदित हुई हो वह अर्धोदित नवांश कहलाता है उसको लग्न के गतनवांश में जोड़ने से अर्धोदित नवांश सहित उदित नवांश होता है। यहाँ कोई लग्नराश्यादि की

कला बनाकर उसमें २०० के भाग देकर लब्धि और शेष को नवांशसङ्ख्या मानते हैं। और कोई लग्न की राशि को छोड़कर केवल अंशादि की कला बनाकर उसमें २०० के भाग देकर जो शेष सहित लब्धि हो उसीको उक्त नवांश सङ्ख्या मानते हैं। इस प्रकार नवांश सङ्ख्या बनाकर आयु को गुना करके १०८ का भाग देने से जितने वर्षादि होते हैं, उतने ही लग्न की कला से आयु को गुना करके उसमें २१६०० (भचक्रकला) का भाग देने से होते है। इसलिये सारावली में—

"लग्नांशलिप्तिका हत्वा प्रत्येकं विहगायुषा।
भाज्या मण्डललिप्ताभि (२१६००) र्लब्धं वर्षादि शोधयेत्॥
स्वायुषो लग्नगे क्रूरे, सौम्यदृष्टे च तद्दलम्।" ऐसाही पाठ है।

लग्न में पापग्रह हो तो लग्न के भुक्तांश के अनुपात से आयुर्दाय का नाश होता है। अर्थात् लग्न यदि प्रथम नवमांशारम्भ में ही हो तो-आयु का ह्रास नहीं होता है। तथा—समस्त राशियों के नवांशभुक्त कर चुका हो तो समस्त आयुका नाश हो जाता है। समस्त राशियों की नवांशसंख्या १०८ है इसलिये त्रैराशिक से अनुपात हुआ कि—यदि १०८ भुक्तनवांश संख्या में समस्त आयु का नाश होता है तो लग्न भुक्त इष्टनवांश संख्या में क्या ?

इस प्रकार लब्ध आयुका ह्रास मान $= \frac{\text{समस्त आ.} \times \text{लभुनवांश}}{१०८}$

$= \frac{\text{समस्तआ}}{\frac{२१६००}{२००}} \times \frac{\text{लग्नभुनवांशकला}}{२००} = \frac{\text{समस्त आ} \times \text{लग्नभु.नवांशकला}}{२१६००}$

इस प्रकार वराहमिहिर और सारावली दोनों के प्रकार उपपन्न होते हैं। यदि लग्न की राशि को छोड़कर भुक्तनवांश सङ्ख्या ली जाय तो इस प्रकार अनुपात ही नहीं हो सकता है। अतः राश्यादि लग्न की समस्त भुक्तनवांश अथवा कला ग्रहण करके उक्त क्रिया करनी चाहिये॥ ४॥

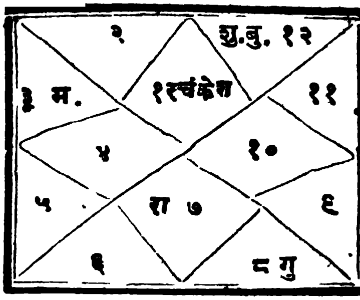
उदाहरण—उपपत्ति से सिद्ध हो चुका है कि लग्ननवांश सङ्ख्या से आयु को गुनाकर १०८ के भाग देने से, तथा लग्न की नवांशकला से गुना-

कर २१६०० के भाग देने से लब्धि तुल्य ही है। इसलिये सारावली प्रकार में भी 'अंश' पद से सार्वोदितोदित नवांश ही समझना चाहिये। क्योंकि अंशपद से नवांश ही समझा जाता है। इसलिये सुभीता के लिये सारावली के अनुसार ही उदाहरण दिखलाता हूँ। यहाँ यह भी ध्यान में रख लेना चाहिये कि सब ग्रहों की आयु के योग को एकही बार लग्नकला से गुना करके २१६०० के भाग देकर जो फल होगा, वही प्रत्येक ग्रह की आयु को पृथक् पृथक् गुना करके २१६०० भाग देकर पृथक् लब्धवर्षादि के योग करने से होगा। इसलिये प्रत्येक ग्रह की आयु पर से पृथक् पृथक् फल साधन करके अपनी अपनी आयु में घटाकर स्पष्ट आयुर्दाय बनाना चाहिये। क्योंकि जिस ग्रह की जितनी आयु होती उतनी ही उसकी दशा 'दशाक्रम' में लगानी पड़ती है। एवं यहाँ क्षीण चन्द्रमा को पापग्रह नहीं समझना। क्योंकि बादरायणआदि पाप के स्थान में केवल रवि, मङ्गल, शनि ये तीन ही ग्रहण किये हैं। यथा—"सूर्याङ्गारशनीनामेकतमे लग्नगे भवति हानिः" इति।

पूर्वकल्पित उदाहरण में—लग्न में पापग्रह है इसलिये इस श्लोक के अनुसार लग्न ०।२१।२१।१६ के गत और वर्तमान नवांशसङ्ख्या ७ से पूर्वसाधित समस्त आयुर्दाय ७६।५।२५।१।५२ को गुना करने से ५३५।४।२५।१३।४ इसमें १०८ के भाग देने से लब्धि वर्षादि ४।११।१४।४४।३ इसको सम्पूर्ण आयु में घटाने से शेष ७१।६।१०।१७।४६ यह जातक का मय आदि मत से वर्षादि स्पष्ट आयुर्दाय हुआ॥ अथवा इस प्रकार प्रत्येक ग्रह के आयुर्दाय को पृथक् पृथक् गुनाकर १०८ के भाग देने से जो लब्ध हो वह अपने अपने साधित आयु में घटाने से पृथक् पृथक् स्पष्टायु होती है। सब के योग करने से फिर तुल्य ही हो जाता है। यहाँ लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि नहीं है इसलिये १०८ वाँ भाग पूरा घटा दिया गया है। जहाँ लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि हो वहाँ लब्धि के आधे को ही घटाकर स्पष्टायु समझना चाहिये। कार्यक्षेत्र में वर्तमान नवांश थोड़ा भुक्त हुआ हो तब भी उसकी १ सङ्ख्या ग्रहण की जाती है। इसलिये यहाँ लग्ननवांश सङ्ख्या ७ ली गई है॥

सगति-रव्यादिस्पष्टग्रह		
र.	०। ६।४९।४०	ग. ५८।३१
चं.	०।१२।१५ ५७	ग. ७९०।४७
मं.	२।१३।२०।२७	ग. ३२।४०
बु.	११।२४।१७ २५	ग. ३५।३५
गु.	७।१४।१०।२७	ग. ४ ।१८
शु.	११।१६।२ । ७	ग. ७३ १
श.	०।२८। ५ ५५	ग. ७ ।५६
क.	०।२१।२१।१९	॥ * *

जन्मलग्नकुण्डली



मयादि कथित पिण्डायुसाधन का उदाहरण जो ६१ पृष्ठ में दिया गया है, वहाँ चन्द्रादि ग्रहों के स्वल्पान्तर से घटीपल में कुछ न्यूनाधिक ग्रहण किया गया है। तथा 'सार्धोदितोदितनवांशहतात्' इस प्रकार से समस्त आयुर्दाय को गुनाकर हानि दिखलाई गई है। यहाँ "स्वोच्चशुद्धो ग्रह" इत्यादि रीति से ग्रहों के सूक्ष्म आयुर्दायमान को पृथक् पृथक् सार्धोदितोदित-नवांशहतात्" इत्यादि क्रिया द्वारा वास्तव नवांशसंख्या से स्पष्ट बनाकर दशाक्रम लिखने की रीति दिखलाई जाती है। २ द्वितीय श्लोक के उदाहरण में जिस प्रकार सूर्य का आयुर्दाय साधन किया गया है उसी प्रकार चन्द्रादि ग्रहों के सूक्ष्म वर्षादि आयुर्दाय चक्र न० (१) में देखिये।

(१) चक्र–

सूआ.	१८।६।२६।४३।४०
चंआ.	२३।६।२१।३८।४५
मंआ.	६ ।४। ६ ।५३।१५
बुआ.	६ ।३।२१।३६। ०
गुआ.	६ ।७।१२।२३।१५
शुआ.	२०।४।१६। २ ।२७
शआ.	१०।५।११।५८।३०

यहाँ चन्द्रमा के अस्त होने के कारण अर्धहानि, शुक्र के चक्रार्धहानि के बाद शत्रुगृह में होने के कारण त्र्यंश हानि भी प्राप्त है। तथा बुध शत्रुगृह में है अतः उसका त्र्यंशहानि, एवं गुरु अष्टम भाव में है अतः उसका दशांश हानि करके तथा शेष ग्रहों के यथागत आयुर्दाय द्वितीय चक्र में देखिये।

अब यहाँ लग्न में पापग्रह (शनि) है। अतः राश्यादि लग्न ०।२१।२१।१९ की कला १२८१०'। १९" में २०० के भाग देने से लब्धि ६ उदित नवांश संख्या हुई, वर्तमान सप्तम नवांश अर्धोदित है। इसलिये शेष कला ८१'।१९" को ६० से गुनाकर २०० के भाग देकर लब्धि सप्तम नवांश का अवयव २४'। २४" अतः उदित नवांश सहित अर्धोदित नवांश संख्या६।२४।२४हुई। अतः अनुपात हुआ कि १०८ नवांश में सम्पूर्ण आयु की हानि होती है तो सार्धोदितोदित नवांश में क्या?

(२) चक्र

अस्त-शत्रुग्रहस्थ और चक्रार्ध हानि शुद्धआयुर्दाय—

सूर्यायु.	१८।९।२९।४३।४०
चन्द्रायु.	११।९।१०।४९।२१
भौमायु.	९।४। ९।५३।१५
बुधायु.	४।२।२४।२६।०
जीवायु.	८।७।२८।८ ।९६
शुक्रायु.	६।९।१५।२०।१९
सौरायु.	१०।५।११।५८।१०
लग्नायु.	६।४।२६।२२ ११
योग =	७६।५।२६।४२।२४
हानिमान =	४।६।१३।३०।१७
स्पष्टायु =	७१।११।१३।१२।७

लब्धि = $\frac{(\text{आयु} \times \text{सार्धोदित नवांश सं०})}{१०८}$ तुल्य हानि को आयुर्दाय में घटाने से स्पष्ट आयुर्दाय होगा। जैसे चक्रार्ध–हानि और अस्त शत्रुग्रह हानि सिद्ध वर्षादि आयु ७६।५।२६।४२।२४ को दिनादि बनाकर २७५३६।४२।२४ इसको सार्धोदितोदित (सावयव) नवांश संख्या (६।२४।२४) से गोमूत्रिका क्रम से गुना करने से गुणनफल १७६४१८।३०।२ में १०८ के भाग देकर लब्धि दिनादि १६३३।३०।१७ वर्षादि बनाने से ४।६।१३।३०।१७ इसको पूर्व शुद्ध वर्षादि आयु ७६।५।२६।४२।२४ में घटाने से शेष ७१।११। १३।१२।७ यह जातक का स्पष्ट आयुर्दाय यवनादि मत से हुआ। अथवा सार्धोदित नवांश संख्या से पृथक् पृथक् ग्रह और लग्न के आयुर्दाय मान को गुनाकर १०८ के भाग देकर लब्धि को पृथक् पृथक् आयु में घटाने से स्पष्टायु होती है। और सब के योगतुल्य स्पष्टायु होती है। जैसे

सूर्य के 'आयुर्दाय वर्षादि १८।६।२६।४३।४० इसको दिनादि बनाने से ६७७६।४३।४० इसको सार्वोदितोदित नवांश संख्या ६।२४।२४ से गुना करने से ४३४१५।२७।२१ इसमें १०८ के भाग देने से दिनादि ४०२।१०।४८ वर्षादि बनाने से १।१।१२।१०।४८ इसको सूर्य के आयुर्दाय १८।६।२६।४३।४० में घटाने से १७।८।१७ ३२।५२ यह सूर्य का स्पष्टायुर्दाय हुआ। जिस ग्रह के जितने आयुर्दाय होते हैं, उसकी उतनी ही दशा भी समझी जाती है। जिसका क्रम आगे कहा है।

पूर्व नवांश संख्या पूरा ७ मानकर क्रिया दिखलाई गई है। जिससे स्पष्टायु में लगभग ५ मास का अन्तर होता है इसलिए जहाँ तक हो सूक्ष्म मान का ही ग्रहण करना चाहिये ॥ ४ ॥

वि०—भाग क्रिया में अन्तिम शेष हर के आधे से अधिक हो तो अवयव में लब्धि १ अधिक ग्रहण करना चाहिये। आधा से अल्प हो तो त्यागकर देना चाहिये ॥ ४ ॥

मनुष्यादि जीवों का मध्यममान से परमायुः प्रमाण—

समाः षष्टिर्द्विघ्नी मनुजकरिणां पञ्च च निशा
हयानां द्वात्रिंशत् खर-करभयोः पञ्चकृतिः।
विरूपा साऽप्याऽऽयुर्वृष-महिषयोर्द्वादश शुनां
स्मृतं छागादीनां दशकसहिताः षट् च परमम् ॥५॥

सं०—द्विघ्नी षष्टिः समाः (विंशत्यधिकशतवर्षाणि) पञ्च निशाः (अहोरात्राणि) च मनुजकरिणां (भारतीयानां मनुजानां हस्तिनां च मध्यममानेन) परमं आयुः स्मृतम्। हयानां (घोटकानां) द्वात्रिंशत् समाः, खर-करभयोः (गर्दभोष्ट्रयोः) पञ्चकृतिः (पञ्चविंशतिः) समाः, सा (पञ्चकृतिः) विरूपा एकहीना (अर्थात् चतुर्विंशतिः समाः) वृषमहिषयोः परममायुः, शुनां = कुक्कुराणां द्वादश समाः, छागादीनां (छागमृग-मेषादीनां) दशकसहिताः षट् (षोडश समाः) परममायुः स्मृतं कथितम् ॥ ५ ॥

भा०—१२० वर्ष ५ अहोरात्र भारतीय मनुष्य और हाथियों की परमायु कही गई है। घोड़ों की ३२ वर्ष, गधे और ऊटों की २५ वर्ष, गाय और भैंस की २४ वर्ष, कुक्कुरों की १२ वर्ष, बकरा, भेंड़े, हरिण आदि की १६ वर्ष परम आयु कही है। यह औसतमान है ॥ ५ ॥

वि०—यहाँ सब जानवरों की आयु कहने का प्रयोजन है कि-राजा-महाराजों के यहाँ पालतू जानवर रहते हैं, उनके जन्म समय से शुभाऽशुभ फल और आयु जानने के लिये जन्मपत्र बनाया जाय तो उनकी आयु मनुष्य के समान ही उक्तरीति से साधन करे, फिर अनुपात (त्रैराशिक) करे कि—यदि मनुष्य की परमायु (१२०) में इतनी आयु तो इष्ट जानवर की परमायु में कितनी? इस प्रकार गणितागत आयु को अपनी परमायु से गुनाकर १२० के भाग देने से लब्ध वर्षादि उस जानवर की स्पष्ट आयु होती है। कहा भी है—

"पश्वायुर्नृवदानीय निघ्नं स्वस्वपरायुषा।
नृपरमायुषा भक्ता तेषामायुः स्फुटं भवेत् ॥"

उदाहरण—मान लो कि उक्त उदाहरण के इष्टकाल ही में किसी घोड़े का जन्म हुआ, तो उक्त विधि से साधित आयुवर्षादि ७१।६।१०।१७।४९ को अश्व परमायु ३२ से गुना करके गुणनफल में १२० के भाग देकर लब्ध वर्षादि १९।०।२६।४४।४३ यह उसकी स्पष्ट आयु हुई।

यहाँ मनुष्य आदि के परमायुःप्रमाण जो कहे गये हैं, इससे यह नहीं समझना चाहिये कि इससे अधिक मनुष्यादि जन्तु जी नहीं सकते। यहाँ तो ग्रहों की स्थितिवश गणितागत आयु १२० वर्ष के आसन्न आते हैं और भारत में प्रायः अधिकतर उससे अधिक नहीं जीते इसलिये आचार्यों ने मध्यममान से परमायु का प्रमाण गणितागत मध्यममान से कहा है। क्योंकि विशेषयोग और जातक के पुण्य पापकर्मवश गणितागत आयु से अधिक और न्यून भी हो जाते हैं। जो आचार्य स्वयं आगे—"अमितमिहायुरनुक्रमाद् विना स्यात्" ऐसा कहे हैं ॥ ५ ॥

अथवा तिब्बत में २५० वर्ष तक भी बहुत लोग जीते हैं। अतः शून्य ० से २५० वर्ष के औसतमान १२० वर्ष कहे गये हैं।

परमायु में लग्न और ग्रहों की स्थिति—

अनिमिषपरमांशके विलग्ने शशितनये गवि पञ्चवर्गलिप्ते ।
भवति हि परमायुषः प्रमाणं यदि सकलाः सहिताःस्वतुङ्गभेषु।

सं०—अनिमिषपरमांशके (मीनान्तिमांशे) विलग्ने (लग्नगते सति) शशितनये बुधे पञ्चवर्गलिप्ते पञ्चविंशतिकलाग्रे गवि वृषराशौ स्थिते सति, यदि सकलाः (शेषग्रहाः सर्वे) स्वतुङ्गभेषु स्थितास्तदा परमायुष्प्रमाणं हीति निश्चितं भवति ॥ ६ ॥

भा०—यदि मीन के अन्तिमांश लग्न हो और बुध वृषराशि की २५वीं कला पर हो तथा शेष सब ग्रह अपने अपने परमोच्च में हो तो उक्तविधि से गणित द्वारा परम आयुर्दाय का प्रमाण होता है ॥ ६ ॥

उदाहरण—राश्यादि लग्न = ११।२६।५६।५६। रवि = ०।१०।० ॥ चं= १।३।० ॥ मं=६।२८।०।० ॥ बु=१।०।२५।० ॥ गु=३।५।० ॥ शु=११। २७।० ॥ श=६।२० यहाँ लग्न नवम नवांश में है इसलिये लग्नायु=६ वर्ष।



बुध १।०।२५ को अपने उच्च ५।१५ में घटाकर राश्यादि ४। १४।३५ की कला ८०७५ पर से अनुपात किया कि उच्च नीचान्तर कला १०८०० में ६ वर्षकी हानि होती है तो उक्त बुध और उसके उच्च के अन्तर ८०७५ में क्या? इस प्रकार उच्च बुधान्तर ८०७५ को ६ से गुनाकर, १०८०० का भाग देने से लब्धवर्षादि ४।५।२५ को बुध की पठित उच्चायु १२ में घटाने से

बुध की स्पष्टायुर्वर्षादि ७।८।५ ॥ मङ्गल उच्च में है परञ्च एकादश भाव में पड़ने के कारण उच्चस्थ १५ वर्ष का आधा ७।६ सातवर्ष छ मास मङ्गल की स्पष्टायु। एवं शनि सप्तम भाव में पड़ा है इसलिये उसके उच्चगत आयु में पञ्चमांश घटाने से १६ वर्ष शनि की स्पष्टायु। शेष ग्रहों के उच्चगत होने के कारण पठित उच्चायु क्रम से रवि की १९ चन्द्र की २५ गुरु की १५। शुक्र की २१ वर्ष, सब का योग १२० वर्ष ५ दिन होता है। इस प्रकार रवि को अपने उच्च में होने पर बुध कदाचित् भी अपने उच्च में नहीं हो सकते हैं। यदि बुध अपने उच्च में हो तो रवि और शुक्र कभी भी अपने उच्चमें नहीं हो सकते हैं। इसलिये लग्न की परमायु प्राप्ति के लिये मीन का अन्तिम अंश लग्न कल्पना की गई। तथा रवि को अपने उच्च (मेष में १० अंश पर) रहने से बुध अपने उच्च के परम समीप वृष के ४ अंश तक जा सकता है। क्योंकि रवि का परम फल ऋण और बुध का परमफल धन हो तो रवि से बुध २४ अंश आगे रहेगा। इस प्रकार यदि रवि परमोच्च में हो तो कदाचित् परमान्तरित होकर बुध वृष के चतुर्थ अंश पर जा सकता है। उस हालत में उक्तविधि से बुध की आयु ७ वर्ष ७ मास १८ दिन अर्थात् पूर्व साधित आयु से १ मास १३ दिन अधिक होती है। इस प्रकार गणितागत आयु १२० वर्ष १ मास १८ दिन तक आती है। परञ्च आर्षोक्त परमायु प्रमाण १२० वर्ष ५ दिन है। वह बुध को वृष के २५ कला ही पर मानने से सिद्ध होता है ॥ ६ ॥

इस प्रकार मय आदि कथित आयु में दोष कहते हैं—

आयुर्दायं विष्णुगुप्तोऽपि चैवं देवस्वामी सिद्धसेनश्च चक्रे दोषस्तेषां जायतेऽष्टावरिष्टं हित्वा नाऽऽयुर्विंशतेः स्यादधस्तात्

सं०—एवं (अनेन पूर्वोक्तमययवनकथितप्रकारेण) विष्णुगुप्तोऽप्यायुर्दायं चक्रे, देवस्वामी, सिद्धसेनश्चापि एवमेवायुर्दायं चक्रे कृतवान्। परन्तु तेषां मयादि-विष्णुगुप्तादीनां मते (अनेन विधिनाऽऽयुः साधने) दोषो

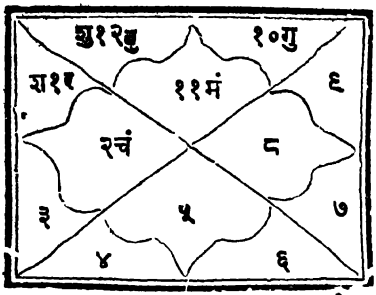
जायते । यतोऽष्टौ वर्षाणि यावत् अरिष्टं (बालारिष्टं) हित्वा (विहायाऽपि) विंशतेः (वर्षविंशतेः) अधस्ताद्-आयुर्न स्यात् । अर्थात् अनेन विधिना साधितमायुर्विंशतिवर्षाल्पं नायाति, विंशतिवर्षाधिकमेवागच्छति । अतो वर्ष-विंशतेरधस्तात् कस्यचिदपि मरणं नापद्येत. किञ्च बहवो म्रियन्तो दृश्यन्ते-ऽतोऽयं तन्मते दोषो जातः ॥ ७ ॥

भा०—इसी (मय-यवनादि कथित) प्रकार से विष्णुगुप्त, देवस्वामी और सिद्धसेन नामक आचार्यों ने भी आयुर्दाय साधन किया है। परञ्च उनके इस मत में प्रत्यक्ष दोष है कि इस प्रकार से साधित आयु २० वर्ष से कम (अल्प) नहीं होती। परञ्च ८ वर्ष पर्यन्त जो जातक का अरिष्ट कहा गया है उसको छोड़कर भी २० वर्ष से पूर्व मरते हुए देखे जाते हैं ॥

वि०—आचार्य यहाँ यह दोष दिखलाते हैं कि जैसे सब ग्रहों को उच्च में और बुध को अपने उच्च के आसन्न रवि से परम फलान्तरित मानकर परमायु १२० वर्ष ५ दिन होते हैं। उसी प्रकार बुध को वृश्चिक के २५ कला पर और और लग्न को प्रथम अंश पर तथा शेष ग्रहों को अपने अपने नीच में कल्पना कर आयुर्दाय बनाया जाय तो २० वर्ष से कम आयु नहीं होती है। अतः २० वर्ष से कम में किसी का करण नहीं होना चाहिये। कहो कि "वह अरिष्ट योग पड़ने से मरता है" तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि बालारिष्ट ८ वर्ष तक ही कहे गये हैं फिर ८ वर्ष के ऊपर और २० वर्ष के भीतर भी कितने मरते हैं, यह प्रत्यक्ष दोष है।

भट्टोत्पल अपनी टीका में लिखते हैं कि—"यह श्लोक असङ्गत है, इससे मालूम होता है कि यह वराहमिहिर का पद्य नहीं है, किसी ने प्रक्षिप्त कर दिया है। क्योंकि उक्त प्रकार से २० वर्ष से कम भी आयुर्दाय का मान आता है। जैसे उदाहरण—लग्न राश्यादि १०।०।१ ॥ रवि ०।१० ॥ चंन्द्र १।३ ॥ शुक्र ११।२७ ॥ बुध ११।१५।० ॥ गुरु ६।५।० ॥ शनि ०।२०।० ॥ मं १०।२८।० ॥ अब यहाँ पूर्व विधि से लग्न के अंश शून्य

जन्मलग्नकुण्डली—



होने के कारण लग्नायु वर्षादि०॥ उच्च और नीच स्थित ग्रहों के आयुर्दाय पठित ही है। मङ्गल की आयु जानने के लिये स्पष्ट मंगल १०।२८ और मङ्गल के उच्च ९।२८ का अन्तर १ राशि की कला १८०० को ९० मास से गुना करके १०८०० के भाग देकर लब्ध १५ मास अर्थात् १ वर्ष ३ मास इसको भौम परमोच्च पठित वर्ष १५ में घटाने से १३ वर्ष ९ मास यह मङ्गल की आयु हुई। गुरु की 'नीच में रहने से' वर्षादि आयु ७।६ किन्तु द्वादश भाव में पड़ने के कारण "व्ययभवनादसत्सु वामं सत्स्वर्ध" इत्यादि वचनानुसार चक्रार्धपात से ३।९ वर्षादि आयु हुई। तथा सूर्यायु १९, चन्द्रायु २५, बुधायु ६ शुक्रायु २१, शनि की आयु १० वर्ष सबका योग ९८ वर्ष ६ मास। फिर लग्न में पाप (मङ्गल) के होने के कारण लग्न के भुक्तनवांश ९० वर्तमान कुम्भ के अर्धोदितोदित नवांश संख्या ९१ से समस्त आयुर्दाय को गुनाकर ८९६३।६ इसमें १०८ के भाग देने से लब्ध वर्षादि ८२।११।२८।२० इसको समस्त आयु में घटाने से शेष स्पष्टायु वषादि १५।६।१।४० यह आठ से अधिक और २० से कम प्रत्यक्ष आता है। इसलिये "नायुर्विंशतेः स्यादधस्तात्" यह कहना अयुक्त हुआ।" परञ्च इस प्रकार असङ्गत होने पर "यह वराह-मिहिर का पद्य ही नहीं है!" ऐसा मानना भी असङ्गत ही है, क्योंकि प्रमाद मनुष्यमात्र से हो सकता है ॥७॥

पूर्वोक्त पूर्णायुयोग में ६ ग्रहों के उच्चगत होने से किसी ने चक्रवर्तित्व योग भी माना है, उसमें दोष देते हैं—

यस्मिन्योगे पूर्णमायुः प्रदिष्टं तस्मिन्प्रोक्तं चक्रवर्तित्वमन्यैः।
प्रत्यक्षोऽयं तेषु दोषोऽपराऽपि जीवन्त्यायुः पूर्णमर्थैर्विनाऽपि ॥

सं०—यस्मिन् ("अनिमिषि परमांशके विलग्ने" इत्यादिके) योगे

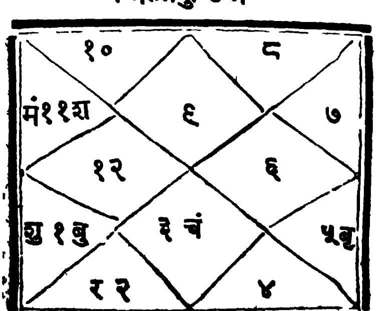
पूर्णमायुः (सपञ्चदिनं विंशत्यधिकवर्षशतं) प्रदिष्टं, तस्मिन् योगेऽन्यैश्चक्रवर्तित्वं प्रोक्तम् । परञ्च तेष्वयमपरोऽपि प्रत्यक्षो दोषोऽस्ति, यत् अर्थधनैर्विनाऽपि जनाः पूर्णमायुर्जीवन्ति ॥८॥

भा० जिस योग में पूर्णायु प्रमाण कहा गया है उस योग में ६ ग्रहों के उच्च में होने के कारण अन्य आचार्यों ने चक्रवर्तित्व (राजाधिराजत्व) योग माना है । परञ्च उनके इस मत में तो और भी प्रत्यक्ष दोष है कि बिल्कुल धनहीन आदमी भी पूर्ण आयुर्दाय से जीवित रहता है ॥ ८ ॥

वि०—इस श्लोक का भावार्थ यह है कि–जब ग्रहों को उच्चगत रहने पर ही पूर्ण आयुर्दाय कहा गया है तो उसमें चक्रवर्तित्व योग भी होता है, तब जो दीर्घायु हो वह चक्रवर्ती, राजा या पूर्ण धनवान् भी हो । परञ्च ऐसा नहीं देखा जाता है । बहुत से दीर्घायु निर्धन ही होते हैं । इसलिये मययवनादि का आयुर्दाय साधन असङ्गत है ।

यहाँ भट्टोत्पल कहते हैं कि–"पूर्वोक्त मययवनादि के मत 'नीचेऽतोर्धं' इत्यादि से उच्च से भिन्न स्थान में भी दीर्घायु (पूर्णायु) योग होता है, जिसमें केमद्रुम (दारिद्य) योग भी होता है अत. पूर्णायु होकर भी दरिद्र हो सकता है । इसलिये यह दोष देना सङ्गत नही है । इसलिये माल्रूम होता है कि यह वराहमिहिर का पद्य नहीं है । किसी ने प्रक्षिप्त कर दिया है ।" जैसे उदाहरण—राश्यादि रवि ११।१०।० ॥ चन्द्र २।३।० ॥ मं० १०।२८।० ॥ बुध ०।१५।० ॥ गु० ४।५।० ॥ शु० ०।२७।२०'।० ॥ शनि० १०।२०।० ॥ लग्नम् ८।२६।५६।५६ यहाँ "नीचेऽतोऽर्धं ह्रसति" इत्यादि प्रकार से वर्षादि स्पष्ट सूर्यायु .१७।५ ॥ चन्द्रायु १६।१।५ ॥ भौमायु १३।६ ॥ बुधायु ७।० ॥ जीवायु १२।०।११।१५ ॥ शुक्राय १६।२।२६।३० ॥ शनैश्चरायु १३।४।० ॥ लग्नायु ६।० ॥ सबका योग ११०।१०।१२।४५ वर्षादि आयुर्दाय सिद्ध होता है । तथा "हित्वाऽर्कं सुनफाऽनफा" इत्यादि चन्द्रयोगाध्याय २ श्लोक के अनुसार केमद्रुम योग भी

जन्मलग्नकुण्डली—



है । अतः दारिद्र्ययोग में भी पूर्णायु प्राप्त हुआ । इसलिये मय आदि के आयुर्दायसाधन प्रकार में यह दोष देना भी असङ्गत सिद्ध होता है" ॥८॥

जीवशर्मा और सत्याचार्य के मत से आयुर्दाय—

स्वमतेन किलाऽऽह जीवशर्मा ग्रहदायं परमायुषः स्वरांशम् ।
ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यं बहुसाम्यं समुपैति सत्यवाक्यम् ॥

सं०—जीवशर्मा स्वमतेन (निजानुभवेन) परमायुषः (सपञ्चदिनस्य विंशत्यधिकवर्षशतस्य) स्वरांशं (सप्तमांशम्) ग्रहदायं (ग्रहाणां रव्यादिशन्यन्तानां सप्तानां तुल्यमेव दायमायुः प्रमाणं) आह (कथयति स्म) । अर्थात् मययवनादिभिर्यथा परमोच्चस्थेषु ग्रहेषु 'नवतिथिविषये'त्यादि भिन्नभिन्नमायुः प्रमाणं पठितं, नीचस्थेषु तदर्धं, मध्येऽनुपाततस्तथैव जीवशर्मा स्वोच्चस्थेषु सर्वेषु ग्रहेषु परमायुःसप्तमांशं, नीचे तदर्धं मध्येऽनुपातत आयुर्दायं प्राह । तथा—"हित्वा वक्रं रिपुगृहगतैः" इति तथा च "सर्वार्धत्रिचरण" इत्यादि चक्रार्धहानिः "सार्धोदितोदितनवांशहतात्" इत्यादि लग्ने क्रूरे हानिरपि पूर्ववत् कार्येत्याह । किन्त्विदं जीवशर्मणः स्वमतमेव, पूर्वाचार्याणां न सम्मतम् । अथ सत्यादिमतं कथयति—ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यं (ग्रहेण भुक्ता ये नवांशराशयस्तत्तुल्यं) 'आयुःप्रमाणं' इति सत्यवाक्यं सत्याचार्यकथनं बहुसाम्यं (बहूनामाचार्याणां साम्यं तुल्यतां) समुपैति ॥ ९ ॥

भा०—जीवशर्मा नामक आचार्य ने अपने मत से—उच्च स्थान में सब ग्रहों के आयु परमायु (१२० वर्ष ५ दिन) के सप्तमांश (१७ वर्ष १ मास २२ दिन ८ घ. ३४ पल) तुल्य ही कहा है । किन्तु यह सर्वसम्मत नहीं है । इसलिये—"ग्रह जितने नवांश भोगकर चुके हों—उतनी राशितुल्य वर्ष ग्रहायुर्दाय होता है" इस प्रकार सत्याचार्य का कथन बहुत से आचार्यों का सम्मत है ॥ ९ ॥

वि०—अभिप्राय यह है—जीवशर्मा ने अनुभव किया कि—अपने अपने उच्च में सब ग्रहों का आयुर्दाय तुल्य होना चाहिए, इसलिये परमायुर्दाय के सप्त-

मांश तुल्य वर्षादि उच्च में, और नीच में उसका आधा ८।६।२६।४।१७। इस पर से पूर्ववत् मध्य में त्रैराशिक से अनुपात द्वारा आयु साधन करके जो ग्रह चक्रोत्तरार्ध में हो उसकी "सर्वार्धत्रिचरण" इत्यादि, एवं शत्रु राशिस्थित, अस्तङ्गत ग्रहों की तथा लग्न में क्रूरग्रह हो तो—"सार्धोदितोदित" इत्यादि हानि क्रिया करके स्पष्टायु साधन करना चाहिये। जैसे जीव शर्मा का वाक्य—

"सप्तदशैको द्वियमौ वसवो वेदाग्नयो ग्रहेन्द्राणाम्।
वर्षाण्युच्चस्थानां नीचस्थानामतोऽर्धं स्यात्॥
मध्येऽनुपाततः स्यादानयनं शेषमत्र यत् किञ्चित्।
पिण्डायुष इव कार्यं तत्सर्वं गणिततत्त्वज्ञैः।" अर्थ ऊपर लिखित है॥

तथा सत्याचार्य का कथन है कि—जो ग्रह जितने नवमांश भोगकर चुके हों उतनी राशि सङ्ख्या समझकर १२ से अधिक हो तो १२ के भाग देकर शेष तुल्य उस ग्रह का आयुर्दाय होता है। ग्रह भुक्त नवांश जानने का उपाय यह है कि ग्रह को कलात्मक बनाकर उसमें २०० का भाग देने से भुक्तनवांश सङ्ख्या होगी, क्योंकि २०० कला का १ नवांश होता है। इस प्रकार जितनी सङ्ख्या हो उसमें १२ के भाग देकर शेष तुल्य वर्ष समझना तथा शेष कला को १२ से गुनाकर २०० के भाग देने से लब्धि मास, फिर शेष को ३० से गुनाकर २०० के भाग देने से लब्धि दिन एवं ६० से गुनाकर घटी और पल साधन करना चाहिये जो आचार्य स्वयं आगे श्लोक में कहते हैं॥ ९॥

जीवशर्मा के आयुर्दाय का सोपपत्ति उदाहरण—परमायु १२० वर्ष ५ दिन इसके दिन बनानें से ४३२०५ इसका सातवाँ भाग $\frac{४३२०५}{७}$ उच्चस्थ ग्रह का आयुः प्रमाण दिनात्मक हुआ। इस पर से त्रैराशिक (अनुपात) हुआ कि—यदि स्वोच्च ग्रहान्तर = ० अर्थात् १२ राशि अथवा ३६० अंश में

$\frac{४३२०५}{७}$ इतना आयुर्दाय तो इष्ट उच्चग्रहान्तरांश में क्यां ? लब्धि =

$\frac{४३२०५}{७} \times \frac{\text{उच्चग्रहान्तरांश}}{३६०} = \frac{८६४१ \times \text{उच्चग्रहान्तरांश}}{५०४}$ = दिनादि ग्रहायुर्दाय। यहाँ उच्चग्रहान्तर ६ राशि से अधिक हो उस प्रकार ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि—नीच से ज्यों ज्यों ग्रह आगे बढ़ता, त्यों त्यों आयु की वृद्धि होकर उच्च में पूर्ण होता है। इससे यह सूत्र (श्लोक) उपपन्न हुआ कि—

"स्वोच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यः षड्राश्यूनो भमण्डलात् ।
तद्भागाः कब्धिषड्भोगिहता वेदाभ्रसायकैः ॥
भक्ता दिनादि यल्लब्धं तदायुर्जीवशर्मजम् ॥"

अर्थ—ग्रह और उच्च के अन्तर ६ से अधिक हो तो उसीके, यदि ६ राशि से कम हो तो उसको १२ राशि में घटाकर शेष राश्यादि के अंश बनाकर उसको ८६४१ से गुना करके ५०४ का भाग देने से दिनादि ग्रह का आयुर्दाय होना है ॥"

जैसे पूर्व उदाहरण में स्पष्ट सूर्य ०।६।४६।४० को सूर्य के उच्च ०।१० में घटाने से राश्यादि अन्तर ०।३।१०।२० यह ६ राशि से अल्प है इसलिये इसको १२ राशि में घटाकर ११।२६।४६।४० इसके अंश ३५६।४६।४० इसको ८६४१ से गुना करने से ३०८३३४८।४६।४० इसमें ५०४ का भाग देने से लब्धि दिनादि ६११७।४५।२० इसको वर्षादि बनाने से १६।११।२७।४५ २० यह सूर्य का आयुर्दाय हुआ। इसी प्रकार चन्द्रमा को सूर्य के साथ अस्त होने के कारण १६।१।१६।४४।१३ के आधा ८।०।२८।२२।८ ॥ मङ्गल का १०।८।८।२६।१६ ॥ तथा बुध को शत्रुगृह में होने के कारण तृतीयांश घटाने से ६।०।३।३४।४ ॥ गुरु के १०।११।२७।२८ ॥ अष्टमस्थान में रहने के कारण दशांश घटाकर ६।१०।२१।४३।३० शुक्र के १६।७।१६।१७।२ द्वादशभाव तथा शत्रुगृह में होने के कारण आधा करके फिर तृतीयांश घटाने से ५।६।१६।२५।४ ॥ तथा शनि का ८।११।१४।५५।१४ एवं लग्न का पूर्वोक्त रीति से अंशायु ६।४।२६।२२।१२ यह जीवशर्मा के मत से जातक का आयुर्दाय हुआ ॥ ९ ॥

सत्याचार्य के मत से आयुर्दाय साधन का प्रकार—

सत्योक्ते ग्रहमिष्टं लिप्तीकृत्वा शतद्वयेनाप्तम् ।
मण्डलभागविशुद्धेऽब्दाः स्युः शेषात्तु मासाद्याः ॥१०॥

सं० — सत्योक्ते सत्याचार्योक्तायुर्दायानयने इष्टं ग्रहं लिप्ती कृत्वा कलात्मकं विधाय शतद्वयेनाऽऽप्तम् (द्विशत्या भागमपहृत्य यल्लब्धं) तस्मिन् मण्डलभागविशुद्धे (द्वादशभक्तावशेषे) ऽब्दा वर्षाणि स्युः । शेषात् (कलावशेषात्) तु अनुपाततो मासाद्याः साध्याः ॥१०॥

भा०—सत्याचार्य के मत से प्रत्येक ग्रह को कलात्मक बनाकर उसमें २०० के भाग देने से लब्धनवांशसंख्या यदि १२ से अधिक हो तो १२ से भाग देकर जो शेष बचे उतने वर्ष और शेष कला परं से मासादिक साधन करे इस प्रकार उस ग्रह का वर्षादि आयुर्दाय होता है ॥१०॥

इसकी उपपत्ति (युक्ति) यह है कि १ राशि की कला १८०० का नवांश २०० कला १ नवमांश प्रमाण है । इस से अनुपात हुआ कि यदि २०० कला में १ नवांश तो इष्ट ग्रह की कला में कितने ? इस प्रकार भुक्त नवमांश संख्या= $\frac{\text{कलात्मकग्रह}}{२००}$,नवांश संख्या यदि १२ से अधिक हो तो १२ से तष्टित कर लेना चाहिए, क्योंकि भुक्त नवांश राशि तुल्य वर्ष होता है । राशियाँ १२ ही है । शेषकला से अनुपात हुआ कि २०० कला में १२ मास तो शेष कला में क्या ? इस प्रकार शेष कला को १२ से गुनाकर २०० का भाग देने से लब्धि मास पुनः शेष को ३० से गुनाकर २०० के भाग देकर लब्धि दिन, फिर शेष को ६० से गुनाकर २०० के भाग देने से लब्धि घटी समझना, उदाहरण आगे (१२) श्लोक में देखिए ॥१०॥

इस प्रकार सत्याचार्य के मत में कुछ विशेषता कहते हैं—

स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणं द्विरुत्तमस्वांशकभत्रिभागगैः ।

इयान् विशेषस्तु भदत्तभाषिते समानमन्यत्प्रथमेऽभ्युदीरितम् ।

सं०—स्वतुङ्गवक्रोपगतैर्ग्रहैः प्रदत्तमायुः त्रिसंगुणं कार्यम् । उत्तमस्वांश-कभत्रिभागगैः (वर्गोत्तमनवांशस्वनवांशस्वद्रेष्काणस्थितैर्ग्रहैर्दत्तं यदायुः प्रमाणं तत्) द्विसंगुणं कार्यम् । भदत्तभाषिते (सत्याचार्यमते) इयान् विशेषः, (मययवनमणित्थाद्याचार्यमतादेतावान् अधिकः) अन्यत् (शत्रुक्षेत्रगतस्य त्र्यंशहानिः, अस्तङ्गतस्यार्धहानिः, 'सर्वार्धत्रिचरणे'त्यादि चक्रार्धहानिः, इत्यादिक सर्वे) प्रथमे (पूर्वप्रतिपादिते मयादिमते) यदुदीरितं कथितं तत् सर्वं अत्रापि सत्यमते समानं तुल्यमेव ज्ञेयमित्यर्थः ॥११॥

भा०—सत्याचार्य के मत से आयुर्दाय का साधन करके, जो ग्रह अपने उच्च में हो या वक्र हो उसके आयुर्दाय को त्रिगुणित कर देना, जो ग्रह वर्गोत्तमनवांश में, या अपने द्रेष्काण में हो उसके आयुर्दाय को द्विगुणित कर देना चाहिये । इतनी क्रिया सत्याचार्य के मत मे अन्य आचार्यों से विशेष है । और अन्यक्रिया (शत्रु गृहगत का तृतीयांश घटाना, अस्तङ्गत का आधा घटाना, एवं चक्रार्धहानि, जो कही गयी है वे सब क्रिया) समान ही अर्थात् भदत्त (सत्याचार्य) के मत में भी समान ही समझना चाहिये ॥११॥

लग्नायुर्दाय में भी कुछ विशेषता कहते हैं —

किन्त्वत्र भांशप्रतिमं ददाति वीर्यान्विता राशिसमं च होरा ।
क्रूरोदये योऽपचयः स नाऽत्र कार्यश्च नाऽब्दैः प्रथमोऽदिष्टैः ।

सं०—किन्तु अत्र (सत्याचार्यमतायुर्दाये) होरा (लग्नं) भांशप्रतिमं (भुक्तनवांशराशितुल्यं) वर्षादिकं 'आयुः' ददाति । किन्तु यदि होरा वीर्यान्विता (स्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता) तदा तु राशिसमं (स्वभुक्त-राशितुल्यं) वर्षादिकं च ददाति । क्रूरोदये (लग्नगतपापे) योऽप-चयः 'पूर्वाचार्यमते सार्धोदितोदितनवांशतुल्यादिना' कृतः,

सीऽत्र सत्यमते न कार्यः । तथा प्रथमोपदिष्टैः (मययवनादिभिव र्मकथितैः, 'नवतिथिविषयेत्यादिकैर्वा ग्रहदायं परमायुषः स्वरांशम्' इत्येतैः) कथितैः वर्षपिण्डैः, सत्यमतायुर्दायो न कार्यः, इति सत्यमते विशेषो ज्ञेयः ॥ १२ ॥

भा०—सत्याचार्य के मत से लग्न में जितनी राशि के नवांश भुक्त हुए हों उतने वर्ष लग्न की आयु होती है। परन्तु यदि लग्न बलवान् हो अर्थात् स्वामी या बुध गुरु से युत दृष्ट हो तो भुक्त राशि के तुल्य वर्षादि आयु और भी देती है। तथा लग्न में पापग्रह होने से जो अन्य (मय आदि) आचार्य के मत में अपचय (सार्धोदितोदित इत्यादि विधि से ह्रास) कहा गया है वह सत्याचार्य के मत में नहीं करना। तथा प्रथम कहे हुए (नव तिथि, या परमायुर्दाय के सप्तमांश ग्रहपिण्ड) वर्षों से भी लग्नायुर्दाय नहीं करना, इतना सत्याचार्य के मत में विशेष (दूसरे आचार्यों के मत से भेद) है ॥ १२ ॥

उदाहरण—पूर्व लिखित स्पष्ट सूर्य ०।६।४६।४० की कला ४०६।४० में २०० के भाग देने से लब्धि २, बारहसे कम है इसलिये येही वर्ष २ हुए। शेष ६।४० को १२ से गुना करके ११६।० इसमें २०० के भाग देने से लब्धि ० मास। फिर शेष ११६ को ३० से गुना करके २०० के भाग देकर लब्धि १७ दिन, फिर दिन शेष ८० को ६० से गुनाकर २०० भाग देकर लब्धि २४ घटी इस प्रकार सूर्य का वर्षादि आयुर्दाय २।०।१७।२४ हुआ। एवं चन्द्रमा के अस्तङ्गत होने के कारण ३।८।४।४२।३६ के आधा १।१०।२।२१।१८। मङ्गल का १०।०।०।४८।३६। बुध का त्र्यंशोन करने से ६।१०।८।५४।०। गुरु का दशमांशोन ६।६।६।४३।४५। शुक्र का द्वादश स्थान में होने के कारण आयुर्दाय ७।१०।२४।१२।३६ के आधा ३।११।१२।६।१८ करके इसमें शत्रुगृह में होने के कारण तृतीयांश घटाने से २।७।१८।४।१२ पुनः शुक्र स्वोच्च में है इस लिये त्रिगुणित करने से शुक्र का स्पष्टायुर्दाय ७।१०।२४।१२।३६। तथा शनि का ८।५।४।५६।०

और लग्न का ६।४।२६।२२।१२ बृहस्पति वर्गोत्तमनवांश (वृश्चिकराशि में वृश्चिक के नवांश) में है अतः उसकी आयु को दूना करने से स्पष्टायु १३।०।१६।२७।३० तथा सूर्य स्वोच्च में है अतः उसके साधित आयु को त्रिगुणित करने से ६।१।१२।१२ यह स्पष्टायुर्दाय हुआ। इस प्रकार सत्याचार्य के मत से लग्न सहित ग्रहों के आयुर्दाय का योग जातक का आयुर्दाय ६२।५।२१।१८।३०।

ग्रहप्रदत्त-अंशायुर्दायचक्र—

	र.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	योग
व.	६	३	१०	६	११	७	८	६	१२
मा.	१	८	०	१०	०	१०	५	४	५
दि.	२२	४	०	८	१९	२४	४	२६	२१
घ.	१२	४२	४८	५४	२७	१२	३९	२२	१८
प.	०	३६	१६	०	३०	५६	०	१२	३०

इस प्रकार अंशायु आनयन में सरल प्रकार यह हो सकता है कि—यदि १२ राशि में १०८ नवांश होते हैं तो ग्रह के भुक्त राश्यादि में क्या ? इस प्रकार त्रैराशिक से नवांश संख्या= $\frac{\text{राश्यादिग्रह} \times १०८}{१२}$,

इससे सिद्ध हुआ कि राश्यादिग्रह को १०८ से गुना करके तथा विकलादि सवर्णन करके राशिस्थान में १२ के भाग देने से लब्धि तुल्य वर्ष, यदि १२ से अधिक लब्धि हो तो उसे १२ से तष्टितकर शेष को वर्ष समझे, और शेष राश्यादि को क्रम से मासादिक जानना चाहिये। इसलिये यही प्रकार लघुजातक में आचार्य ने स्वयं भी कहा है। यथा—

राश्यंशकला गुणिता द्वादशनवभिर्ग्रहस्य भगणेभ्यः।
मण्डलभागविशुद्धेऽब्दाः स्युः शेषात्तु मासाद्याः ॥ स्पष्टार्थं ॥

अथवा उपरिदर्शित अनुपात से यह भी सिद्ध होता है कि राश्यादिग्रह को केवल ९ से गुना करके विकलादि को सवर्णन कर राशिस्थान में १२ से अधिक हो तो १२ से तष्टित करके शेष तुल्य वर्ष और शेष

अंशादि को २ से गुनाकर ५ के भाग देने से लब्धि मास. पुनः शेष को ६ से गुना करने से दिनादि होते हैं । यथा—स्पष्ट सूर्य राश्यादि ०।६।४६। ४० इसको १०८ से गुना करने से ०।६४८।५२६२।४३२० से वर्णन करने से २४।१७।२४।० राशि के स्थान में १२ के भाग देने से लब्धि २ वर्ष । शेष ०।१७।२४ मासादि पूर्व तुल्य ही हुआ ।

दूसरे प्रकार से राश्यादि सूर्य को केवल ९ से गुना करने से ०।५४। ४४१।३६० सवर्णन करने से राश्यादि २।१।२७।० राशि तुल्य वर्ष = २ । शेष अंशादि को २ से गुनाकर २।५४ इसमें ५ से भाग देने से लब्धि ० मास, फिर शेष को ६ से गुना करने से दिनादि १७।२४ पूर्व तुल्य हुआ ॥१२॥

अब सत्याचार्य के मत में भी कुछ दोष कहते हैं—

सत्योपदेशो वरमत्र किन्तु कुर्वन्त्ययोग्यं बहुवर्गणाभिः ।
आचार्यकत्वं च बहुघ्नतायामेकं हि यद्भूरि तदेव कार्यम् ॥१३॥

सं०—अत्र (अस्मिन् मतत्रये) सत्योपदेशो वरं, अन्यापेक्षया किञ्चिच्छ्रेष्ठ इत्यर्थः । "देवाद्वृते वरः, श्रेष्ठे त्रिषु, क्लीबं मनाक् प्रिये" इत्यमरोक्तेः । किन्तु अत्रापि सत्यमतेऽपि बहुवर्गणाभिः (बहुगुणनाभिः) जना अयोग्यं कुर्वन्ति । "स्वतुङ्गवक्रोपगतैः" इत्यादिना-ये ये गुणा प्राप्तास्तान् सर्वान् कुर्वन्ति, तथा च यो ग्रहः शत्रुगृहगतोऽस्तङ्गतश्च तस्य हानिद्वयं कुर्वन्ति, इत्ययोग्यमनुचितं कुर्वन्तीत्यर्थः । अत्र—आचार्यकत्वं चैतदेव यद्-बहुघ्नतायां प्राप्तायां एकं यद् भूरि (अधिकं) तदेव कार्यं, न सर्वमिति । अर्थात् यद्येकस्य ग्रहस्य त्रिगुणत्वं, च द्विगुणत्वं प्राप्तं, अथवा द्विधा द्विगुणत्वं, वा त्रिगुणत्वं प्राप्तं तदा तत् त्रिगुणमेव कार्यम् । एवमेकस्यैव अर्धहानिस्त्र्यंश-हानिश्चेति हानिद्वयं प्राप्तं चेत् तदाऽधिकत्वादर्धहानिरेवकार्या, न द्वयमिति ॥

भा०—इन (मयादि, जीवशर्मा और सत्य) तीनों मत में सत्याचार्य का ही मत कुछ अच्छा है । किन्तु सत्याचार्य के मत में भी लोग बहुवर्गणा ('स्वतुङ्गवक्रोपगतैः' इत्यादि जो जो गुणना प्राप्त होती है उन सब क्रिया)

को करके अयोग्य (अनुचित) कर डालते हैं। आचार्यता (पाण्डित्य) तो यह है कि—बहुवर्गणा प्राप्त हो तो जो बड़ी गुणना हो वह एक ही और एक बार ही करना चाहिये ॥ १३ ॥

वि०—अभिप्राय यह है कि—सत्याचार्य के मत से आयुर्दाय साधन करके जो ग्रह, वक्र हो और उच्च में भी हो, उसकी आयु को लोग दो बार त्रिगुणित करते हैं वह अयुक्त है। वहाँ एकही बार त्रिगुण करना चाहिये। एवं जहाँ द्विगुणत्व और त्रिगुणत्व दोनों प्राप्त हो वहाँ केवल त्रिगुण ही करना चाहिये। एवं जहाँ त्र्यंश और अर्ध हानि दोनों प्राप्त हो वहाँ केवल अर्ध हानि करना चाहिये, दोनों नहीं यह वराहमिहिर का मत है ॥१३॥

अमित आयुर्दाय का योग—

गुरुशशिसहिते कुलीरलग्ने शशितनये भृगुजे च केन्द्रयाते।
भवरिपुसहजोपगैश्च शेषैरमितमिहायुरनुक्रमाद्विना स्यात् ॥

इति बृहज्जातके आयुर्दायाऽध्यायः सप्तमः ॥ ७ ॥

सं०—गुरुशशिसहिते कुलीरलग्ने, शशितनये (बुधे) भृगुजे च केन्द्रयाते केन्द्रगते सति, शेषैः (शनिरविमङ्गलैश्च) भवरिपुसहजोपगैः, इहाऽस्मिन् योगे 'जातस्य' अनुक्रमात् (गणितक्रमं) विनैवामितं (प्रमाणरहितं दीर्घतरं) आयुः स्यात्। अस्मिन् योगे जातः सुकर्मा भवति, सुकर्मणा च तस्यायुषो वृद्धिर्भवतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

भा०—चन्द्रमा और गुरु से युक्त कर्क लग्न हों, बुध शुक्र दोनों केन्द्र स्थान में हों और शेष ग्रह (शनि, रवि, मङ्गल) लग्न से ११।६।३ इन स्थान में एक साथ या पृथक् पृथक् भी हो तो गणितक्रम को छोड़कर उस जातक का आयुर्दाय प्रमाण रहित समझना चाहिये ॥ १४ ॥

वि०—भाव यह है कि इस प्रकार के सुयोग में जन्म लेनेवाला सुकर्म करनेवाला होता है, इसलिये उसका आयुर्दाय बढ़ जाता है। इससे यह भी

सिद्ध होता है कि इससे विपरीत योग में उत्पन्न जातक कुकर्मरत (पापी) होता है उससे आयु की हानि भी होती है। कहा भी है कि—"पुण्याचारादायुषो वृद्धिरेवं पापाचारात् तस्य हानिर्ध्रुवा स्यात्" ॥१४॥

इति बृहज्जातकटीकायां तत्त्वार्थदीपिकायामायुर्दायाध्यायः ॥७॥

—※—

अथ दशाऽन्तर्दशाध्यायः ॥ ८ ॥

लग्नसहित ग्रहों की दशा का क्रम कहते हैं—

उदयरविशशाङ्कप्राणिकेन्द्रादिसंस्थाः
प्रथमवयसि मध्येऽन्त्ये च दद्युः फलानि।
न हि न फलविपाकः केन्द्रसंस्थाद्यभावे
भवति हि फलपक्तिः पूर्वमापोक्लिमेऽपि ॥१॥

सं०—उदयरविशशाङ्कप्राणिकेन्द्रादिसंस्थाः (लग्न-रवि-चन्द्रेषु यः प्राणी बली तत्केन्द्रादिषु केन्द्र-पणफरापोक्लिमेषु स्थिता ये ग्रहास्ते) क्रमेण प्रथमवयसि, मध्ये वयसि, अन्त्ये वयसि च फलानि दद्युः। एतदुक्तं भवति—लग्नरविचन्द्रेषु यो बली प्रथमं तस्य दशा, तदनन्तरं तत्केन्द्रस्थितानां बलक्रमाद्दशाः, तदनन्तरं प्रथमदशाप्रदात्पणफरस्थानां, ततश्चापोक्लिमस्थितानां बलक्रमाद्दशा भवन्ति। केन्द्रसंस्थाद्यभावे फलविपाको 'नहि' इति न ज्ञेयम्, तदानीं पूर्वं आपोक्लिमेऽपि आपौक्लिमस्थाने स्थितानामपि बलक्रमेण दशा भवन्ति। अर्थात् प्रथमदशाप्रदात् पणफरे ग्रहाभावात् मध्ये वयसि आपोक्लिमस्थानामेव दशा भवन्ति। एवमापोक्लिमे ग्रहाभावे सति पणफरास्थानामेवान्त्ये वयस्यपि दशा भवन्तीति ज्ञेयम् ॥१॥

भा०—लग्न, रवि और चन्द्रमा इन तीनों में जो अधिक बली हो आरम्भ में प्रथम उसी की दशा होती है। फिर उससे केन्द्र स्थित ग्रहों की दशा होती। उसके बाद मध्यकाल में प्रथम दशा प्रद से पणफर स्थान में

स्थित ग्रहों की दशा होती है। उसके बाद अन्त समय में प्रथम दशाप्रद से आपोक्लिम स्थान स्थित ग्रहों की दशा होती है। अगर केन्द्र या पणफर में ग्रह नहीं हो तो 'प्रथम और मध्य समय में फल नहीं होगा' ऐसा नहीं समझना अर्थात् उस हालत में मध्य और अन्त वयस (समय) में आपोक्लिम (३।६।९।१२) स्थान स्थित ग्रहों की ही दशा होती है ॥१॥

उदाहरण—जैसे पूर्वोक्त ४ श्लो० के उदाहरण में जन्मलग्नकुण्डली देखिये। लग्न, रवि और चन्द्र इन तीनों में उच्च में होने के कारण रवि बली है, इसलिए प्रथमदशा रवि की हुई। फिर उससे केन्द्र में, चन्द्र लग्न और शनि है, इन तीनों में चन्द्रमा अपने उच्च के आसन्न और मित्र राशि में है, शनि अपने नीच में पड़ा है, इसलिये निर्बल शनि से बली लग्न और लग्न से बली चन्द्रमां है, अतः सूर्य के बाद चन्द्रमा, लग्न और शनि की क्रम से दशा हुई। तदनन्तर पणफर में केवल गुरु है अतः शनि के बाद गुरु की दशा। फिर अपोक्लिम में मङ्गल बुध शुक्र ये तीन है इन तीनों में शुक्र उच्च में बली है, बुध नीच मे है इसलिये निर्बल है, अतः बलक्रम से गुरु के बाद शुक्र, मङ्गल और बुध की दशा हुई। अतः क्रम से दशापति-रवि, चन्द्र, लग्न, शनि, गुरु, शुक्र, मङ्गल और बुध हुए ॥१॥

अब किसके कितने वर्ष दशामान होते हैं, सो कहते हैं—

आयुःकृतं येन हि यत्तदेव कल्प्या दशा सा प्रबलस्य पूर्वा।
साम्ये बहूनां बहुवर्षदस्य तेषां च साम्ये प्रथमोदितस्य ॥२॥

सं०—येन ग्रहेण यत् (यावत्प्रमाणं वर्षादिकं) आयुः कृतं तदेव (स्व-स्वायुरेव) तत्तद्ग्रहस्य दशा कल्प्या। सा दशा पूर्वं प्रबलस्य ग्रहस्य ज्ञेया। बहूनां बलस्य साम्ये बहुवर्षदस्य (यस्यायुर्वर्षमधिकं तस्य) पूर्वं दशा कल्प्या। तेषां वर्षाणां च साम्ये सति प्रथमोदितस्य (सूर्यसान्निध्यादस्तमितानां यस्य प्रथमोदयस्तस्य) पूर्वं दशा कल्प्या ॥२॥

भा०—पूर्वविधि से जिस ग्रह की जितनी आयु (वर्षादि) हो उतनी ही उस ग्रह की दशा समझनी चाहिये। वह दशा भी बलक्रम से अर्थात् बली

ग्रह की प्रथम दशा होती है। यदि २ या अधिक ग्रह में बल की समता हो तो उनमें जिसके अधिक वर्ष हों प्रथम उसी की दशा समझनी। यदि वर्ष में भी तुल्यता हो तो सूर्य सान्निध्यवश से अस्त के बाद जिसका प्रथम उदय हुआ हो उसकी पहिले दशा होती है॥ २॥

वि०—गार्गिवचन-"बली लग्नेन्दुसूर्याणां दशामाद्यां प्रयच्छति।
तस्मात्ततः प्रयच्छन्ति केन्द्रादिस्थाः क्रमेण तु॥
तत्रापि बलिनः पूर्वं तत्साम्ये बहुदायकाः।
तत्साम्येऽपि प्रयच्छन्ति ये पूर्वं रविविच्युताः॥"इति।

स्पष्टार्थ—यहाँ यह कहा गया है कि बल में और वर्ष में समता हो तो रवि सान्निध्यवश जिसका प्रथम उदय हुआ हो उसकी प्रथम दशा समझना। परञ्च यदि रवि सान्निध्य से उदय में भी समता हो तब उन दोनों में प्रथम-दशा किसकी होगी? इसका निर्णय नहीं कहा गया है। इसलिये वहाँ नील-कण्ठोक्त निर्णय-["अल्पगतेस्तु पूर्वा" जिसकी अल्पगति हो अर्थात् जिसकी ऊपर कक्षा हो उसकी दशा प्रथम होती है] इसके अनुसार दशा समझनी चाहिये। क्योंकि कक्षा में तुल्यता नहीं हो सकती है॥ २॥

उदाहरणक्रम पूर्व दिखलाया गया है। स्पष्टार्थ अंशायुर्दशाचक्र—

दशेश	रवि	चन्द्र	लग्न	शनि	गुरु	शुक्र	मङ्गल	बुध
दशावर्षादि	३	३	६	८	११	७	१०	६
	१	८	४	५	०	१०	०	१०
	२२	३	२६	४	१९	२३	०	८
	१२	४२	२२	५९	२०	१२	४८	५४
	०	५६	१२	०	३०	३६	३६	०
संवत्	१९७५	१९७८	१९८५	१९९३	२००६	२०१४	२०२३	२०३१
राश्यादिस्पष्ट	१	१०	३	८	६	७	७	५
	२९	३	०	४	२४	१८	१९	२८
	१	४४	६	३५	१२	२५	१३	८
	४०	११	२८	२८	५८	३३	१०	३०

अब अन्तर्दशा प्रकार कहते हैं—

एकर्क्षगोऽर्द्धमपहृत्य ददाति तु स्वं
त्र्यंशं त्रिकोणगृहगः स्मरगः स्वरांशम् ।
पादं फलस्य चतुरस्रगतः सहोरा-
स्त्वेवं परस्परगताः परिपाचयन्ति ॥ ३ ॥

सं०—एकर्क्षगः (दशापतिना सहैकराशिस्थितो ग्रहो लग्नं वा) अर्धं (दशाधिपदत्तदशाकालस्यार्धभागं) अपहृत्य स्वं (स्वकीयं कालं, स्वगुणानुसारं) ददाति । त्रिकोणगृहगः (दशापतेर्नवमपञ्चमस्थानस्थितो ग्रहः) त्र्यंशं (दशापतिदायकालस्य तृतीयांशं) अपहृत्य ददाति । स्मरगः (दशापतेः सप्तमस्थितः) स्वरांशं (सप्तमांशं) अपहृत्य ददाति । चतुरस्रगतः (दशापतेश्चतुरष्टमस्थानगतो ग्रहः) फलस्य (दशापतिपाककालस्य) पादं चतुर्थांशमपहृत्य स्वं फलं ददाति । एवं सहोरा लग्नसहिताः सर्वे ग्रहाः परस्परगताः (मिथः कथितस्थानगताः) स्वस्वदशागुणैः परिपाचयन्ति (स्वस्वान्तर्दशाफलं प्रयच्छन्तीत्यर्थः) ॥ ३ ॥

भा०—(सम्पूर्ण आयु का मालिक दशापति होता है इसलिये उसका भाग पूरा $\frac{1}{1}$ है) दशापति के साथ में जो ग्रह हो उनमें सब से बली केवल एकग्रह आधा $\frac{1}{2}$ का पाचक (अन्तर्दशाधिप) होता है। एवं त्रिकोण (९।५) में रहने वाले में बली एक ग्रह तृतीयांश $\frac{1}{3}$ का अन्तर्दशाधिप होता है। दशापति से सप्तम स्थान में स्थित एक ग्रह सप्तमांश $\frac{1}{7}$ का पाचक होता है। एवं चतुरस्र (४।८) स्थान में स्थित ग्रहों में केवल एक बली ग्रह चतुर्थांश $\frac{1}{4}$ का पाचक होता है। इस प्रकार लग्न सहित सब ग्रह परस्पर इन स्थान में पड़ने से अपने अपने गुणानुसार अन्तर्दशापति होकर फल देते हैं ॥ ३ ॥

वि०—यहाँ साथ में या त्रिकोण आदि में स्थित ग्रहों में केवल एक ही ग्रह पाचक होता है ऐसा अर्थ एकवचन निर्देश से किया है। तथा अन्य आचार्यों का वाक्य भी स्पष्ट है, कि—

"एकर्क्षोपगतानां यो भवति बलाधिको विशेषेण ।
एकः स एव हर्ता नान्ये तत्र स्थिता विहगाः ॥"

अर्थात्—एक स्थान में बहुत ग्रह हों तो उनमें जो सब से बली हो केवल वही एक ग्रह अपने अंश का अपहरण कारक (पाचक) होता है, सब नहीं । इससे सिद्ध होता है कि–यदि दशापति से १।५।६।४।८।७ इन स्थान में कोई ग्रह नहीं हो तो उस ग्रह की दशा में दूसरे ग्रह की अन्तर्दशा नहीं होगी । अर्थात् स्वयं दशापति और अन्तर्दशापति भी होगा ॥ ३ ॥

उदाहरण—जैसे सूर्य की दशा में अन्तर्दशा विचार करना है तो सूर्य के साथ लग्न चन्द्रमा शनि तीन है, इनमें चन्द्रमा बली है इसलिये चन्द्रमा आधा $\frac{1}{2}$ का पाचक हुआ। तथा सूर्य से त्रिकोण वा सप्तम में ग्रह नहीं है। केवल अष्टम में गुरु है अतः वह चतुर्थांश $\frac{1}{4}$ का पाचक हुआ । इस प्रकार सूर्य की दशा में सूर्य $\frac{1}{1}$, चं. $\frac{1}{2}$, गु. $\frac{1}{4}$ अन्तर्दशा पाचक हुए ॥ ३ ॥

अब किसके कितने कितने वर्ष अन्तर्दशा होगी सो कहते हैं—

**स्थानान्यथैतानि सवर्णयित्वा सर्वाण्यधश्छेदविवर्जितानि ।
दशाब्दपिण्डे गुणका यथांशं छेदस्तदैक्येन दशाप्रभेदः ॥४॥**

सं०—अथ (अन्तर्दशास्थानज्ञानानन्तरं) एतानि ("एकर्क्षगोर्धमि" त्यादिना प्राप्तानि) सर्वाणि स्थानानि ('अर्धादिकान् भागान्' इत्यर्थः) सवर्णयित्वा (अन्योन्यहाराभिहतौ हरांशौ इत्यादिना समच्छेदीकृत्य) अधश्छेदविवर्जितानि कार्याणि । एवमुपरि यथांशं (समच्छेदविधानेनोत्पन्ना अंशाः पृथक्) दशाब्दपिण्डे गुणकाः ज्ञेयाः । तदैक्येन तेषामंशानां योगेन च्छेदो भाजकः कार्यः । ततो दशाप्रभेदोऽन्तर्दशा प्रमाणं भवति । अर्थाद्दशावर्षाणि पृथगंशैः सङ्गुण्य, अंशयोगेन च विभज्य वर्षादिका लब्धिरन्तर्दशाप्रमाणं ज्ञेयमित्यर्थः ॥ ४ ॥

भा०—पूर्वश्लोकानुसार जितने अन्तर्दशा पाचक का स्थान (अर्ध आदि भाग) प्राप्त हो उन सब भागों का 'अन्योन्यहराभिहतौ हरांशौ' इत्यादि विधि से समच्छेद करके नीचे छेदों को त्याग कर देना, तथा ऊपर जो अंश

पृथक् पृथक् हों उन सबों को दशावर्ष के गुणक समझे, तथा सब अंशों के योग को भाजक कल्पना करके अन्तर्दशा साधन करे। अर्थात् पृथक् पृथक् अंशों से दशा वर्ष को गुनाकर भाजक (अंश योग) से भाग देकर लब्धि वर्षादि अन्तर्दशा होगी ॥ ४ ॥

	सू	च	गु
अ.	१	१	१
छे.	१	२	४

उदा०—जैसे सूर्य की दशा में अन्तर्दशा पाचक इनका परस्पर हर से हर अंश को गुना करने से समच्छेद हुआ। अब यहाँ नीचे छेदों को त्याग कर देने से अं. ४, २, १

	सू	चं	गु
अं.	४	२	१
छे.	४	४	४

इनको गुणक और इन अंशों के योग ७ को भाजक मानो। सूर्य दशावर्ष ६।१।२२।१२।० को सूर्य के गुणक (४) से गुना करके २४।६।२८।४८।० इसमें भाजक (७) के भाग देकर लब्धि वर्षादि सूर्य की अन्तर्दशा ३।६।४।६।५१ इतनी हुई। फिर सूर्यदशा वर्ष को २ से गुनाकर ७ से भाग देकर लब्धि वर्षादि १।६।२।१३।२६ यह सूर्यदशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा हुई। इसी प्रकार दशावर्ष को गुरु के गुणक १ से गुनाकर उसमें ७ के भाग देने से लब्धि वर्षादि ०।१०।१६।१।४३ यह गुरु की अन्तर्दशा हुई। इस प्रकार अन्तर्दशा चक्र—

दशेश	सू.	चं.	बृ.
वर्ष	३	१	०
मास	६	९	१०
दिन	४	२	१६
घटी	६	३	१
पल	५१	२६	४३
संवत्	१९७२	१९७४	१९७५
सू रा	६	६	१
अं	१०	१२	२९
क	५६	५९	१
वि.	३१	५७	१०

एवं चन्द्रदशा में अन्तर्दशा पाचक क्रम से

च.	र.	गु.
$\frac{१}{१}$	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{४}$

इस पर से पूर्ववत् समच्छेदादि करके अन्तर्दशा समझना। एवं लग्नकी दशा में अन्तर्दशा पाचक क्रम से ल. र. गु.। तथा शुक्र की दशा में अन्तर्दशा क्रम से

शु.	बु.	गु.	म.
$\frac{१}{१}$	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{३}$	$\frac{१}{४}$

इनका समच्छेद करने से

शु.	बु.	गु.	मं.
$\frac{१२}{१२}$	$\frac{६}{१२}$	$\frac{४}{१२}$	$\frac{३}{१२}$

शुक्र की दशा के गुणक क्रम से १२।६।४।३ तथा इन सबों का योग २५ यह भाजक हुआ इनसे शुक्र की दशावर्षादि को गुना भाग द्वारा अन्तर्दशा जानना । इसी प्रकार अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा समझना । इस उदाहरण की कुण्डली देखिये-मङ्गल के साथ में या त्रिकोण, चतुरस्र, और सप्तम में कोई ग्रह नहीं है, इसलिये मङ्गल की समस्त दशा में मङ्गल ही अन्तर्दशापति भी होगा । इत्यादि श्लोकानुसार पुनः अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा भी समझना चाहिये ॥४॥

इसकी उपपत्ति यह है कि—यदि सब अंश योग में समस्त दशा प्रमाण तो पृथक् पृथक् अंश में क्या ? इसप्रकार त्रैराशिक से पृथक् पृथक् अन्तर्दशा प्रमाण $= \frac{\text{दशाप्रमा.} \times \text{पृअं}}{\text{अंशयो}}$ उपपन्न होता है ॥४॥

स्थानादिबलक्रम से दशा का नाम और शुभाशुभ फल—

सम्यग्बलिनः स्वतुङ्गभागे सम्पूर्णा बलवर्जितस्य रिक्ता ।
नीचांशगतस्य शत्रुभागे ज्ञेयाऽनिष्टफला दशा प्रसूतौ ॥५॥

सं०—प्रसूतौ (जन्मसमये) सम्यग्बलिनः (स्थान-कालादिसर्वबलोपपन्नस्य) स्वतुङ्ग भागे (स्वस्वपरमोच्चांशे) स्थितस्य ग्रहस्य सम्पूर्णा (पूर्णशुभफलदा नाम्नी) दशा ज्ञेया । बलवर्जितस्य (स्थानादिबलहीनस्य) नीचांशगतस्य, शत्रुभागे (स्वशत्रुनवांशे स्थितस्य) ग्रहस्य दशा रिक्ता (निष्फलनाम्नी) ज्ञेया, साऽनिष्टफलाऽधमफलप्रदा ज्ञेया ॥५॥

भा०—जन्म समय में जो ग्रह स्थानादि सब बलों से युक्त हो अपने परमोच्च में हो उस ग्रह की सम्पूर्णा नामकी दशा होती है । जिसमें सब प्रकार से शुभ फल होता है । तथा जो ग्रह स्थानादि सब बलों से हीन हो अपने परम नीच में हो या शत्रुनवांश में हो उस ग्रह की दशा रिक्ता नाम की होती वह सब प्रकार से अशुभ फल देती है ॥५॥

वि०—ग्रहों के मुख्यतया ४ प्रकार (स्थान, चेष्टा, काल और दिशा सम्बन्धी) बल होते हैं । इन चारो प्रकार के बल से युक्त होने पर सम्यग

बली कहलाता है। और चारों बल से रहित निर्बल कहलाता है। इससे सिद्ध होता है कि यदि चारो बल से युक्त होकर परमोच्च में हो तो सम्पूर्ण शुभ फल, ३ बल से युक्त हो तो ३ चरण, २ बल से युक्त हो तो २ चरण (आधा) और १ बल से युक्त हो तो १ चरण शुभ फल होता है। जैसे गार्गि का बचन—

"सर्वैर्बलैरुपेतस्य परमोच्चगतस्य च।
सम्पूर्णाख्या दशा ज्ञेया धनारोग्यविवर्धिनी ॥
स्वोच्चराशिगतस्याऽथ किञ्चिद्बल्युतस्य च।
पूर्णा नाम दशा ज्ञेया धनवृद्धिकरी शुभा ॥
सर्वैर्बलैर्विहीनस्य नीचराशिगतस्य च।
रिक्तानाम दशा ज्ञेया धनारोग्यविनाशिनी ॥
यः स्यात् परमनीचस्थस्तथा चारिनवांशके।
तस्यानिष्टफला नाम व्याध्यनर्थविवर्धिनी ॥ स्पष्टार्थ ॥५॥

भ्रष्टस्य तुङ्गादवरोहिसंज्ञा मध्या भवेत् सा सुहृदुच्चभागे।
आरोहिणी निम्नपरिच्युतस्य नीचारिभांशेष्वधमा भवेत्सा ॥६॥

सं०—तुङ्गात् (स्वस्वपरमोच्चात्) भ्रष्टस्य (अग्रगतस्य, अर्थादेव नीचात्पृष्ठस्थितस्य) ग्रहस्य अवरोहिसंज्ञा (अधोगतित्वादवरोहिणी नाम) दशा ज्ञेया, सा चावरोहित्वादशुभफलेत्यनुक्ताऽपि ज्ञेया। साऽवरोहिसंज्ञादशा सुहृदुच्चभागे स्थितस्य ग्रहस्य मध्या मध्यफलदा भवति। अथ निम्नपरिच्यु-तस्य (स्वपरमनीचादग्रगतस्य, स्वोच्चात्पृष्ठस्थस्य च) ग्रहस्य आरोहिणी (उच्चाभिमुखगतित्वादारोहिणीसंज्ञा) दशा सा च संज्ञानुसारतः शुभफला। सा आरोहिणीदशा नीचारिभांशेषु स्थितस्य ग्रहस्याधमा (अशुभफलदा) ज्ञेया। अर्थादेव-स्वमित्रराशिनवांशे स्थितस्य ग्रहस्येयमारोहिणी दशाऽति-शुभफला भवितुमर्हतीत्यनुक्तमपि ज्ञेयम् ॥६॥

आ०—जो ग्रह अपने परमोच्च भाग से आगे और नीच से पीछे हो उस ग्रह की दशा अवरोहिणी कहलाती है वह नीचाभिमुखगति होने के कारण अशुभ होती है। परञ्च ग्रह यदि मित्र राशिनवांश में हो वा अपनी उच्चराशि के नवांश में हो तो अवरोहिणी दशा भी मध्यम फल देने वाली होती है। तथा जो ग्रह अपने परम नीच से आगे और उच्च से पीछे हो उसकी दशा आरोहिणी कहलाती है, वह उच्चभिमुखगति होने के कारण शुभ होती है। परञ्च यदि नीच राशि के नवांश में वा शत्रुराशि नवांश में ग्रह हो तो आरोहिणी दशा भी अशुभ फल होती है। इससे सिद्ध होता है कि यदि ग्रह अपनी नवांश या उच्चराशि के नवांश में हो तो आरोहिणी दशा विशेष शुभप्रदा होती है ॥ ६ ॥

नीचारिभांशे समवस्थितस्य शस्ते गृहे मिश्रफला प्रदिष्टा।
संज्ञानुरूपाणि फलान्यथैषां दशासु वक्ष्यामि यथोपयोगम् ॥

सं०— नीचारिभांशे (नीचराशिनवांशे शत्रुनवांशे वा) शस्ते गृहे (शुभराशौ) समवस्थितस्य ग्रहस्य दशा मिश्रफला प्रदिष्टा कथिता। अथैषां ग्रहाणां दशासु यथोपयोगं यथाप्रकरणं संज्ञानुरूपाणि (संज्ञासदृशानि) फलानि वक्ष्येऽग्रे कथयिष्यामीत्यर्थः ॥ ७ ॥

भा०—जो ग्रह प्रशस्त (उच्च आदि) राशि में और नीच या शत्रु-राशि के नवांश में हो तो उसका मिश्र (शुभ अशुभ दोनो प्रकार का) फल होता है। अब आगे इसी प्रकार इन (लग्न सहित ग्रहो) के फल अपनी २ दशा में संज्ञा सदृश होते हैं वे यथोपयुक्त कहते हैं ॥ ७ ॥

वि०--भावार्थ यह है कि—राशि और नवांश दोनों की स्थिति से ग्रहों की दशा शुभ, मध्य या अशुभ समझकर फल कहना चाहिये ॥ जैसे भगवान् गार्गि का वचन—

"उच्चनीचान्तरस्थस्य दशा स्यादवरोहिणी।
तस्यामल्पमवाप्नोति फलं क्लेशाच्छुभं नरः॥

मित्रोच्चात्मांशकस्थस्य मध्या मध्यफला हि सा ।
नीचोच्चमध्यगस्योक्ता श्रेष्ठा चारोहिणी दशा ॥
सैवाधमाख्या भवति नीचराश्यंशगस्य तु ।" इत्यादि ॥७॥

लग्न की दशा में शुभाशुभता—

उभयेऽधममध्यपूजिता द्रेष्काणैश्चरभेषु चोत्क्रमात् ।
अशुभेष्टसमाः स्थिरे क्रमाद्धोरायाः परिकल्पिता दशा ॥८॥

सं०—उभये द्विस्वभावराशौ लग्ने द्रेष्काणैः क्रमेणाधममध्यपूजिताऽर्थात् प्रथमद्रेष्काणे लग्नदशाऽधमा, द्वितीयद्रेष्काणे मध्या, तृतीयद्रेष्काणे पूजिता शुभा होराया (लग्नस्य) दशा कल्पिता । चरभेषु लग्नगेषु चोत्क्रमात् वैपरीत्यादर्थात्प्रथमद्रेष्काणे पूजिता (श्रेष्ठा), द्वितीयद्रेष्काणे मध्या, तृतीयद्रेष्काणेऽधमा लग्नदशा ज्ञेया । स्थिरे स्थिरराशौ लग्नगे द्रेष्काणैः क्रमात्-अशुभेष्टसमा होराया दशाः कल्पिताः कथिताः । अर्थात् स्थिरलग्ने प्रथमद्रेष्काणेऽशुभा, द्वितीये इष्टा (शुभा), तृतीये समा मध्यफला दशा भवतीति ॥ ८ ॥

भा०—द्विस्वभावराशि लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण हो तो अशुभ, द्वितीय द्रेष्काण हो तो मध्यम, तृतीय द्रेष्काण हो तो शुभ फल देनेवाली लग्न की दशा होती है । चर लग्न में इसका उल्टा अर्थात् प्रथम द्रेष्काण में शुभ, द्वितीय द्रेष्काण में मध्यम, तृतीय द्रेष्काण में अशुभ फलप्रद लग्न दशा होती है । स्थिर लग्न में प्रथम द्रेष्काण में अशुभ, द्वितीय द्रेष्काण में श्रेष्ठ, तृतीय द्रेष्काण में लध्यम, फल देनेवाली लग्नदशा समझनी चाहिये ॥

अथ नैसर्गिक दशा समय कहते हैं--

एकं द्वौ नव विंशतिर्धृतिकृती पञ्चाशदेषां क्रमा-
च्चन्द्राऽऽरेन्दुज-शुक्र-जीव-दिनकृद्दैवाकरीणां समाः ।
स्वैः स्वैः पुष्टफला निसर्गजनितैः पक्तिर्दशाया भवे-
दन्ते लग्नदशा शुभेति यवना नेच्छन्ति केचित्तथा ॥९॥

सं०—एकं, द्वौ, नव, विंशतिः, धृति-कृती [धृतिरष्टादश, कृतिर्विंशतिः] पञ्चशत्,एताः क्रमाच्चन्द्रारेन्दुज-शुक्र-जीव-दिनकृद्दैवाकरीणां [चन्द्र-कुज-बुध-शुक्र-गुरु-रवि-शनैश्चराणां] समाः [नैसर्गिकदायवर्षाणि] भवन्ति । अथैतत्प्रयोजनं कथयति—पूर्वोक्ता दशायाः पक्तिः स्वैः स्वैः निसर्गजनितैः [एभिरनन्तरोक्तकालैः] मिलिता पुष्टफला भवेत् । कस्यापि ग्रहस्य पूर्वोक्त-दशासमये नैसर्गिकी दशाऽपि यदि स्यात् तदा सा [शुभा, अशुभा वा दशा] पुष्टफला भवतीत्यर्थः । अन्ते [शनैश्चरदशानन्तरम्] यावज्जीवनं लग्नदशा भवति । सा लग्नदशा 'सदा शुभा' इति यवनाः कथयन्ति । किन्तु केचित् यवनभिन्ना अन्ये आचार्याः] तथा [सदैव शुभा] इति नेच्छन्ति [न वदन्ति]। अर्थात् "उभयेऽधममध्यपूजिता" इत्यादिना शुभाऽशुभा मध्य-फला वा लग्नदशा भवितुमर्हतीति तेषामाशयः ॥६॥

भा०—जन्म समय से आरम्भ होकर १ वर्ष तक चन्द्रमा का, उसके बाद २ वर्ष मङ्गल का, उसके बाद ६ वर्ष तक बुध का, उसके बाद २० वर्ष तक शुक्र का, उसकेबाद १८ वर्ष तक गुरु का, उसके बाद २० वर्ष सूर्य का, उसके ५० वर्ष तक शनि का दाय काल होता है। इस प्रकार सातो ग्रह का १२० वर्ष पर्यन्त नैसर्गिक दशा होती। इससे अधिक जिसकी आयु होती है उसके लिये शनि के बाद जीवन पर्यन्त अन्त में लग्न की दशा होती है, वह शुभ होती है, ऐसा यवनों का कृथन है। परञ्च अन्य आचार्य का मत है कि अन्त में जो लग्न की दशा होती है वह सदा शुभ ही नहीं होती, अर्थात्, द्रेष्काण वश शुभ अशुभ दोनों हो सकती है ॥६॥

वि०—कोई कहते हैं कि "जब परमायु १२० वर्ष तक ही कही गई है तो, उसके बाद लग्न की दशा कैसे प्राप्त हो सकती" किन्तु ऐसा कहना असङ्गत है, क्योंकि सत्याचार्य आदि के मत से ग्रह स्थिति वश २०० से भी अधिक आयु हो सकती है। १२० वर्ष से अधिक कितने मनुष्य जीते देखे गये हैं। तथा कितने जन्तु २०० वर्ष से भी अधिक जीते हैं। उनको

नैसर्गिग दशा अन्त में लग्न की होगी। मान लिया जाय किसी मनुष्य के जन्म मीन लग्न के अन्तिम नवांश में हो और ग्रह भी अपने अपने उच्च में अथवा वक्र होकर किसी राशि के मीन नवांश में हो। परञ्च सूर्य न वक्र हो सकता है और न उच्च में मीन के नवांश में जा सकता है। इसलिये वह मेष के अन्तिम नवांश में हो, तथा सब ग्रह चक्र पूर्वार्ध में ही हो, और लग्न अपने स्वामी और गुरु बुध से वीक्षित युत हो तो इस हालत में सत्याचार्य के मत से सूर्य का आयुर्दाय त्रिगुणित करने से २७ वर्ष, और ग्रहों के वक्र होने तथा उच्च में रहने के कारण १२, १२ वर्ष के त्रिगुणित ३६, ३६ वर्ष आयुर्दाय होंगे, तथा लग्न मीन के नवांश में होने के कारण १२ वर्ष तथा बलयुत होने के कारण और राशि तुल्य १२ वर्ष एवं लग्नायु २४ वर्ष, सब का योग=सूर्य २७ + चन्द्र ३६ + मङ्गल ३६ + बुध ३६ + गुरु ३६ + शुक्र ३६ + शनि ३६ + लग्न २७= २६७ वर्ष आयुर्दाय हुआ। इसलिये "अन्ते लग्न दशा" यह कहना सङ्गत ही है॥

दशारम्भ कालिक लग्न और ग्रहस्थिति से शुभाशुभ फल—

पाकस्वामिनि लग्नगे सुहृदि वा वर्गेऽस्य सौम्येऽपि वा
प्रारब्धा शुभदा दशा त्रिदशषड्लाभेषु वा पाकपे।
मित्रोच्चोपचयत्रिकोणमदने पाकेश्वरस्य स्थित-
श्चन्द्रः सत्फलबोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथा॥१०॥

सं०—पाकस्वामिनि [दशापतौ] लग्नगे, वा अस्य पाकपस्य सुहृदि [मित्रे] वाऽस्य वर्गे अपि वा सौम्ये वर्गे लग्नगे सति अपि वा पाकपे लग्नात् त्रिदशषड्लाभेषु स्थिते प्रारब्धा [तत्समये प्रवृत्ता] दशा शुभदा भवति। अथ प्रत्यहं चारवेशने चन्द्रो यदि पाकेश्वरस्य मित्रोच्चोपचयत्रिकोणमदने स्थितस्तदा सत्फलबोधनानि कुरुते। अतोन्यथा [पाकेश्वरस्योक्तस्थानतोऽन्यस्थानेषु नीचादिषु स्थितश्चन्द्रः] पापानि [अशुभ फलानि] कुरुते॥

भा०—पाकस्वामी (दशापति) यदि लग्न में हो, अथवा दशापति के मित्र लग्न में हो, अथवा पाकपति के या उसके मित्र के वर्ग (राशि होरादि) या शुभ वा शुभग्रह के वर्ग (राशि होरादि) लग्न में हो, अथवा शुभमित्र के वर्ग में दशापति हो, तथा लग्न से ३,६,१०,११ स्थान में दशापति हो तो ऐसे समय (लग्न) में आरम्भ हुई दशा शुभफल देनेवाली होती है । इससे अन्यथा स्थानादि वश मध्य फल वा अशुभ फल देनेवाली दशा होती है। चन्द्रमा प्रतिक्षण सञ्चारवश जब जब दशापति के मित्रराशि, उच्चराशि या दशापति से उपचय (३,६,१०,११) स्थान में जाता है तब तब शुभ-फल देता है । अन्यथा (अर्थात् जब दशापति के शत्रु नीच राशि में तथा उपचय से भिन्न स्थान में चन्द्रमा जाता है तब) अशुभ फल करता है ॥

वि०—जिस समय दशा आरम्भ हो उस समय में स्पष्ट ग्रह और लग्न साधन करके इस प्रकार दशा के शुभाशुभ फल समझना चाहिये । दशा-रम्भ समय जानने का सयुक्तिक प्रकार और स्पष्ट उदाहरण–'केशवीय-जातक पद्धति' की मेरी टीका (सर्वमनोरमा) में देखिये । ग्रन्थ विस्तर भय से यहाँ नहीं लिखता हूँ । दशावर्षादि सावन मान से ग्रहण किया जाता है । यथा भगवान् गार्गि का वचन —

"आयुर्दायविभागश्च　　प्रायश्चित्तक्रियास्तथा ।
सावनेनैव　कर्तव्या　सत्राणामप्युपासनम् ॥" स्पष्टार्थ ॥

प्रथमदशापति की दशा जन्मसमय से ही आरम्भ होती है । इसलिये जन्मकालिक ग्रह और लग्नादि भाव ही दशारम्भकालिक भी होते हैं । उसके बाद अन्य ग्रहों के दशान्तर्दशारम्भ समय जान करके ही उक्तरूप से फल विचारकर कहना चाहिये । जैसे दर्शित उदाहरण में, प्रथम सूर्य की दशा है । जन्मकालिक लग्न ही दशारम्भ कालिक लग्न हुआ । अब सूर्य की दशा कैसी होगी यह विचार करना है तो, जन्मलग्नकुण्डली देखिये । यहाँ दशापति सूर्य अपने मित्र राशि में पड़ा है इसलिये "पाकस्वामिनि लग्नगे" इसके अनुसार सूर्य की दशा जातक के लिये अत्यन्त शुभ फल

देनेवाली सिद्ध हुई। अर्थात् जन्म समय से सूर्य की दशा (६।१।२२।१२।) पर्यन्त जातक को सब प्रकार से सुख की प्राप्ति होगी ऐसा सिद्ध होता है। तथा चन्द्रमा जन्म समय दशापति के उच्च में है अतः यह (जन्मका) समय जातक के लिये अत्यन्त शुभावह हुआ। इस प्रकार आगे भी चन्द्रमा जिस जिस समय सूर्य के मित्र राशि उच्च राशि या उपचय स्थान में प्राप्त होगा उस उस समय में विशेष रूप से सुख लाभ समझना। वहाँ चन्द्रमा जिस राशि में हो वह जन्म समय जिस भाव में पड़ा हो उस भाव सम्बन्धी शुभ फल कहना चाहिये। जिस समय चन्द्रमा सूर्य से अशुभ (अनुपचय-शत्रु-नीचादि) स्थान में पड़े वह चन्द्र स्थान जन्म समय जिस भाव में हो उस भाव सम्बन्धी अशुभ फल उस समय जातक का समझना चाहिये॥ यथा गार्गि—

"यद्राशिसंस्थः शीतांशुः शुभकृत् परिकीर्तितः।
स राशिर्जन्मकाले तु यो भावस्तत्कृतं च तत्॥
शरीरादिकृतं सौख्यं वक्तव्यं बल्योगतः।
अनिष्टराशिसंस्थस्तु तद्भावानामशोभनः॥" इति॥

दशारम्भ कालिक चन्द्रराशि वश दशा के शुभाशुभ फल—

प्रारब्धा हिमगौ दशा स्वगृहगे मानार्थसौख्यावहा
कौजे दूषयति श्रियं बुधगृहे विद्यासुहृद्वित्तदा।
दुर्गारण्यपथालये कृषिकरी सिंहे सितर्क्षेऽन्नदा
कुसीदा मृगकुम्भयोर्गुरुगृहे मानार्थसौख्यावहा॥११॥

सं०—हिमगौ चन्द्रे स्वगृहगे [कर्कस्थे] प्रारब्धा प्रविष्टा दशा मानार्थ-सौख्यावहा भवति। कौजे [कुजराशौ मेषे वृश्चिके वा] स्थिते चन्द्रे प्रारब्धा दशा श्रियं दूषयति [दोषयुक्तां करोति]। बुधगृहे [मिथुने, कन्यायां वा] स्थिते चन्द्रे प्रारब्धा दशा विद्यासुहृद्वित्तदा भवति। सिंहे स्थिते चन्द्रे प्रविष्टा दशा दुर्गारण्यपथालये कृषिकरी भवति।

(वृषे तुलायां वा) स्थिते चन्द्रे प्रविष्टादशा अन्नदा (मधुरादिभोज्यप्रदा) भवति। मृगकुम्भयोः स्थिते चन्द्रे कुस्त्रीदा (कुत्सितस्त्रीसङ्गमकारिणी) भवति। गुरुगृहे (धनुषि मीने वा) स्थिते चन्द्रे प्रारब्धा दशा मानार्थसौख्यावहा भवति ॥

भा०—दशारम्भ काल में चन्द्रमा कर्क में हो तो उस दशा में मान (आदर) धन और सब प्रकार के सुख होते हैं। मङ्गल के घर (मेष या वृश्चिक) में चन्द्रमा हो तो स्त्री में दोष (क्लेश या अपवाद) होता है। मिथुन या कन्या में चन्द्रमा हो तो विद्या, मित्र और धन का लाभ होता है। सिंह में चन्द्रमा हो तो उस दशा-समय में दुर्ग, जङ्गल, मार्ग, और घर के समीप भी खेती करने से लाभ होता है। शुक्र की राशि (वृष, तुला) में चन्द्रमा हो तो अन्न (सुभोजन आदि) का लाभ होता है। मकर या कुम्भ में चन्द्रमा हो तो दुष्ट स्त्री से सङ्ग होता है, और गुरु राशि (धनु, मीन) में चन्द्रमा हो तो प्रारम्भ हुई दशा में मान, धन और सुख का लाभ होता है ॥

सूर्य के शुभाशुभ दशाफल—

सौर्यां स्वं नखदन्तचर्मकनकक्रौर्याध्वभूपाहवै-
स्तैक्ष्ण्यं धैर्यमजस्रमुद्यमरतिः ख्यातिः प्रतापोन्नतिः ।
भार्यापुत्रधनारिशस्त्रहुतभुग्भूपोद्भवा व्यापद-
स्त्यागी पापरतिः स्वभृत्यकलहो हृत्क्रोडपीडामयाः ॥१२॥

सं० — सौर्य्यां (सूर्यदशायां) उत्कृष्टायां नख-दन्त-चर्म-कनक-क्रौर्याध्व-भूपाहवैः (नखं सुगन्धिद्रव्यं, नखो व्याघ्रादिकरजो वा "नखं पुनर्गन्धद्रव्यं, नखः करज-षण्डयोः" इति हेमः । चर्म मृगादीनां, कनकं सुवर्णं, क्रौर्यं क्रूर-कर्म, अध्वा मार्गः, भूपो राजा, आहवः संग्रामः, एतैः) स्वं धनं प्राप्नोति । तथा तैक्ष्ण्यं कठोरत्वं, धैर्यं, अजस्रं सततं उद्यमरतिः, ख्यातिः कीर्तिः, प्रतापोन्नतिश्च भवति । अपकृष्टसूर्यदशायान्तु—भार्यापुत्रधनारिशस्त्रहुतभुग्भूपोद्भवा व्यापदो विपत्तयो भवन्ति । त्यागः, पापरतिः, स्वभृत्यकलहो हृत्क्रोडपीडामया हृदये उदरे, आमया रोगा भवन्ति ॥ १२ ॥

भा०—शुभ स्थानस्थित सूर्य की दशा अन्तर्दशा में नख (सुगन्धि द्रव्य वा व्याघ्र नख), हाथी के दाँत, मृग व्याघ्रादि चर्म, सोना, क्रूरकर्म, मार्ग (राजमार्ग बनवाने का अधिकार), राजा और सङ्ग्राम से धन का लाभ होता है। तथा हृदय में कठोरता, धैर्य, सतत उद्योग में प्रेम, कीर्ति और प्रताप की वृद्धि होती है। अशुभ स्थान में सूर्य हो तो स्त्री, पुत्र, धन, शत्रु, शस्त्र, अग्नि और राजा से अनेक प्रकार की आपत्ति होती है। एवं त्याग (अधिक खर्च) पाप में प्रेम, अपने नौकरों से कलह और हृदय पेट में पीड़ा और रोग होता है। अर्थात् जब सूर्य मध्यम स्थान में हो तो उसकी दशा में (अर्थात् मिश्र दशा में) मिश्र (शुभ-अशुभ दोनों) फल होते हैं ॥ १२ ॥

जैसे दर्शित उदाहरण में—सूर्य और शुक्र उच्च में हैं तथा ये दोनों अपने अपने उच्चांश से पीछे हैं इसलिये आरोहिणी दशा हुई अतः इन दोनों की दशा अत्युत्तम फल देनेवाली होगी। एवं मङ्गल अपने उच्च से आगे और नीच के पीछे है अतः अवरोहिणी नाम की दशा हुई, तथा मङ्गल सम के स्थान में है इसलिये मङ्गल की दशा साधारण रूप से अशुभ फल को ही देगी। इसी प्रकार और ग्रहो का विचार करना ॥१२॥

चन्द्रमा के शुभाशुभ दशाफल—

इन्दोः प्राप्य दशां फलानि लभते मन्त्रद्विजात्युद्भवा-
नीक्षुक्षीरविकारवस्त्रकुसुमक्रीडातिलान्नश्रमैः ।
निद्रालस्यमृदुद्विजामररतिः स्त्रीजन्ममेधाविता
कीर्त्यर्थोपचयक्षयौ च बलिभिर्वैरं स्वपक्षेण च ॥१३॥

सं०—'जनः' इन्दोः (चन्द्रस्य) दशां प्राप्य मन्त्रद्विजात्युद्भवानि (मन्त्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च) फलानि लभते, अत्रापि शुभदशायां शुभं फलं, अशुभदशायामशुभमित्यनुक्तमप्यूह्यम्। तथा इक्षु-क्षीरविकारवस्त्रकुसुम-क्रीडा-तिलान्न-श्रमैश्च फलानि लाभालाभरूपाणि लभते। तथा निद्रालस्यमृदुद्वि-

जामररतिस्त्रीजन्ममेधाविताः, कीर्त्यर्थोपचयक्षयौ, बलिभिः 'शत्रुवर्गैः', स्वपक्षेण स्वबन्धुवर्गेण च सह वैरं शत्रुतां लभते । अत्र– अशुभदशायां निद्रालस्ये, कीर्त्यादिक्षयाद्यशुभफलं, तथा शुभचन्द्रदशायां–द्विजामररतीत्यादिशुभफलं लभते, इति विभज्योहनीयम् ॥१३॥

भा०—चन्द्रमा की दशा अन्तर्दशा समय में मन्त्र (आगम और निगमोक्त) द्वारा तथा ब्राह्मणों के द्वारा फल लाभ, तथा गुड़, चीनी, दूध, दही, घृत, वस्त्र, पुष्परस, जूआ आदि खेल, तिल अन्न और श्रम से भी शुभ अशुभ फल मिलता है । निद्रा, आलस्य, दया, देव ब्राह्मणों में प्रेम, कन्या का जन्म, बुद्धि में वृद्धि, कीर्ति और धन का उपचय (वृद्धि) तथा क्षय, बलवान् शत्रु और आत्मीय जनों से भी शत्रुता होती है ॥१३॥

वि०—इसमें जो शुभ फल कहे गये हैं वे शुभस्थान स्थित बली चन्द्रमा की दशा में, और जितने अशुभ फल कहे गये हैं वे अनिष्ट स्थान स्थित क्षीण चन्द्र की दशा में समझना ॥१३॥

मङ्गल के शुभाशुभ दशा फल—

भौमस्यारिविमर्दभूपसहजक्षित्याविकाजैर्धनं
प्रद्वेषः सुतदारमित्रसहजैर्विद्वद्गुरुद्वेष्टृता ।
तृष्णासृग्ज्वरपित्तभङ्गजनिता रोगाः परस्त्रीष्टता ।
प्रीतिः पापरतैरधर्मनिरतिः पारुष्यतैक्ष्ण्यानि च ॥१४॥

सं०—शुभस्थानस्थितस्य भौमस्य 'दशायां' अरिविमर्द-भूपसहज-क्षित्याविकाजैर्धनं भवति । अनिष्टस्थानस्थितस्य भौमस्य दशायान्तु सुतमित्रदारसहजैः सह प्रद्वेषः शत्रुता, विद्वद्गुरुद्वेष्टृता (विद्वत्सु गुरुजनेषु च द्वेषः) तृष्णासृग्ज्वरपित्तभङ्गजनिता रोगा भवन्ति । परस्त्रीष्टता (परस्त्रीभिः इष्टता मित्रता) पापरतैर्जनैः प्रीतिः, पारुष्यतैक्ष्ण्यानि (पारुष्यं, कटुवाक्यतादिकं, तैक्ष्ण्यमुग्रस्वभावत्वमित्यादीनि) भवन्ति । अर्थादेव मिश्रस्थानस्थितकुजदशायां मिश्रफलं ज्ञेयमिति ॥१४॥

भा०—मङ्गल की शुभ दशा में शत्रुओं को पराजित करके, तथा राजा, सहोदर, भूमि, भेंड़, बकरे आदि से धन मिलता है। अशुभ मङ्गल की दशा में पुत्र, मित्र, स्त्री, सहोदर से द्वेष, विद्वान् और गुरुजनों में अभक्ति, तृष्ण, शोणितविकार, ज्वर, पित्त, अङ्गभङ्ग आदि जन्य रोग, परस्त्री से मैत्री, पापियो से प्रेम, अधर्म में प्रवृत्ति, कठोरता, और उग्रता होती है। मध्यम स्थान स्थित मङ्गल की दशा में मध्यम (दोनों प्रकार का) फल समझना ॥१४॥

शुभाशुभ बुध दशाफल—

बौध्यां दौत्यसुहृद्गुरुद्विजधनं विद्वत्प्रशंसायशो-
युक्तिद्रव्यसुवर्णवेसरमहीसौभाग्यसौख्याप्तयः।
हास्योपासनकौशलं मतिचयो धर्मक्रियासिद्धयः
पारुष्यं श्रमबन्धमानसशुचः पीडा च धातुत्रयात् ॥१५॥

सं०—शुभायां बौध्यां बुधदशायां दौत्य-सुहृद्-गुरु-द्विजधनं (दौत्येन दूतत्वेन कर्मणा, सुहृद्भ्यः, गुरुभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च धनं) अर्थलाभो भवति। विद्वत्प्रशंसायशोयुक्तिद्रव्यसुवर्णवेसर-महीसौभाग्यसौख्याप्तयो (युक्तिद्रव्यं कांस्यादि, वेशरोऽश्वविशेषः, अन्यत् स्पष्टम्) भवन्ति। हास्योपासनकौशलं, मतिचयः, धर्मक्रियासिद्धयश्च भवन्ति। अशुभस्थानस्थबुधदशायां पारुष्यं, श्रमबन्धमानसशुचो भवन्ति, धातुत्रयात् (कफपित्तवातदोषात्) पीडा च भवति ॥ १५ ॥

भा०—शुभस्थानस्थ बुध दशा में दूतक्रिया से, मित्र, गुरुजन और ब्राह्मणो के द्वारा धन लाभ, विद्वानों के द्वारा प्रशंसा, सुयश, कांसा पित्तलादि द्रव्य, सुवर्ण, घोड़े, पृथ्वी, सौभाग्यवृद्धि, और सब प्रकार के सुख की प्राप्ति होती है। दूसरों के मनोरञ्जन और उपासना (सेवा) में कुशलता, बुद्धि की वृद्धि, और धर्मकार्य में सिद्धि होती है। अशुभस्थानस्थ बुधदशा में कठोरता, परिश्रम, बन्धन, मानस शोक, और कफ, पित्त, वातजन्य पीड़ा होती है ॥

शुभाशुभ गुरुदशाफल—

जैव्यां मानगुणोदयो मतिचयः कान्तिः प्रतापोन्नति-
र्माहात्म्योद्यममन्त्रनीतिनृपतिस्वाध्यायमन्त्रैर्धनम् ।
हेमाश्वात्मजकुञ्जराम्बरचयः प्रीतिश्च सद्भूमिपैः
सूक्ष्मम्योहादुगहनश्रमः श्रवणरुग्वैरं विधर्माश्रितैः ॥१६॥

सं०—'शुभायां' जैव्यां (जीवदशायां) मानगुणोदय-, मतिचयः, कान्तिः प्रतापोन्नतिर्भवति । माहात्म्योद्यममन्त्रनीतिनृपति-स्वाध्यायमन्त्रैर्धनं भवति । हेमाश्वात्मजकुञ्जराम्बरचयः, सद्भूमिपैः प्रीतिश्च भवति । अशुभायां गुरुदशाया—सूक्ष्म्योहात् (सूक्ष्मे विषये ऊहस्तर्कस्तस्मात्) गहनश्रमः (कठिनपरिश्रमः) श्रवणरुक् (कर्णरोगः) विधर्माश्रितैर्जनैः सह वैरं च भवति ॥ १६ ॥

भा०—शुभस्थानस्थित गुरु की दशा में लोक में सम्मान और गुणों की वृद्धि, बुद्धि में वृद्धि, कान्ति, पराक्रम से उन्नति, महत्त्व (परोपकारित्व), उद्योग, मन्त्र (सद्विचार), नीति राजा, पाठ और मन्त्र जप के द्वारा धन लाभ होता है । सुवर्ण, वस्त्र. घोड़ा, हाथी, और पुत्र इन सबों की वृद्धि, राजा से प्रीति होती है । अशुभ गुरु की दशा में सूक्ष्मविषयों के विचार में तर्क करने से परिश्रम, कर्णरोग और अधर्मियों से प्रीति होती है ॥१६॥

शुभाशुभ शुक्रदशाफल —

शौक्रयां गीतरतिप्रमोदसुरभिद्रव्यान्नपानाम्बर-
स्त्रीरत्नद्युतिमन्मथोपकरणज्ञानेष्टमित्रागमाः ।
कौशल्यं क्रयविक्रये कृषिनिधिप्राप्तिर्धनस्यागमो
वृन्दोर्वीशनिषादधर्मरहितैर्वैरं शुचः स्नेहतः ॥ १७ ॥

सं०—'शुभायां' शौक्रयां (शुक्रदशायां) गीतरतिप्रमोदसुरभिद्रव्यान्न-पानाम्बरस्त्रीरत्नद्युतिमन्मथोपकरणज्ञानेष्टमित्रागमा भवन्ति । क्रयविक्रये

कौशल्यं, कृषिनिधिप्राप्तिः, धनस्यागमो भवति। 'अशुभशुक्रदशायां' वृन्दोर्वीशनिषादधर्मरहितैः (वृन्देन जनसमूहेन, उर्वीशेन राज्ञा, निषादेन व्याधेन, धर्मरहितैः पापिभिश्च) वैरं, स्नेहतः शुचः शोका भवन्ति ॥ १७ ॥

भा०—शुभस्थानस्थित शुक्र की दशा में गीत में आसक्ति होने से हर्ष, सुगन्धित द्रव्य, सुभोजन, पान (पेयपदार्थ), वस्त्र, स्त्री, रत्न, कान्ति (सौन्दर्य), सुरतोपभोग्य (शय्यादि) ज्ञान और इष्ट मित्रों का समागम होते हैं। क्रयविक्रय में पटुता, खेती से लाभ, निधि (भूमिस्थ द्रव्य) की प्राप्ति, अन्य प्रकार से भी धन का लाभ होता है। और अशुभ स्थान स्थित शुक्र की दशा में जनसमूह, राजा, निषाद (अन्त्यज-चाण्डालजाति) और अधर्मियों के साथ वैर तथा स्नेह करने के पश्चात् उससे शोक होता है ॥१७॥

शुभाशुभ शनिदशाफल—

सौरीं प्राप्य खरोष्ट्रपक्षिमहिषीवृद्धाङ्गनावाप्तयः
श्रेणीग्रामपुराधिकारजनिता पूजा कुधान्यागमः।
श्लेष्मेर्ष्यानिलकोपमोहमलिनव्यापत्तितन्द्राश्रमान्
भृत्यापत्यकलत्रभर्त्सनमपि प्राप्नोति च व्यङ्गताम् ॥१८॥

सं०—'शुभां' सौरीं (सूरस्यापत्यं सौरिः शनिस्तस्येयं सौरी तां) शनैश्चरदशां प्राप्य 'जनस्य' खरोष्ट्रपक्षिमहिषीवृद्धाङ्गनावाप्तयो भवन्ति। श्रेणीग्रामपुराधिकारजनिता पूजा (सत्कृतिः), कुधान्यागमः (कुधान्यानां कोद्रवाद्यन्नानामागमो लाभः) भवति। अशुभशनिदशायान्तु—श्लेष्मेर्ष्यानिलकोपमोहमलिनव्यापत्तितन्द्राश्रमान्, भृत्यापत्यकलत्रभर्त्सनं, व्यङ्गतां (अङ्गभङ्गत्वं च) प्राप्नोति ॥ १८ ॥

भा०—शुभस्थानस्थित शनि की दशा में गदहा ऊँट, पक्षी, भैंस, वृद्धा स्त्री का सङ्ग, जन समाज, गाँव, नगर (शहर) के अधिकार से आदर, और कोदो, मडुआ, बाजरा आदि कुधान्य की प्राप्ति होती है। अशुभ शनि की दशा में कफ, ईर्ष्या, वायु प्रकोप, मोह, मलिनता से विपत्ति, तन्द्रा,

श्रम, तथा नौकर, सन्तान, और स्त्री से भी अनादर, तथा अङ्गभङ्गता की प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥

शुभाशुभ फल प्राप्ति समय के विभाग कहते हैं—

दशासु शस्तासु शुभानि कुर्वन्त्यनिष्टसंज्ञास्वशुभानि चैवम् ।
मिश्रासु मिश्राणि दशाफलानि होराफलं लग्नपतेः समानम् ॥ १९ ॥

सं०—"सम्यग्बलिनः स्वतुङ्गभागे" [श्लो० ५] इत्यादिप्रतिपादितासु शस्तासु दशासु ग्रहाः शुभानि (उक्तफलेषु यानि शुभफलानि तानि) कुर्वन्ति । अनिष्टसंज्ञासु चैवं 'यानि' अशुभानि तानि प्रयच्छन्ति । मिश्रासु (मध्यासु) दशासु मिश्राणि (उभयफलानि) कुर्वन्ति । होराफलं (लग्नदशाफलं) तु लग्नपतेः समानं (लग्नपतिः शुभस्थानगश्चेत् तदा शुभम्, अशुभस्थानगश्चेदशुभं) फलं ज्ञेयम् ॥ १६ ॥

भा०—ऊपर ग्रहों के शुभाशुभ दशा फल जो कहे गये है, उनमें ग्रह अपनी शुभ दशा में शुभ फल, अशुभ दशा में अशुभ फल देते हैं । मध्यम दशा में मिश्र (शुभ अशुभ दोनों) फल देते हैं । क्योंकि दशा के संज्ञानुरूप ही फल होते हैं । और लग्न दशा का फल लग्नेश के स्थिति वश समझना । अर्थात् लग्न शुभ स्थान में हो तो शुभ, अशुभ स्थान में हो तो अशुभ फल होता है ॥ १६ ॥

और कौन कौन फल दशासमय में विचार करना उसे कहते हैं—

संज्ञाऽध्याये यस्य यद्द्रव्यमुक्तं कर्माजीवो यश्च यस्योपदिष्टः ।
भावस्थानालोकयोगोद्भवं च तत्तत्सर्वं तस्य योज्यं दशायाम् ॥ २० ॥

सं०—संज्ञाध्याये यस्य ग्रहस्य यद्द्रव्यं ("ताम्रं स्यान्मणि हेम" इत्यादिना) उक्तं प्रतिपादितं, यस्य यः कर्माजीवः (वक्ष्यमाणः "अर्थाप्तिः" इत्यादिकः) प्रदिष्टः, तथा च भावस्थानालोकयोगोद्भवं यद्यत् फलं यस्य प्रदिष्टं, तत्तत् सर्वं फलं तस्य ग्रहस्य दशायां योज्यम् । शुभदशायां तत्तद्द्रव्यादिकस्य वृद्धिः, अशुभदशायां हानिरिति स्वबुद्धया सर्वमूहनीयम् ॥ २० ॥

भा०—पूर्व संज्ञाध्याय में जिस ग्रह के जो जो द्रव्यादिक कहे गये हैं तथा जिस ग्रह के जो कर्माजीव आगे कहे जायंगे, एवं जिस ग्रह के भाव और स्थान सम्बन्धी दृष्ट और योग के फल जो कुछ कहे जायंगे वे सब ग्रह की दशा में ही समझना चाहिये। अर्थात् जब ग्रह की शुभ दशा होती है तब उन द्रव्यादि और जीविका आदि का लाभ तथा अशुभ दशा में उसकी हानि होती है ॥२०॥

जिसका जन्मसमय अज्ञात हो उसकी ग्रहदशा का ज्ञान प्रकार—

छायां महाभूतकृताश्च सर्वेऽभिव्यञ्जयन्ति स्वदशामवाप्य।
कम्ब्वग्निवाय्वम्बरजान्गुणांश्च नासास्यदृक्त्वक्छ्रवणानुमेयान् २१

सं०—सर्वे ग्रहाः स्वदशामवाप्य महाभूतकृतां (स्वस्वपृथिव्यादिपञ्चमहाभूतसम्बन्धिनीं) छायां (शरीरकान्तिं) अभिव्यञ्जयन्ति प्रकटीकुर्वन्ति। तथा नासाऽऽस्य-दृक्-त्वक्-श्रवणानुमेयान् 'क्रमेण' कम्ब्वग्निवाय्वम्बरजान् गुणांश्चाभिव्यञ्जयन्ति। सर्वेषां शरीरं पञ्चमहाभूतात्मकं, तत्र शिखिभूखपयोमरुद्गणानां वशिनो भूमिसुतादयः क्रमेणेतिसंज्ञाध्याये कुजादीना तत्त्वानि प्रतिपादितानि, रवेश्चाग्निः,चन्द्रस्य च जलं महाभूतम्। अतो रवि-मङ्गलयोः शुभदशासमये शरीरस्थाग्नितत्त्वस्य शुभत्वं, अशुभदशाकाले त्वशुभत्वमिति सर्वेषां शरीरस्थतत्त्वाना शुभाशुभफलानि तत्तद्ग्रहदशासमये ज्ञेयानि। तथा च–पृथ्वीतत्त्वस्य गुणो गन्धः स च नासानुमेयः, पृथ्वीतत्त्वाधिपतिर्बुधः, अतो यस्मिन् समये सद्गन्धेन सुखप्राप्तिस्तस्मिन् समये बुधस्य शुभदशा, यस्मिन् समये दुर्गन्धप्राप्त्या कष्टानुभवस्तस्मिन् समये बुधस्याशुभदशा विद्यते इत्यनुमेयम्। रूपेण सुखदुःखानुभवस्तदा रवेर्मङ्गलस्य वा दशा, स्पर्शेन सुखदुःखानुभवस्तदा शनैः, शब्देन सुखदुःखानुभवे गुरोः, रसेन सुखदुःखानुभवे शुक्रस्य चन्द्रस्य वा दशान्तर्दशासमयो ज्ञेयः ॥२१॥

भा०—सब ग्रह अपनी अपनी दशा में अपने अपने महाभूत (तत्त्व) सम्बन्धिनी छाया (मुखादि शारीरिक कान्ति) को प्रकट करते हैं। तथा–

नाक, मुख, दृष्टि, त्वचा और कान के द्वारा ग्राह्य क्रम से पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और आकाश के गुण (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, और शब्द) को भी अपनी अपनी दशा में प्रकट करते हैं ॥२१॥

वि०—भाव यह है कि संज्ञाध्याय में जिन ग्रहों के "शिखिभूखपयोमरुद्" इत्यादि जो महाभूत (तत्त्व) कहे गये हैं उनकी छाया (तत्तदङ्ग-शोभा) को और उन तत्त्वों के गुणों को भी अपनी अपनी दशा में प्राप्त करते हैं। जैसे रवि और मङ्गल का महाभूत अग्नि है, और अग्नि की छाया नेत्र है तथा उसका गुण रूप है। इसलिये शुभद रवि या मङ्गल की दशा अन्तर्दशाकाल में नेत्र में निरोगता और अच्छे अच्छे रूप के दर्शनों से सुख होते हैं। एवं बुध का तत्व पृथ्वी है, उसकी छाया नाक की शोभा है तथा गुण गन्ध है, इसलिये बुध की शुभदशा में नाक की शोभा, निरोगता रहती है तथा अच्छे सुगन्धि द्रव्य के लाभ से सुख होता है। और गुरु का तत्त्व आकाश है उसकी छाया कान की कान्ति है और गुण शब्द है इसलिये गुरु की शुभ दशा में कान निरोग और अच्छे अच्छे शब्द सुनने से सुख। अशुभ दशा में कान में रोग और दुःशब्द से क्लेश होता है। एवं शुक्र और चन्द्र का महाभूत जल है उसकी छाया (मुख जिह्वा) है और गुण रस है अतः शुक्र और चन्द्र की शुभ दशा में मुख में स्वच्छता और अनेक प्रकार के सुरस भोजन से सुख होता है। अशुभ दशा में मुख में रोग और कुरस भोजन से क्लेश होता है। तथा शनि का महाभूत वायु है, उसका गुण स्पर्श है तथा छाया (त्वचा की कान्ति) है अतः शनि की दशा अन्तर्दशा समय में त्वचा की शोभा बढ़ती है और उत्तम स्पर्श (माला, दुकूलवस्त्र, भूषण युवती इत्यादि) से सुख होता है। अशुभ दशा में चर्म रोग और दुःस्पर्श (शस्त्रादि घात) से दुःख होता है। इसलिये जिन की जन्मकुण्डली हो उनकी ग्रह दशा समझ कर तत्तत् कालमें उक्तफल कहना। और जिनका जन्म समय अज्ञात हो उनकी उक्त फल की प्राप्ति से तत्कालिक ग्रहदशा का अनुमान करना। जो स्वयं आगे श्लोक में कहते हैं ॥२१॥

अन्तरात्मा का रूप और निर्बल ग्रहों के फललाभ प्रकार—

शुभफलददशायां तादृगेवान्तरात्मा
बहु जनयति पुंसां सौख्यमर्थागमश्च ।
कथितफलविपाकैस्तर्कयेद्वर्तमानां
परिणमति फलाप्तिः स्वप्नचिन्तास्ववीर्यैः॥२२॥

सं०—शुभफलददशायां अन्तरात्मा तादृगेव (तथा शुभफलदो भूत्वा) पुंसां जनानां बहु सौख्यं, अर्थागमं च जनयति । अर्थादेवाशुभदशायां तादृक् (अशुभो भूत्वा) बहु दुःखं धनहानिश्च जनयति । मिश्रदशायां मिश्रफलं जनयतीति । अथ यस्य जन्मसमायो न ज्ञातस्तस्य—कथितफलविपाकैः (उपर्युक्तफलपरिणामैः) वर्तमानां दशां तर्कयेत् जानीयात् । अथ निर्बलग्रहदशाफलप्राप्तिमाह – अवीर्यैः (बलरहितैर्दशापतिभिः) फलाप्तिः उक्तफलप्राप्तिः स्वप्नचिन्तासु परिणमति (स्वप्ने, चिन्तायां वाऽनुभूयते इत्यर्थः) ॥२२॥

भा०—शुभप्रद ग्रह की दशा में अन्तरात्मा (स्वहृदयस्थ ईश्वर) भी उसी प्रकार (शुभ होकर) मनुष्यों को सब प्रकार के सुख और धन लाभ कराते हैं । "अब जिसका जन्म समय अज्ञात हो उसकी दशा समझने की रीति कहते हैं"—जिस ग्रह के जो फल कहे गये हैं, उन फलों से ग्रह की वर्तमान दशा का अनुमान करना चाहिये । तथा जो ग्रह निर्बल रहता है उसका दशाफल (शुभ वा अशुभ) स्वप्न में अथवा चिन्ता (मनोरथ करने) में प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

जैसे—किसी को वर्तमान समय में नित्य अच्छे भोजन मिल रहे हैं । तो यहाँ अनुमान करना चाहिये कि रस जल का गुण है और जल शुक्र का तत्त्व है इसलिये इस समय शुक्र की दशा वर्तमान है । इत्यादि । एवं मान लो कि किसी को—शत्रु स्थान स्थित पापग्रह की अवरोहिणी दशा है, वह ग्रह प्रबल है तो उसे सर्वथा हानि और क्लेश होगा । यदि अच्छे स्थान स्थित ग्रह की आरोहिणी नामक शुभ अन्तर्दशा प्राप्त हो जाय तो उसे उस

निर्बल ग्रह कृत शुभ दशा फल स्वप्न में या. मनोरथ करने ही में मिल जायगा। जैसे इसका दृष्टान्त है कि-एक आदमी को प्रबल अशुभ ग्रह की दशा थी इसलिये यत्न करने पर भी उसे धन या सुख नहीं मिलता था। एक समय किसी निर्बल शुभग्रह की १ महीने की अन्तर्दशा आ गई, बस किसी महाजन ने उसे आठ आने रोज पर एक स्थान से दूसरे स्थान प्रतिदिन १ घड़ा घृत पहुँचाने का काम दे दिया उसने बड़ी ही प्रसन्नता से काम शुरू किया और घत का घड़ा उठाकर पहुँचाने चला, रास्ते में सोचने लगा कि—"आठ आने मजदूरी मिलेगी, उसमें चार आने के चावल दाल तरकारी वगैरह खरीदकर पेट भर खाऊँगा। और चार आने रोज बचाऊँगा। ऐसे एक महिने तक साढ़े सात रुपये बचेंगे, फिर यदि मजदूरी छूट भी जायगी तो उसी रुपये से कोई व्यापार करूँगा क्योंकि सुनते हैं कि लोग १ एक रूपये के व्यापार से लखपती बन जाते हैं। तो क्या हम ७ सात रुपये से हजारपति भी न बनेंगे। तब उससे भी अधिक रुपये जमा कर मैं एक घोड़ा खरीदूंगा और उस पर जिन देकर यों चढूँगा"—बस इतना सोचते ही वह उछल पड़ा उसके मत्थे पर से घृत का घड़ा ही गिर पड़ा, उसे एक दिन की मजदूरी से भी हाथ धोनापड़ा। क्योंकि अन्तर्दशापति निर्बल था, दशापति प्रबल था, इसलिये उसे प्रत्यक्ष सुख या धन नहीं होने दिया। निर्बल शुभग्रह की अन्तर्दशा तक मन में ही सुख और धन लाभ का अनुभव कर लिया॥ २२॥

अब यदि दो ग्रहों में एक शुभ और दूसरा अशुभ हो, अथवा एक ही ग्रह शुभ और अशुभ दोनों वर्ग में हो तो किस प्रकार का फल होगा?. उसे कहते हैं—

एकग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोधे
नाशं वदेद्यदधिकं परिपच्यते तत्।

नान्यो ग्रहः सदृशमन्यफलं हिनस्ति
स्वां स्वां दशामुपगताः स्वफलप्रदाः स्युः ॥२३॥

इति श्रीवराहमिहिरविरचिते बृहज्जातके
दशान्तर्दशाध्यायोऽष्टमः ॥ ८ ॥

सं०—एकग्रहस्य फलयोः शुभाशुभयोः सदृशे तुल्ये विरोधे सति तस्य फलस्य नाशं वदेत्। यत् फलमधिकं तत् परिपच्यते शुभमधिकं तदा शुभम्, अशुभमधिकं तदाऽशुभफलमेव भवतीत्यर्थः। अन्यो ग्रहः सदृशं तुल्यं अन्यफलं (अन्यग्रहस्य फलं) न हिनस्ति न नाशयति। किञ्च परस्परफलविरोधेऽपि सर्वे ग्रहाः स्वां स्वां दशामुपगताः स्वफलप्रदाः स्युः ॥ २३ ॥

भा०—यदि किसी एक ग्रह में शुभ और अशुभ बल तुल्य होने से शुभ और अशुभ दोनो फल तुल्य हो तो दोनो फल का नाश हो जाता है, अर्थात् उस ग्रह का न तो शुभ फल और न अशुभ ही होता है। यदि फल में न्यूनाधिकता हो तो जो अधिक हो वही फल मिलता है। परञ्च अन्य ग्रह किसी दूसरे ग्रह के तुल्य विरुद्ध फल को नाश नहीं करता है, किन्तु अपनी अपनी दशा में अपने अपने फल को देता ही है ॥ २३ ॥

वि०—इसका भावार्थ हुआ कि–कोई एकही ग्रह 'षड्वर्ग विचार से' ३ शुभवर्ग में और ३ पापवर्ग में पड़ा तो दोनो शुभ अशुभ तुल्य होने से से नष्ट हो जायगा। यदि चार शुभवर्ग हो २ पापवर्ग हो तो अधिक होने के कारण शुभ फल ही देगा, परञ्च पूर्ण-फल का तृतीयांश शुभ फल देगा ऐसा समझना। जिसके केवल शुभ ही के षड्वर्ग हो वह पूर्ण शुभ फल, जिसके पाप के ही ६ वर्ग हो वह पूर्ण पाप फल ही देगा। परञ्च यदि किसी की कुण्डली में ३ ग्रह शुभ फल देने वाले और उन से अन्य ३ अशुभ फल देने वाले हों तो तुल्य होने से फल का नाश नहीं होगा। सब अपनी अपनी दशा में अपना अपना फल देंगे ऐसा समझना चाहिये ॥२३॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके दशान्तर्दशाध्यायः ॥ ८ ॥

अथाष्टकवर्गाध्यायः ॥९॥

सूर्य का अष्टक वर्ग—

स्वादर्कः प्रथमायबन्धुनिधनद्व्याज्ञातपोद्यूनगो
वक्रात्स्वादिव तद्वदेव रविजाच्छुक्रात्स्मरान्त्यारिषु ।
जीवाद्धर्मसुतायशत्रुषु दशत्र्यायारिगः शीतगो-
रेष्वेवान्त्यतपःसुतेषु च बुधाल्लग्नात्सबन्ध्वन्त्यगः ॥१॥

सं०—अर्कः (सूर्यः) स्वात् (जन्मकालिकस्वाश्रितस्थानात्) प्रथमायबन्धुनिधनद्व्याज्ञातपोद्यूनगः शुभः स्यात् । अर्थात् अन्यस्थानेष्वशुभो ज्ञेयः । वक्रात् (कुजात्) स्वादिव स्वस्थानाद्येषु स्थानेषु शुभस्तेष्वेव कुजादपि शुभ इत्यर्थः । रविजात् शनैश्चरादपि तद्वदेव तेषु स्थानेष्वेव शुभः । शुक्रात् स्मरान्त्यारिषु स्थानेषु शुभः । जीवात् धर्मसुतायशत्रुषु स्थानेषु शुभः । शीतगोः (चन्द्रात्) दशत्र्यायारिगः शुभः । बुधात् एष्वेव (दशत्र्यायारिष्वेव) तथाऽन्त्यतपःसुतेषु च स्थितः शुभः । लग्नात् सबन्ध्वन्त्यगः (बन्ध्वन्त्याभ्यां सहितेषु दशत्र्यायारिषु गतः) सूर्यः शुभप्रदोऽर्थादेवाऽन्यत्राऽशुभप्रदो ज्ञेयः ॥

भा०—जन्म लग्न कुण्डली में सूर्य जिस स्थान में हो वहाँ से १।११। ४।८।२।१०।९।७ इन स्थानों में शुभ है। अर्थात् ये स्थान शुभ होते हैं। इन से अन्य स्थान अशुभ होते हैं। मङ्गल से भी इन्हीं १।११।४।८।२। १०।९।७ में और शनि से भी इन्हीं स्थानों में सूर्य शुभ होता है। शुक्र से ७।१२।६ इन स्थानों में सूर्य शुभ। गुरु से ६।५।११।६ इन स्थानों में, चन्द्र से १०।३।११।६ में शुभ। बुध से १०।३।११।६।१२।९।५ में और लग्न से १०।३।११।६।४।१२ में सूर्य शुभ होता है। अर्थात् उक्त स्थान से अन्य स्थान में अशुभ फल देता है ॥ १ ॥

चन्द्र का अष्टकवर्ग—

लग्नात षट्त्रिदशायगः सधनधीधर्मेषु चाराच्छशी
स्वात्सास्तादिषु साष्टसप्तसु रवेः षट्त्र्यायधीस्थो यमात् ।
धीत्र्यायाष्टमकण्टकेषु शशिजाज्जीवाद्व्ययायाष्टगः
केन्द्रस्थश्च सितात्तु धर्मसुखधीत्र्यायास्पदानङ्गगः ॥२॥

सं०—लग्नात् षट्त्रिदशायगः शशी (चन्द्रः) शुभः । आरात् (कुजात्) सधनधीधर्मेषु (धनधीधर्मसहितेषु षट्त्रिदशायेषु) चन्द्रः शुभः । स्वात् (स्वाधिष्ठितस्थानात्) सास्तादिषु (अस्तादिसहितेषु षट्-त्रिदशायेषु) शुभः । रवेः (सूर्यात्) साष्टसप्तसु (अष्टसप्तसहितेषु षट्-त्रिदशायेषु) चन्द्रः शुभः । यमात् (शनैश्चरात्) षट्त्र्यायधीस्थः शशी शुभः । शशिजात् (बुधात्) धीत्र्यायाष्टमकण्टकेषु स्थितः शशी शुभः । सितात् शुक्रात् धर्मसुखधीत्र्यायास्पदानङ्गगः शशी शुभो भवति । उक्तेभ्यो-ऽन्यस्थानेष्वशुभफलप्रद इत्यर्थात् सिद्ध्यति ॥ २ ॥

भा०—लग्न से ६।३।१०।११ इन स्थान में चन्द्रमा शुभ होता है । मङ्गल से ६।३।१०।११।२।५।६ इन स्थानो में । अपने अधिष्ठित स्थान से ३,६।१०।११।७।१ इनमें, सूर्य से ६।३।१०।११।८।७ में, शनि से ६।३। ११।५ में । बुध से ५।३।११।८।१।४।७।१० में । गुरु से १२।११।८।१।४। ७।१० इन स्थानों में । और शुक्र से ६।४।५।३।११।१०।७ इन स्थानों में चन्द्रमा शुभ होता है । उक्त स्थानों से भिन्न स्थान में अशुभ फल होता है ॥

मङ्गल का अष्टकवर्ग—

वक्रस्तूपचयेष्विनात् सतनयेष्वाद्याधिकेषूदया-
च्चन्द्राद्दिग्विफलेषु केन्द्रनिधनप्राप्त्यर्थगः स्वाच्छुभः ।
धर्मायाष्टमकेन्द्रगोर्कतनयाज्ज्ञात् षट्त्रिधीलाभगः
शुक्रात् षड्व्ययलाभमृत्युषु गुरोः कर्मान्त्यलाभारिषु॥३॥

सं०—वक्रः [मङ्गलस्तु] इनात् [सूर्यात्] सतनयेषु [पञ्चमसहितेषु] उपचयेषु शुभः । उदयात् [लग्नात्] आद्याधिकेषु 'उपचयेषु' शुभः । चन्द्रात् दिग्विफलेषु [दिग्=दशमं स्थानं विफलं फलशून्यं येषु तेषु उपचयेषु] शुभः । एतेन दशमस्थाने न शुभं न चाशुभं फलं भवतीति सिद्ध्यति । स्वात् [स्वाधिष्ठितस्थानात्] केन्द्रनिधनप्राप्त्यर्थगः शुभः स्यात् । अर्कतनयात् [शनैश्चरात्] धर्मायाष्टमकेन्द्रगः शुभः । ज्ञात् [बुधात्] षट्त्रिधीलाभगः शुभः । शुक्रात् षड्व्ययलाभमृत्युषु शुभः । गुरोः कर्मान्त्यलाभारिषु स्थानेषु कुजः शुभः । अन्यस्थानेष्वशुभ इत्यर्थत एव ज्ञेयः ॥

भा०—मङ्गल, सूर्य से ३।६।१०।११।५ स्थानों में शुभ होता है । लग्न से ३।६।१०।११।१ स्थानों में । चन्द्रमा से ३।६।११ में, अपने अधिष्ठितस्थान से १।४।७।१०।८।११।२ में । शनि से ९।११।८।१।४।७।१० में । बुध से ६।३।५।११ में, शुक्र से ६।१२।११।८ में और गुरु से १०। १२।११।६ स्थानों में शुभ है । शेष स्थानों में अशुभ है ॥३॥

बुधका अष्टकवर्ग—

द्व्याद्यायाष्टतपःसुखेषु भृगुजात् सत्र्यात्मजेष्विन्दुजः
साज्ञास्तेषु यमारयोर्व्ययरिपुप्राप्त्यष्टगो वाक्पतेः ।
धर्मायारिसुतव्ययेषु सवितुः स्वात्साद्यकर्मत्रिगः
षट्स्वायाष्टसुखास्पदेषु हिमगोः साद्येषु लग्नाच्छुभः ॥४॥

सं०—इन्दुजः [बुधः] शुक्रात् सत्र्यात्मजेषु [तृतीयपञ्चमसहितेषु] द्व्याद्यायाष्टतपःसुखेषु स्थानेषु शुभः स्यात् । यमारयोः [शनि-मङ्गलाभ्यां] साज्ञास्तेषु [दशमसप्तमसहितेषु द्व्याद्यायाष्टतपःसुखेषु] शुभः । वाक्पतेः [बृहस्पतेः] व्ययरिपुप्राप्त्यष्टगः शुभः । सवितुः [सूर्यात्] धर्मायारिसुत-व्ययेषु, स्वात् [स्वाश्रितस्थानात्] साद्यकर्मत्रिगः [आद्यकर्मत्रिभिः सहितेषु धर्मायारिसुतव्ययेषु गतः] बुधः शुभः स्यात् । हिमगोः [चन्द्रात्]

षट्स्वायाष्टसुखास्पदेषु, लग्नात् साद्येषु [आद्यसहितेषु षट्स्वायाष्टसुखास्पदेषु बुधः शुभ स्यात् ॥ ४ ॥

भा०—शुक्र से ३।५।२।१।११।८।४ इन स्थानों में बुध शुभ फल देता है। शनि और मङ्गल से १०।७।२।१।११।८।४ में, गुरु से १२।६।११।८ में, सूर्य से ६।११।६।५।१२ में, अपने अश्रित स्थान से १।१०।३।६।११।६।५।१२ में चन्द्रमा से ६।२।११।८।४।१० में और लग्न से १।६।२।११।८।४।१० में बुध शुभ है। अन्य स्थानों में अशुभ है ॥४॥

गुरु का अष्टवर्ग—

दिक्स्वाद्याष्टमदायबन्धुषु कुजात् स्वात् सत्रिकेष्वङ्गिराः
सूर्यात् सत्रिनवेषु धीस्वनवदिग्लाभारिगो भार्गवात् ।
जायायार्थनवात्मजेषु हिमगोर्मन्दात् त्रिषड्धीव्यये
दिग्धीषट्स्वसुखायपूर्वनवगो ज्ञात् सस्मरश्चोदयात् ॥५॥

सं०—अङ्गिराः [बृहस्पतिः] कुजात् दिक्स्वाद्याष्ट-मदायबन्धुषु स्थानेषु शुभः। स्वात् [स्वाधिष्ठितस्थानात्] सत्रिकेषु पूर्वोक्तस्थानेषु शुभः। सूर्यात् सत्रिनवेषु [त्रिनवसहितेषु दिक्स्वाद्याष्टमदायबन्धुषु] शुभः। भार्गवात् धीस्वनवदिग्लाभारिगः शुभः। हिमगोः [चन्द्रात्] जायायार्थनवात्मजेषु शुभः। मन्दात् (शनैश्चरात्) त्रिषड्धीव्यये शुभः। ज्ञात् (बुधात्) दिग्धीषट्स्वसुखायपूर्वनवगः, उदयात् (लग्नाच्च) सस्मरः (स्मरेण सप्तमेन सहितः पूर्वोक्तस्थानगतः) शुभः स्यात्। अर्थादन्यस्थानेष्वशुभः स्यात्॥५॥

भा०—बृहस्पति जन्मकुण्लीस्थित-मङ्गल से १०।२।१।८।७।११।४ में शुभ होता है। अपने आश्रित स्थान से १०।२।१।८।७।१२।४।३ में, सूर्य से १०।२।१।८।७।११।४।३।६ स्थानों में, शुक्र से ५।२।६।१०।११।६ में, चन्द्रमा से ७।११।२।६।५ में, शनि से ३।६।५।१२ में, बुध से १०।५।६।२।४।११।१।६ में, और लग्न से १०।५।६।२।४।११।१।६ स्थानों में, गुरु शुभ है। शेष स्थानों में अशुभ समझना चाहिये ॥५॥

शुक्र का अष्टवर्ग—

लग्नादासुतलाभरन्ध्रनवगः सान्त्यः शशाङ्कात् सितः
स्वात्साज्ञेषु सुखत्रिधीनवदशच्छिद्राप्तिगः सूर्यजात् ।
रन्ध्रायव्ययगो रवेर्नवदशप्राप्त्यष्टधीस्थो गुरो-
र्ज्ञाद्धीत्र्यायनवारिगस्त्रिनवषट्पुत्रायसान्त्यः कुजात् ॥६॥

सं०—सितः (शुक्रः) लग्नात् आसुतलाभरन्ध्रनवगः शुभः स्यात् । शशाङ्कात् (चन्द्रात्) सान्त्यः (अन्त्येन द्वादशस्थानेन सहितः) पूर्वोक्तस्थानगः शुभो भवति । स्वात् (स्वाक्रान्तस्थानात्) साज्ञेषु (दशमसहितेषु पूर्वोक्तस्थानेषु) शुभः । सूर्यजात् (शनैश्चरात्) सुखत्रिधीनवदशच्छिद्राप्तिगः शुभः । रवेः (सूर्यात्) रन्ध्रायव्ययगः, गुरोः नवदशप्राप्त्यष्टधीस्थः, ज्ञात् (बुधात्) धीत्र्यायनवारिगः, कुजात् त्रिनवषट्पुत्रायसान्त्यः शुक्रः शुभो भवति । उक्तेभ्योऽन्यस्थानेष्वशुभो भवतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

भा०—शुक्र लग्न से १।२।३।४।५।११।८।६ स्थान में शुभ होता है । चन्द्रमा से १।२।३।४।५।११।८।६।१२ में, अपने आश्रित स्थान से १।२।३ ।४।५।११।८।६।१० स्थानों में; शनि से ४।३।५।६।१०।८।११ में; रवि से ८।११।१२ में, गुरु से ६।१०।११।८।५ में, बुध से ५।३।११।६।६ में, और मङ्गल् से ३।६।६।५।११।१२ स्थानों में शुक्र शुभ होता है । अन्य स्थानों में अशुभ होता है ॥ ६ ॥

शनि का अष्टकवर्ग—

मन्दः स्वात् त्रिसुतायशत्रुषु शुभः साज्ञान्त्यगो भूमिजात्
केन्द्रायाष्टधनेष्विनादुपचयेष्वाद्ये सुखे चोदयात् ।
धर्मायारिदशान्त्यमृत्युषु बुधाच्चन्द्रात्त्रिषड्लाभगः
षष्ठायान्त्यगतः सितात् सुरगुरोः प्राप्त्यन्त्यधीशत्रुषु ॥७॥

सं०—मन्दः स्वात् (स्वाश्रितस्थानात्) त्रिसुतायशत्रुषु स्थानेषु शुभः

स्यात् । भूमिजात् (मङ्गलात्) साज्ञान्त्यगः (दशम-द्वादशसहितपूर्वोक्त-स्थानगतः) शुभः । इनात् (सूर्यात्) केन्द्रायाष्टधनेषु, उदयात् (लग्नात्) उपचयेषु आद्ये सुखे च शुभः । बुधात् धर्मायारिदशान्त्यमृत्युषु, चन्द्रात् त्रिषड्लाभगः, सितात् षष्ठायान्त्यगतः, सुरगुरोः प्राप्त्यन्तधीशत्रुषु स्थानेषु शुभः । शेषस्थानेष्वशुभ इत्यर्थात् सिद्ध्यति ॥ ७ ॥

भा०—शनि अपने आश्रित स्थान से ३।५।११।६ स्थान में शुभ होता है। मङ्गल से ३।५।११।६।१०।१२ में, सूर्य से १।४।७।१०।११।८।२ में, लग्न से ३।६।१०।११।१।४ में, बुध से ९।११।६।१०।१२।८ में, चन्द्रमा से ३।६।११ में, शुक्र से ६।११।१२ में और बृहस्पति से ११।१२।५।६ स्थानों में शनि शुभ होता है और शेष स्थानों में अशुभदायक होता है ॥७॥

अष्टवर्ग का फलनिरूपण—

इति निगदितमिष्टं नेष्टमन्यद्विशेषा-
दधिकफलविपाकं जन्मभात्तत्र दद्युः ।
उपचयगृहमित्रस्वोच्चगैः पुष्टमिष्टं
त्वपचयगृहनीचारातिगैर्नेष्टसम्पत् ॥८॥

इति श्रीवराहमिहिरविरचिते बृहज्जातके अष्टकवर्गाऽध्यायो नवमः ॥ ९ ॥

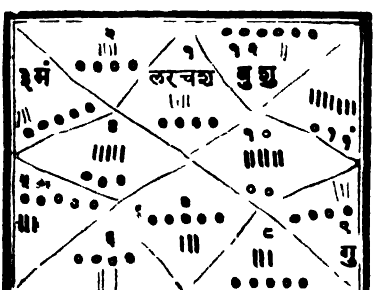
सं०—इति (एवमुपर्युक्तप्रकारेण) निगदितं कथितं 'स्थानं' इष्टं शुभम् । अन्यत् (अनुक्तं) स्थानं नेष्टं ज्ञेयम् । तत्र शुभाशुभफलयोः विशेषात् (अन्तरात्) अधिकफलविपाकं 'शुभमधिकं' चेच्छुभम्, अशुभमधिकं चेत्त-दाऽशुभफलम्' सर्वे ग्रहाः जन्मभात् (जन्मकालिकस्वस्वाक्रान्तराशितः) दद्युः । तत्रापि-उपचयगृहमित्रस्वोच्चगैः ग्रहैः 'इष्टं शुभफलं' पुष्टं सम्पूर्णं प्रयच्छयते । अर्थादेवोपचयादिशुभस्थानेषु पूर्वविधिना ज्ञातमशुभफलमल्पं प्रयच्छयते । तथा-अपचयगृहनीचारातिगैः ग्रहैः नेष्टसम्पत् (अशुभफलवृद्धिः)

ज्ञेया । अर्थादेव अपचयादिनेष्टस्थानस्थितैर्ग्रहैः शुभफलस्याऽल्पता भवतीति सिद्ध्यति ॥ ८ ॥

भा०—इस प्रकार जिस ग्रह के लिये जहाँ जहाँ से जो स्थान कहे गये हैं, वे स्थान शुभ और उनसे भिन्न स्थान अशुभ समझना चाहिये । इस प्रकार जन्मकुण्डली में जो ग्रह जहां हो वहां से शुभ और अशुभ स्थान में चिह्न लगा कर शुभ और अशुभ दोनों में जो अधिक हो वही फल उस स्थान में ग्रह चारवश जाने पर देते हैं । यदि वह स्थान जातक के जन्मराशि से उपचय (३।६।१०।११), अथवा ग्रह का अपना उच्च का गृह, अथवा मित्र का गृह हो तो शुभ फल की वृद्धि होती है, और अशुभ फल की 'हानि होती है । यदि चारवश ग्रहाश्रित राशि जातक के अपचय (उपचय स्थान से भिन्न) या अपना नीच, या शत्रु का गृह हो तो अशुभ फल की वृद्धि और शुभ फल की हानि समझनी चाहिये ॥ ८ ॥

उदाहरण–जन्मलग्नकुण्डली देखिये । सूर्य मेष में हैं, इसलिये "स्वादर्कः" इत्यादि श्लोक के अनुसार सूर्य से १।११।४।८।२।१०।६।७ ये स्थान शुभ हैं

सूर्याष्टकवर्गचक्र—



इसलिये इनमें शुभ चिह्न रेखा (।) और अन्य स्थान में अशुभ चिह्न (०) लगाये । फिर चन्द्रमा से ३।६।१०।११ में शुभ चिह्न रेखा, शेष स्थान में, अशुभ चिह्न बिन्दु । एवं मङ्गल से १।२।४।७।८।६।१०।११ इन शुभ स्थान में रेखा, शेष स्थान में बिन्दु । फिर बुध से ३।५।६।६।१०।११।१२ शुभ स्थान में रेखा, शेष स्थान में बिन्दु । बृहस्पति से ५।६।६।११ इन शुभ स्थान में रेखा, शेष में बिन्दु । शुक्र से ६।७।१२ इन शुभ स्थान में रेखा शेष में बिन्दु । शनि से १।२।४।७।८।६।१०।११ इन शुभ स्थान में रेखा, और शेष स्थान में बिन्दु । लग्न से ३।४।६।१०

।११।१२ इनमें शुभ चिह्न रेखा और शेष स्थान में बिन्दु चिह्न करने से सूर्याष्टकवर्गचक्र बन गया। यहाँ प्रत्येक स्थान में रेखा और बिन्दु दोनों मिलकर आठ आठ चिह्न है। इनमें शुभ बोधक रेखा और अशुभ बोधक बिन्दु चिह्न है। जिनमें अधिक रेखा पड़ी है वे शुभ फलद है। जिनमें अधिक बिन्दु पड़े हैं वे अशुभ फल स्थान हुए। जैसे यहाँ—सूर्य के अष्टवर्ग में रेखाबिन्दु लगाने से मेष और वृष में ४ रेखा और चार बिन्दु पड़े हैं इसलिये शुभ और अशुभ दोनों के अन्तर शून्य होने के कारण दोनों स्थान मध्यम हुए अर्थात् उसमें जब चारवश सूर्य जायगा तो मध्यम फल देगा या शुभ और अशुभ कुछ भी फल नहीं देगा। मिथुन में ५ बिन्दु और ३ रेखा है इसलिये दोनों के अन्तर करने से २ बिन्दु (अशुभ) बचते हैं इस लिये जब मिथुन में जायगा तब तब २ अष्टमांश अर्थात् १ चरण अशुभ फल मात्र देगा। एवं कर्क में ५ रेखा और ३ बिन्दु हैं, दोनों के अन्तर करने से २ रेखा (शुभ) बचती है, इसलिये चारवश जब जब सूर्य कर्क में जायगा तब तब शुभ फलदायक होगा। परञ्च मिथुन जन्मराशि से उपचय स्थान है इसलिये अशुभ फल होने पर भी अल्प अशुभ होगा। और कर्क अपचय स्थान है इसलिये वहाँ शुभप्रद होने पर भी शुभ फल में अल्पता होगी। इसी प्रकार अष्टम स्थान में अधिक बिन्दु (अशुभ) है और अपचय स्थान है अतः उस राशि में सूर्य के जाने पर अधिक अशुभ फल होगा। एवं मकर और कुम्भ में अधिक शुभ है, ये दोनों उपचय स्थान हैं इसलिये इन दोनों में जब जब सूर्य जायगा तब तब पूर्ण रूप से शुभ फल देगा। इसी प्रकार सब ग्रहों के अष्टवर्ग चक्र बना कर देखना। जिस स्थान में अधिक शुभ चिह्न पड़े उस स्थान में चारवश जब जब वह ग्रह जायगा तब तब शुभ, तथा जब जब अधिक अशुभ चिह्न वाले राशि में जायगा तब तब वह ग्रह अशुभ फलदायक होगा ॥ ८ ॥

वि०—कोई शुभ के स्थान में बिन्दु और अशुभ स्थान में ही रेखा

चिह्न कर के अष्टवर्गचक्र बनाते हैं । वहाँ अधिक बिन्दु से ही शुभ फल समझना चाहिये ।

आचार्य वराहमिहिर ने ग्रहों के गोचर फल ज्ञानार्थ लग्न सहित-अष्टक में केवल ग्रहों के ही अष्टकवर्ग शुभाशुभ स्थान को कहा है । महर्षि पराशर आदि ने लग्न का भी अष्टकवर्ग शुभाशुभ स्थान कहे हैं । इस लिये—आयु आदि विचार में उपयुक्त होने के कारण मैं ज्यौतिष प्रेमियों के उपकारार्थ यहाँ लग्न का अष्टक वर्ग लिख देता हूँ । बृहत्पाराशर अष्टक वर्गाध्याय श्लो० ६६-६८ देखिये । उस के अनुसार—॥ ८ ॥

लग्नाष्टकवर्ग शुभस्थान—

सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
३	३	१	१	१	१	१	३
४	६	३	३	२	२	३	६
६	१०	६	४	४	३	४	१०
१०	११	१०	६	५	४	६	११
११	१२	११	८	६	५	१०	०
१२	०	०	१०	७	८	११	०
०	०	०	११	९	९	०	०
०	०	०	०	१०	०	०	०
०	०	०	०	११	०	०	०

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके अष्टवर्गाध्यायः ॥ ९ ॥

अथ कर्माजीवाध्यायः ॥१०॥

किसके द्वारा धन की प्राप्ति होती है, सो कहते हैं—

अर्थाप्तिः पितृपितृपत्निशत्रुमित्रभ्रातृस्त्रीभृतकजनाद्दिवाकराद्यैः।
होरेन्द्वोर्दशमगतैर्विकल्पनीया भेन्द्वर्कास्पदपतिगांशनाथवृत्त्या॥

सं०—होरेन्द्वोः (लग्न चन्द्राभ्यां) दशमगतैः दिवसकराद्यैः (सूर्यादिग्रहैः) क्रमेण पितृ-पितृपत्नि-शत्रु-मित्र-भ्रातृ-स्त्री-भृतकजनाद् अर्थाप्तिः (धनप्राप्तिः) विकल्पनीया। लग्नाच्चन्द्राद्वा दशमगतो रविश्चेत् तदा पितृतः, लग्नात् दशमगतश्चन्द्रश्चेत्तदा पितृपत्नितः (मातुः, सपत्निमातुश्च) धनप्राप्तिः। लग्नचन्द्राभ्यां दशमगतः कुजश्चेत् तदा शत्रुतः बुधश्चेत् तदा मित्रात्, गुरुश्चेत् तदा भ्रातृतः, शुक्रश्चेत् तदा स्त्रीतः, शनिश्चेद्दशमगतस्तदा भृत्यवर्गात् धनप्राप्तिर्भवतीत्यर्थः। उभाभ्यां दशमे ग्रहाभावे भेन्द्वर्कास्पदपतिगांशनाथवृत्त्याऽर्थाप्तिर्विकल्पनीया (भं लग्नराशिः, इन्दुश्चन्द्रोऽर्कश्चैतेभ्यः) आस्पदं दशमस्थानं तत्पतिर्गतो यस्मिन्नवमांशे तन्नाथवृत्त्या (वक्ष्यमाणया) अर्थाप्तिर्विकल्पनीया ॥ १ ॥

भा०—लग्न या चन्द्रमा अथवा दोनों से दशम स्थान में जो ग्रह हों उनके अनुसार धनलाभ समझना, जैसे—दशम में रवि हो तो पिता से, चन्द्रमा हो तो माता से, मङ्गल हो तो शत्रु से, बुध हो तो मित्र से, गुरु हो तो भाई से, शुक्र हो तो स्त्री से और शनि दशम स्थान में हो तो नौकरों के द्वारा धन लाभ कहना। यदि लग्न या चन्द्रमा से दशम में कोई ग्रह नहीं हो तो लग्न, चन्द्रमा और सूर्य इन तीनों स्थान से दशम भाव के स्वामी जिस ग्रह के नवमांश में हो उस ग्रह की वृत्ति (व्यापार) से धन लाभ समझना चाहिये। जो आगे श्लोक में कहते हैं ॥ १ ॥

उदाहरण—जैसे बतलाये हुये उदाहरण में लग्न और रवि तथा चन्द्रमा एक ही स्थान में हैं, अतः तीनों से दशम स्थान (मकर) में कोई ग्रह

नहीं है, अतः इन ही तीनों से दशम भाव (मकर) का स्वामी स्पष्ट शनि (०।२८।५।५५) ये धन के नवांश में है, अतः नवांश पति बृहस्पति हुआ। इसलिये आगे कहे हुए-("जीवांशे द्विजविबुधाकरादिधर्मैः" इत्यादि) के अनुसार ब्राह्मण और देवों की कृपा, खनिज पदार्थ सुवर्णादि द्रव्य द्वारा,, आदि पद से अनेकों स्थल जल सम्बन्धी व्यापार और धर्मानुष्ठान से धन का लाभ समझना ॥ १ ॥

दशमेश के नवांशपति द्वारा धनलाभ का ज्ञान—

अर्कांशे तृणकनकोर्णभेषजाद्यै-
श्चन्द्रांशे कृषिजलजाङ्गनाश्रयाच्च ।
धात्वग्निप्रहरणसाहसैः कुजांशे
सौम्यांशे लिपिगणिताদिकाव्यशिल्पैः ॥ २ ॥

सं०—लग्नेन्दुसूर्येभ्यो दशमपतिः अर्कांशे सूर्यनवांशे स्थिते सति तृणकनकोर्णभेषजाद्यैः, चन्द्रांशे कृषिजलजाङ्गनाश्रयात्, कुजांशे धात्वग्निप्रहरणसाहसैः, सौम्यांशे बुधांशे लिपिगणितादिकाव्यशिल्पैः अर्थप्राप्तिर्भवति ॥ २ ॥

भा०—पूर्वकथित-लग्न चन्द्र वा सूर्य से दशम भाव का स्वामी यदि सूर्य के नवमांश में हो तो तृण (घास, सुगन्ध आदि) सोना, ऊन, ऊनी कपड़े, औषध आदि से धन लाभ होता है। दशमेश यदि चन्द्र के नवांश में हो तो खेती, जलोत्पन्न वस्तु (शङ्ख, मोती आदि) के व्यापार और स्त्रियों के आश्रय से धन लाभ होता है। मङ्गल के नवांश में हो तो धातु (ताँबा, पीतल, सुवर्ण आदि वा हरिताल आदि) से, अग्निकर्म, प्रहरण (अस्त्र, बाण, खड्ग आदि के प्रहार) द्वारा और साहस (दुष्कर कार्य में प्रवृत्त होने) से धन का लाभ होता है। बुध के नवांश में हो तो, लेख, गणना, कविता, चित्रकारी आदि कर्म से धन की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

जीवांशे द्विजविबुधाकारादिधर्मैः
काव्यांशे मणिरजतादिगोकुलाद्यैः ।

सौरांशे श्रमवधभारनीचशिल्पैः
कर्मेशाध्युषितनवांशकर्मसिद्धिः ॥ ३ ॥

सं०—जीवांशे (गुरुनवमांशे स्थिते दशमेशे) द्विजविबुधाकरादिधर्मैः, काव्यांशे (शुक्रनवांशे) मणिरजतादि-गो-तुलाद्यैः, सौरांशे (शन्यंशे) श्रम-वधभारनीचशिल्पैर्धनप्राप्तिर्भवति । तत्रापि कर्मेशाध्युषितनवांशकर्मसिद्धि-र्भवति (लग्नतो यः कर्मेशो दशमपतिस्तदाश्रितनवांशकर्मणां सिद्धिर्विशेषेण भवतीत्यर्थः) ॥ ३ ॥

भा०—दशमेश यदि गुरु के नवांश में हो तो ब्राह्मण, देवता वा पण्डितों के द्वारा तथा आकर (सुवर्ण, लवण, कोयला आदि खान की वस्तु) आदि शब्द से हाथी घोड़े यज्ञ दानादि क्रिया से धन लाभ होता है । शुक्र के नवांश में हो तो मणि (मरकत-पद्मराग आदि रत्न) चाँदी आदि द्रव्य, और गाय, भैंस से, शनि के नवांश हो तो परिश्रम, हिंसाकर्म, भार ढोने, नीच कर्म अपने कुल से निन्दित कर्म के द्वारा धन लाभ होता है । ऊपर कथित तीनों (लग्न, चन्द्र, रवि) से दशमेशों में कर्मेश के (लग्न से जो दशमेश हो उसके) आश्रित नवांशोक्त कर्म में विशेष कर सिद्धि होती है ॥

अन्य प्रकार से धनलाभ योग—

मित्रारिस्वगृहगतैर्ग्रहैस्ततोऽर्थ-
स्तुङ्गस्थे बलिनि च भास्करे स्ववीर्यात् ।
आयस्थैरुदयधनाश्रितैश्च सौम्यैः
संचिन्त्यं बलसहितैरनेकधा स्वम् ॥ ४ ॥

इति श्रीबृहज्जातके कर्माजीवाध्यायो दशमः ॥ १० ॥

सं०—'पूर्वोक्ता मेन्दुर्कास्पदपतयो ये ग्रहास्तैः' मित्रारिस्वगृहगतैस्ततः (क्रमेण मित्रारिस्वतः) अर्थो धनलाभो भवति । बलिनि भास्करे तुङ्गस्थे (स्वोच्चे मेषे स्थिते) सति स्ववीर्यात् स्वबाहुबलात् धनं भवति । सौम्यैः

(शुभग्रहैः) बलसहितैः आयस्थैः (एकादशभावगतैः) उदयधनाश्रितैः (लग्नद्वितीयभावगतैश्च) अनेकधा अनेकप्रकारेण तस्य जातकस्य स्वं (धनं) सञ्चिन्त्यम् (विचार्यं ज्ञेयम्) ॥ ४ ॥

भा०—पूर्वोक्त लग्न, चन्द्र और सूर्य से दशम भाव के स्वामी यदि मित्र के घर में हो तो मित्र के द्वारा, शत्रु के गृह में हो तो शत्रु के द्वारा, अपने घर में हो तो अपने ही द्वारा धन का लाभ होता है। यदि बलवान् सूर्य अपने उच्च (मेष) में हो तो स्वबाहु बल से धन लाभ होता है। तथा बलवान् शुभ ग्रह यदि एकादश, लग्न या धनभाव में हो तो अनेकों प्रकार से उसे धनलाभ होता है। यथा भगवान् गार्गि का वचन—

"धनदा जन्मसमये मित्रारिस्वगृहोपगाः ।
यस्य तस्य धनं दद्युर्मित्रारिस्वगृहोद्भवम् ॥
धनदो भास्करो यस्य तुङ्गे बलसमन्वितः ।
भवेज्जन्मनि यस्याऽस्य वित्तमात्मोद्यमार्जितम् ॥
लाभार्थलग्नगैः सौम्यैर्येन येनैव कर्मणा ।
धनार्जनं प्रार्थयते तेनायत्नात् समन्विते ॥" स्पष्टार्थः ॥४॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके कर्माजीवाध्यायः ॥१०॥

—०:※:०—

अथ राजयोगाध्यायः ॥११॥

यवनाचार्य और जीवशर्मा का मत—

प्राहुर्यवनाः स्वतुङ्गगैः क्रूरैः क्रूरमतिर्महीपतिः ।
क्रूरैस्तु न जीवशर्मणः पक्षे क्षित्यधिपः प्रजायते ॥१॥

सं०—क्रूरैः पापग्रहैः स्वतुङ्गगैः स्वस्वोच्चस्थितैः क्रूरमतिर्महीपतिर्भवतीति यवनाः प्राहुः कथयन्ति । एतेन यवनादिमते सौम्यैरुच्चगतैः शुभमतिर्महीपतिः, मिश्रैश्च मिश्रमतिरिति सिद्धयति । जीवशर्मणः पक्षे तु क्रूरैः स्वतुङ्गगैरपि क्षित्यधिपो (महीपतिः) न प्रजायते । अर्थात् क्रूरबुद्धिर्धनवान् भवति ॥१॥

भा०—सब पापग्रह उच्च में हो तो क्रूर बुद्धिवाला राजा होता है, ऐसा यवनाचार्यों का कहना है । किन्तु पापग्रहों के उच्च में होने पर भी राजा नहीं होता है ऐसा जीवशर्मा का कथन है ॥ १ ॥

वि०—यवनों का मत है कि पापग्रह भी यदि ३ से अधिक स्वोच्च में हो तो राजा होता है । किन्तु क्रूर बुद्धिवाला अर्थात् शुभग्रह अधिक स्वोच्च में हो तो सुबुद्धि राजा और मिश्रग्रह ३ से अधिक उच्चगत हो तो मिश्र बुद्धिवाला राजा होता है । परञ्च जीवशर्मा का मत है कि पापग्रह के उच्च में होने से केवल धनवान् होता है, राजा नहीं । यथा जीवशर्मा—

"पापैरुच्चगतैर्जाता न भवन्ति नृपा नराः ।
किन्तु वित्तान्वितास्ते स्युः क्रोधिनः कलहप्रियाः ॥" इति

तथा यवनः—"त्रिप्रभृतिभिरुच्चस्थैर्नृपवंशभवा भवन्ति राजानः ।
पञ्चादिभिरन्यकुलोद्भवाश्च तद्वत् त्रिकोणगतैः ॥"
त्रिकोणगतैः=मूलत्रिकोणस्थितैः । अन्यत् स्पष्टमेवेति ॥ १ ॥

३२ प्रकार के राजयोग—

वक्रार्कजार्कगुरुभिः सकलैस्त्रिभिश्च
स्वोच्चेषु षोडश नृपाः कथितैकलग्ने ।
द्व्येकाश्रितेषु च तथैकतमे विलग्ने
स्वक्षेत्रगे शशिनि षोडश भूमिपाः स्युः ॥ २ ॥

सं०—वक्रार्कजार्कगुरुभिः सकलैः (चतुर्भिः) वा त्रिभिः स्वोच्चेषु स्थितैः, तथा कथितैकलग्ने (कथितेषु तेष्वेकतमे लग्नगते) इति षोडशनृपाः (राज-

योगाः) भवन्ति । तथा च 'कथितेषु' एकतमे विलग्ने स्वोच्चेषु द्वयेकाश्रितेषु (द्वयोरेकस्मिन् वा स्वोच्चगते इत्यर्थः) तथा शशिनि चन्द्रे स्वक्षेत्रगे सति षोडशभूमिपा राजयोगा भवन्ति ॥ २ ॥

भा०—मङ्गल, शनि, रवि और गुरु ये चारों या इनमें ३ अपने अपने उच्च में हो तथा इन्हीं में एक लग्न में हो तो १६ प्रकार के राजयोग होते हैं। तथा इनमें २ या १ उच्च में हो और १ लग्नगत हो एवं चन्द्रमा अपनी राशि (कर्क) में हो तो भी १६ प्रकार के राजयोग होते हैं ॥ २ ॥

उदाहरण चक्र में देखिये—　　　　४४ प्रकार के राजयोग—

	स्वोच्चस्थ लग्न में	स्वोच्चमें
१	मं.	श.र.बृ.
२	श.	मं.र.बृ.
३	र.	श.मं.बृ.
४	बृ.	मं.श.र.
५	मं.	श. र.
६	मं.	श. बु.
७	मं.	र. गु.
८	श.	मं. र.
९	श.	मं. गु.
१०	श.	र. गु.
११	र.	मं. श.
१२	र.	मं. गु.
१३	र.	श. गु.
१४	गु.	र. श.
१५	गु.	र. मं.
१६	गु.	मं. श.

वर्गोत्तमगते लग्ने चन्द्रे वा चन्द्रवर्जितैः ।
चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपा द्वाविंशतिः स्मृताः ॥ ३ ॥

सं०—लग्ने वर्गोत्तमगते (वर्गोत्तमनवांशस्थे) वा चन्द्रे वर्गोत्तमगते, चन्द्रवर्जितैश्चतुराद्यैः [चतुर्भिः, पञ्चभिः, षड्भिर्वा] ग्रहैर्दृष्टे सति द्वाविंशतिर्नृपाः राजयोगाः स्मृताः कथिताः ॥ ३ ॥

भा०—लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवांश में हो उस पर चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ४, या ५, या ६ ग्रहों की दृष्टि हो तो दोनों स्थिति में २२, २२ राजयोग के भेद होते हैं ॥ ३ ॥

चक्र देखिये ४ ग्रहों की दृष्टि से १५ भेद, ५ ग्रहों की दृष्टि से ६ भेद और ६ छवों ग्रह की दृष्टि से १ एक ही भेद, इस प्रकार २२ भेद हुए। एवं चन्द्रमा पर दृष्टि से २२, दोनों मिल कर ४४ राजयोग होते हैं ॥ ३ ॥

कर्कस्थचन्द्र में १६ योग यथा-वर्गोत्तमगतलग्न पर ग्रहदृष्टि से २२ भेद—

१	मं.	र.
२	मं.	श.
३	' .	गु.
४	श.	र.
५	श.	म.
६	श.	गु.
७	र.	म.
८	र.	श.
९	र.	गु.
१०	गु.	र.
११	गु.	मं.
१२	गु.	श.
१३	मं.	×
१४	श.	×
१५	र.	×
१६	गु.	×

१	र. मं. बु. बृ.
२	र. मं. बु. शु.
३	र. मं. बु. श.
४	र. मं. बृ. शु.
५	र. मं. बृ. श.
६	र. मं. शु. श.
७	र. मं. बृ. शु.
८	र. मं. बृ. श.
९	र. बु. बृ. शु.
१०	र. बु. बृ. श.
११	र. बु. शु. श.
१२	मं. बु. बृ. शु.
१३	मं. बु. बृ. श.
१४	मं. बु. शु. श.
१५	बु. बृ. शु. श.
१६	र. मं. बु. बृ. शु.
१७	र. मं. बु. बृ. श.
१८	र. मं. बु. शु. श.
१९	र. मं. बृ. शु. श.
२०	र. बु. बृ. शु श.
२१	मं. बु. बृ. शु. श.
२२	र. मं. बु. बृ. शु. श.

५ प्रकार के राजयोग—

यमे कुम्भेऽर्केऽजे गवि शशिनि तैरेव तनुगै-
र्नृयुक्सिंहालिस्थैः शशिजगुरुवक्रैर्नृपतयः ।

यमेन्दू तुङ्गेऽङ्गे सवितृशशिजौ षष्ठभवने
तुलाजेन्दुक्षेत्रैः स-सितकुजजीवैश्च नरपौ ॥ ४ ॥

सं०—यमे शनैश्चरे कुम्भे, अर्केऽजे मेषे, शशिनि चन्द्रे गवि [वृषस्थे] तैरेव [शनि-रवि-चन्द्रैरेव] तनुगैः [लग्नगतैः] तथा शशिजगुरुवक्रैः [बुध-जीव-कुजैः क्रमेण] नृयुक्सिंहालिस्थैः नृपतयो भवन्ति अर्थादेषु त्रिषु लग्नेषु त्रयो राजयोगा भवन्ति । अथ यमेन्दू [शनि-चन्द्रौ] तुङ्गे [स्वस्वोच्चे] ऽङ्गे लग्ने च स्थितौ, तथा सवितृ-शशिजौ [रविबुधौ] षष्ठभवने स्थितौ, तुलाजेन्दुक्षेत्रैः [तुल-मेष-कर्कटैः] क्रमेण स-सितकुजजीवैः [शुक्र-कुज-जीवसहितैः] नरपौ राजानौ भवतः । अर्थादनयोर्द्वयोर्लग्नयोर्द्वौ राजयोगौ भवतः ॥ ४ ॥

भा०—कुम्भ में शनि, मेष में रवि, वृष में चन्द्रमा हो इन तीन में से कोई एक लग्न में हो तथा मिथुन में बुध, गुरु सिंह में, मङ्गल वृश्चिक में हो तो इन तीनों लग्न से ३ प्रकार के राजयोग होते हैं। एवं शनि और चन्द्रमा अपने अपने उच्च में और इन्हीं दोनों में से कोई एक लग्न में हो और षष्ठभाव में रवि बुध हो, शुक्र तुला में, मङ्गल मेष में, और गुरु कर्क में हो तो इन दोनों लग्न में २ प्रकार के राजयोग होते हैं ॥ ४ ॥

और भी ३ प्रकार के राजयोग कहते हैं—

कुजे तुङ्गेऽर्केन्द्वोर्धनुषि यमलग्ने च कुपतिः
पतिर्भूमेश्चान्यः क्षितिसुतविलग्ने स-शशिनि ।
स-चन्द्रे सौरेऽस्ते सुरपतिगुरौ चापधरगे
स्वतुङ्गस्थे भानावुदयमुपयाते क्षितिपतिः ॥ ५ ॥

सं०—यमलग्ने (यमेन शशिना सहिते लग्ने) कुजे तुङ्गे 'मकरे' सति, अर्केन्द्वोर्धनुषि स्थितयोः कुपतिः (राजा) भवति । 'अस्मिन् योगे यदि' स-शशिनि (स-चन्द्रे) क्षितिसुतविलग्ने सति अन्यो भूमेः पतिर्भवति,

अयं द्वितीयो राजयोगो भवतीत्यर्थः। स-चन्द्रे सौरे (शनैश्चरे) अस्ते सप्तमभावगते, सुरपतिगुरौ चापधरगे (धनुषि स्थिते) भानौ स्वतुङ्गस्थे मेषस्थे उदयं (लग्नं) उपयाते प्राप्ते सति क्षितिपतिः (राजा) भवति ॥५॥

भा०—शनैश्चर के साथ लग्न में अपने उच्च (मकर) का मङ्गल हो और रवि गुरु दोनों धनु में हो तो ऐसे योग में जातक राजा होता है। तथा मकर लग्न में, चन्द्रमा के साथ मङ्गल हो तब भी राजा होता है। और अपने उच्च (मेष) गत रवि लग्न में हो, चन्द्रमा के साथ शनि सप्तम भाव में हो तथा गुरु धनु में हो तब भी जातक राजा होता है ॥ ५ ॥

और भी २ प्रकार के राजयोग—

वृषे सेन्दौ लग्ने सवितृगुरुतीक्ष्णांशुतनयैः
सुहृज्जायाखस्थैर्भवति नियमान्मानवपतिः।
मृगे मन्दे लग्ने सहजरिपुधर्मव्ययगतैः
शशाङ्काद्यैः ख्यातः पृथुगुणयशाः पुङ्गलपतिः ॥ ६ ॥

सं०—सेन्दौ वृषे लग्ने, सवितृगुरुतीक्ष्णांशुतनयैः (रवि-गुरु-शनैश्चरैः) क्रमेण सुहृज्जायाखस्थैः जातको नियमात् (निश्चयात्) मानवपतिः (राजा) भवति। मृगे (मकरे) लग्ने मन्दे शनैश्चरे तत्रस्थे, तथा च शशाङ्काद्यैः (चन्द्र-कुज-बुध-जीवैः) क्रमेण सहजरिपुधर्मव्ययगतैः, 'रविचन्द्रयोर्यत्र कुत्रस्थयोः' एवंभूते योगे पृथुगुणयशाः (अतिगुणयशोयुक्तः) पुङ्गलपतिः (नरपतिः) भवति ॥ ६ ॥

भा०—वृष लग्न में चन्द्रमा हो, चतुर्थभाव (सिंह) में रवि, सप्तम स्थान में गुरु, दशम स्थान (कुम्भ) में शनि हो तो जातक निश्चय राजा होता ही है। तथा मकर लग्न में शनि तृतीय स्थान (मीन) में चन्द्रमा, षष्ठ स्थान में मङ्गल, नवम में बुध, द्वादश में गुरु हो 'रवि और शुक्र जिस किसी स्थान में हों' तो ऐसे योग में भी जातक अत्यन्त गुणवान् और यशस्वी राजा होता है ॥ ६ ॥

और भी २ प्रकार के राजयोग—

हये सेन्दौ जीवे मृगमुखगते भूमितनये
स्वतुङ्गस्थौ लग्ने भृगुजशशिजावत्र नृपती।
सुतस्थौ वक्रार्की गुरुशशिसिताश्चापि हिबुके
बुधे कन्यालग्ने भवति हि नृपोऽन्योऽपि गुणवान् ॥७॥

सं०—सेन्दौ (स-चन्द्रे) जीवे हये (धनुषि) भूमितनये मृगमुखगते भृगुजशशिजौ (शुक्र-बुधौ) स्वतुङ्गस्थौ लग्ने स्थितौ, तदा अत्र (अनयो-र्द्वयोर्लग्नयोः) नृपती राजानौ भवतः। तथा बुधे कन्यालग्ने स्थिते, वक्रार्की (कुज-शनी) सुतस्थौ (मकरस्थौ) गुरुशशिसिता हिबुके (चतुर्थभावे) स्थिताः अस्मिन् योगे जातोऽन्योऽपि गुणवान् नृपो हीति निश्चयेन भवति॥

भा०—चन्द्रमा और गुरु धनु में हो, मकर में मङ्गल हो, और शुक्र या बुध अपने अपने उच्च (मीन, और कन्या) में होकर लग्न में हो तो इन दोनो योग में जातक राजा होता है। तथा कन्या लग्न में बुध हो, पञ्चम भाव (मकर) में मङ्गल और शनि हो, चतुर्थभाव (धनु) में गुरु, शुक्र और चन्द्र हो तो इस योग में गुणवान् राजा होता है॥ ७॥

और भी ३ प्रकार के राजयोग—

झषे सेन्दौ लग्ने घटमृगमृगेन्द्रेषु सहितै-
र्यमारार्कैर्योऽभूत्स खलु मनुजः शास्ति वसुधाम्।
अजे सारे मूर्तौ शशिगृहगते चामरगुरौ
सुरेज्ये वा लग्ने धरणिपतिरन्योऽपि गुणवान्॥८॥

सं०—सेन्दौ झषे (मीने) लग्ने, यमारार्कैः क्रमेण घट-मृगमृगेन्द्रेषु सहितैः (स्थितैः) योऽभूत् 'जायते' स मनुजः वसुधां शास्ति (भूमिपति-र्भवतीत्यर्थः)। सारे (मङ्गलसहिते) अजे मेषे मूर्तौ (लग्नगते) चामरगुरौ

शशिगृहगते (कर्कस्थे) अथवाऽस्मिन्नेव योगे सुरेज्ये (जीवे एव) लग्नगते सति अन्योऽपि गुणवान् धरणिपतिर्भवति ॥ ८ ॥

भा०—चन्द्रमा सहित मीन लग्न हो, कुम्भ में शनि, मकर में मङ्गल, सिंह में रवि हो तो ऐसे योग में जो जन्म लेता है वह निश्चित रूप से पृथ्वी का पालन करता है। तथा मेष का मङ्गल लग्न में हो और कर्क में बृहस्पति हो। अथवा कर्क का बृहस्पति ही लग्न में और मेष में मङ्गल हो तो इन दोनों लग्न में उत्पन्न मनुष्य गुणवान् राजा होता है ॥८॥

अन्य राजयोग—

कर्किणि लग्ने तत्स्थे जीवे चन्द्रसितज्ञैरायप्राप्तैः।
मेषगतेऽर्के जातं विद्याद्विक्रमयुक्तं पृथ्वीनाथम् ॥९॥

सं०—कर्किणि लग्ने तत्स्थे जीवे (गुरौ) चन्द्रसितज्ञैः आयप्राप्तैः (एकादशभावगतैः) अर्के मेषगते सति विक्रमयुक्तं पृथ्वीनाथं राजानं विद्यात् ॥ ९ ॥

भा०—कर्क लग्न में बृहस्पति हो; चन्द्रमा, शुक्र, बुध ये एकादश स्थान (वृष) में हो और मेष में सूर्य हो तो बड़ा ही पराक्रमी राजा समझना चाहिए ॥ ९ ॥

मृगमुखेऽर्कतनयस्तनुसंस्थः क्रियकुलीरहरयोऽधिपयुक्ताः।
मिथुनतौलिसहितौ बुधशुक्रौ यदि तदा पृथुयशाः पृथिवीशः॥

सं०—यदि मृगमुखे (मकरे) अर्कतनयः (शनिः) तनुसंस्थः (लग्नगतः) क्रियकुलीरहरयः (मेष-कर्क-सिंहाः) अधिपयुक्ताः, बुधशुक्रौ क्रमेण मिथुन-तौलिसहितौ तदा पृथुयशाः (अतियशस्वी) पृथिवीशः (राजा) भवति ॥ १० ॥

भा०—मकर स्थित शनि लग्न में हो, मेष, कर्क, सिंह ये अपने अपने स्वामी से संयुक्त हो, मिथुन में बुध, तुला में शुक्र हो तो अति यशस्वी भूपति होता है ॥ १० ॥

स्वोच्चसंस्थे बुधे लग्ने भृगौ मेषूरणाश्रिते ।
सजीवेऽस्ते निशानाथे राजा मन्दारयोः सुते ॥११॥

सं०—स्वोच्चसंस्थे (कन्यायां पञ्चदशेंऽशे स्थिते) बुधे लग्नगे सति भृगौ मेषूरणाश्रिते (दशमभावगते) सजीवे निशानाथे (चन्द्रे) अस्ते सप्तमभावगते, तथा मन्दारयोः (शनि-कुजयोः) सुते (पञ्चमभावे मकरे)-स्थितयोः जातको राजा भवति ॥११॥

भा०—कन्या के १५ वें अंश पर बुध लग्न में हो उससे दशवें स्थान में शुक्र, सातवें में चन्द्रमा और गुरु, पञ्चम भाव में शनि मङ्गल हो तो जातक राजा होता है ॥ ११ ॥

पूर्वकथित और आगे के कहे जानेवाले योग में विशेषता—

अपि खलकुलजाता मानवा राज्यभाजः
किमुत नृपकुलोत्थाः प्रोक्तभूपालयोगैः ।
नृपतिकुलसमुत्थाः पार्थिवा वक्ष्यमाणे-
र्भवति नृपतितुल्यस्तेष्वभूपालपुत्रः ॥१२॥

सं०—प्रोक्तभूपालयोगैः पूर्वकथितराजयोगैः खलकुलजाता नीचवंशोत्पन्ना अपि मानवा राज्यभाजो भूमिपतयो भवन्ति, नृपकुलोत्थाः (राजवंशोद्भवाः) किमुत ? किमु वक्तव्यास्ते त्ववश्यं राजानो भवन्त्येव । तथा वक्ष्यमाणै राजयोगैस्तु नृपतिकुलसमुत्थाः (राजकुलोद्भवाः) एव पार्थिवाः (भूमिपाः) भवन्ति । तेषु वक्ष्यमाणराजयोगेषु अभूपालपुत्रो नृपतितुल्यो राजसदृशो भवति ॥ १२ ॥

भा०—पूर्व कहे हुए योगों में नीच दरिद्र कुल में उत्पन्न मनुष्य भी राजा होता है, फिर राजकुलोत्पन्न की तो बात ही क्या है ? तथा आगे कहे हुए योगों में केवल राजवंश में ही जन्म लेनेवाला राजा हो सकता है, अन्य वंशोत्पन्न मनुष्य राजा के समान होता है, किन्तु राजा (शासक) नहीं होता है ॥ १२ ॥

राजयोग में विशेष—

उच्चस्वत्रिकोणगैर्बलस्थैस्त्र्याद्यैर्भूपतिवंशजा नरेन्द्राः ।
पञ्चादिभिरन्यवंशजाता हीनैर्वित्तयुता न भूमिपालाः ॥१३॥

सं०—त्र्याद्यैः (त्रिभिश्चतुर्भिर्वा) ग्रहैर्बलस्थैः-उच्चस्वत्रिकोणगैः (स्वोच्च-मूलत्रिकोणगतैः) भूपतिवंशजा नरेन्द्राः (राजानः) भवन्ति । पञ्चादिभिः, (पञ्चभिः षड्भिर्वा) ग्रहैरुच्चस्वत्रिकोणगैरन्यवंशजाता अपि राजानो भवन्ति । हीनैः (त्र्यल्पैः-द्वाभ्यां, एकेन वा—उच्चत्रिकोणगतेन) वित्तयुता भवन्ति; किन्तु भूमिपाला न भवन्तीत्यर्थः ॥ १३ ॥

भा०—३, या ४ ग्रह यदि बल (कालबल-दिग्बल आदि) से युक्त होकर अपने उच्च या मूलत्रिकोण में हो तो राजवंशोत्पन्न राजा होता है । अन्य वंशोत्पन्न धनवान् मात्र होता है । यदि ५, या ६ ग्रह उच्च त्रिकोण में हो तो ऐसे योग में अन्य वंशोत्पन्न भी राजा होता है । अल्प (२, वा १) ग्रह उच्च या मूलत्रिकोण में हो भी तो केवल धनवान् होता है, राजा नहीं होता है ॥ १३ ॥

लेखास्थेऽर्केऽजेन्दौ लग्ने भौमे स्वोच्चे कुम्भे मन्दे ।
चापप्राप्ते जीवे राज्ञः पुत्रं विन्द्यात्पृथ्वीनाथम् ॥१४॥

सं०—अर्के सूर्ये लेखास्थे (लेखा = उदयक्षितिजं तत्रस्थे, सूर्यबिम्बार्धोदयकाले शून्येष्टकाले इति यावत्) तत्र अजेन्दौ (मेषस्थचन्द्रे च) लग्ने स्थिते, स्वोच्चे मकरे भौमे, कुम्भे मन्दे शनैश्चरे, जीवे चापप्राप्ते धनुर्गते सति राज्ञः पुत्रं पृथ्वीनाथं विद्याज्जानीयात् ॥ १४ ॥

भा०—उदयक्षितिज में सूर्य हो, मेषगत चन्द्रमा लग्न में हो, मङ्गल स्वोच्च (मकर) में, शनि कुम्भ में, गुरु धनु में हो तो राजा के पुत्र को इस योग में राजा समझना ॥ १४ ॥

वि०—कोई यहाँ 'लेखा' शब्द से 'सिंह राशि' अर्थ करते हैं । इस

अर्थ से भी राजयोग हो सकता है। परन्तु वहाँ "लेयस्थेऽर्केऽजेन्दौ लग्ने" ऐसा पाठ होना चाहिये ॥ १४ ॥

स्वर्क्षे शुक्रे पातालस्थे धर्मस्थानं प्राप्ते चन्द्रे।
दुश्चिक्याङ्गप्राप्तिप्राप्तैः शेषैर्जातः स्वामी भूमेः ॥१५॥

सं०—शुक्रे स्वर्क्षे (वृषतुलयोरन्यतरस्थे) पातालस्थे चतुर्थभावगते, चन्द्रे धर्मस्थानं प्राप्ते सति, शेषैर्ग्रहैः दुश्चिक्याङ्गप्राप्तिप्राप्तैः (तृतीयलग्नैकादशभावगतैः) जातः भूमेः स्वामी (राजा) भवति ॥१५॥

भा०—शुक्र वृष या तुला में हो कर चतुर्थ भाव में हो, चन्द्रमा नवम स्थान में हो, शेष सब ग्रह ३, १, ११ भाव में हो तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य भूमिपति (राजा) होता है ॥१५॥

सौम्ये वीर्ययुते तनुयुक्ते वीर्याढ्ये च शुभे शुभयाते।
धर्मार्थोपचयेष्ववशेषैर्धर्मात्मा नृपजः पृथिवीशः ॥१६॥

सं०—सौम्ये बुधे वीर्ययुते तनुयुक्ते (लग्नस्थे) तथा च वीर्याढ्ये शुभेऽन्यशुभग्रहे (गुरौ शुक्रे वा) शुभयाते (नवमभावगते), अवशेषैर्ग्रहैः धर्मार्थोपचयेषु स्थानेषु स्थितैः, नृपजः (राजपुत्रो) धर्मात्मा पृथिवीशः (भूपालको) भवति ॥१६॥

भा०—बुध बली हो कर लग्न में हो और अन्य शुभग्रह (गुरु या शुक्र, या पूर्णचन्द्र) बली होकर नवमभाव में हो, शेषग्रह ६।२।३।६।१०।११ में हो तो ऐसे योग में उत्पन्न राजा का बालक ही धर्मात्मा राजा होता है ॥

और २ प्रकार के राजयोग—

वृषोदये मूर्त्तिधनारिलाभगैः शशाङ्कजीवार्कसुतापरैर्नृपः।
सुखे गुरौ खे शशितीक्ष्णदीधितौ यमोदये लाभगतैर्नृपोपरैः ॥

सं०—वृषोदये शशाङ्कजीवार्कसुताऽपरैर्ग्रहैः क्रमेण मूर्तिधनारिलाभगैः, जातको नृपो भवति। यमोदये (शनैश्चरे लग्नगते) गुरौ सुखे, शशि-तीक्ष्ण-

दीधिती (चन्द्र-सूर्यौ) खे (दशमे भावे स्थितौ) अपरैः शेषैर्लाभगतैः जातो (राजपुत्रो) नृपो भवति ॥ १७ ॥

भा०—वृष लग्न हो, लग्न में चन्द्रमा, द्वितीय भाव में गुरु, षष्ठ में शनि, और शेष ग्रह (रवि, मङ्गल, बुध, शुक्र) एकादश भाव में हो तो जातक (राजपुत्र) राजा होता है। तथा चतुर्थभाव में गुरु हो, दशमभाव में चन्द्र रवि हो, लग्न में शनि और शेष ग्रह एकादश भाव में हो तो राजा होता है ॥ १७ ॥

और २ प्रकार के राजयोग—

मेषूरणायतनुगाः शशिमन्दजीवा
ज्ञारौ धने सितरवी हिबुके नरेन्द्रः ।
वक्रासितौ शशिसुरेज्यसितार्कसौम्या
होरासुखास्तशुभखाप्तिगताः प्रजेशः ॥१८॥

सं०—शशिमन्दजीवाः क्रमेण मेषूरणायतनुगाः (दशमैकादशलग्नगताः) ज्ञारौ (बुधकुजौ) धने, सित-रवी हिबुके (चतुर्थे) स्थितौ तदा जातको नरेन्द्रो भवति। तथा वक्रासितौ, शशिसुरेज्यसितार्कसौम्याः क्रमेण होरा-सुखाऽस्तशुभखाप्तिगतास्तदा जातकः प्रजेशो (राजा) भवति। अत्र वक्रा-सितौ (कुज-शनी) होरायामन्ये यथाक्रमेण यथापाठितस्थानस्थिता इत्यन्वयो ज्ञेयः ॥ १८ ॥

भा०—दशमभाव में चन्द्रमा, एकादश में शनि, लग्न में गुरु, द्वितीय भाव में बुध मङ्गल और चतुर्थभाव में शुक्र रवि हो तो इस योग में जातक राजा होता है। तथा मङ्गल शनि लग्न में, चन्द्रमा चतुर्थ में, गुरु सप्तम में, शुक्र नवमभाव में, रवि दशमभाव में और बुध एकादशभाव में हो तो जातक प्रजेश (राजा) होता है ॥ १८ ॥

राज्यलाभ का समय—

कर्मलग्नयुतपाकदशायां राज्यलब्धिरथ वा प्रबलस्य ।

शत्रुनीचगृहयातदशायां छिद्रसंश्रयदशा परिकल्प्या ॥१९॥

सं०—कर्मलग्नयुतपाकदशायां (जन्मसमये कर्मणि दशमभावे, लग्ने च युतः स्थितो यो ग्रहस्तस्य दशान्तर्दशासमये) राज्यलब्धिर्ज्ञेया । अथवा कर्मलग्नयोर्यदि बहवो ग्रहा अथवा ग्रहाभावस्तदा प्रबलस्य बलाधिकस्य ग्रहस्य दशान्तर्दशायां राज्यलब्धिः स्यात् । एवं शत्रुनीचगृहयातदशायां छिद्रसंश्रयदशा (छिद्रसंश्रयौ यस्यां सा छिद्रसंश्रया दशा) परिकल्प्या ज्ञेया । अर्थात् कर्मलग्नगतग्रहा यदि शत्रुगृहे स्वनीचे वा स्यात् तदा तद्दशा छिद्राख्या तत्र राज्यादिच्युतिर्वाच्या, तदाऽन्यसंश्रयणात्तत्प्राप्तिर्भवतीत्यर्थः ॥१९॥

भा०—जन्म समय में दशमभाव या लग्न में जो ग्रह हो उसकी दशा में राज्य की प्राप्ति होती है । दशम या लग्न में बहुत ग्रह हों तो उनमें जो अधिक बलवान् हो उसकी दशा अन्तर्दशा में, यदि दशम या लग्न में कोई ग्रह नहीं हो तो सब ग्रहों में जो बलवान् हो उसकी दशा में राज्यलाभ समझना चाहिये । यदि दशम या लग्नगत ग्रह शत्रुराशि या नीच राशि का हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा में राज्य की हानि, अन्य राजाओं का संश्रय से राज्यप्राप्ति आदि कल्पना कर समझना चाहिये ॥१९॥

वि०—लग्नेश और दशमेश में अथवा दशमेश नवमेश में परस्पर सहयोग दृष्टि आदि सम्बन्ध हो तो उसकी दशा में अवश्य राज्यलाभ होता है । लघुपाराशरी देखिये ॥

गार्गि का वचन—"लग्नगः कर्मगो वा स्यादथवा प्रबलोऽपि यः ।
स स्यात्स्वान्तर्दशाकाले राज्यदो नाऽत्र संशयः ॥
नीचारिगृहसंस्थस्य दशायां प्रबलस्य च ।
च्युतिर्वा बलहीनस्य तन्मोक्षः परसंश्रयात् ॥" इति ॥१९॥

भोगी और चोरों के सरदार होने के योग—

गुरुसितबुधलग्ने सप्तमस्थेऽर्कपुत्रे
वियति दिवसनाथे भोगिनां जन्म विद्यात् ।

शुभबलयुतकेन्द्रैः क्रूरभस्थैश्च पापै-
र्व्रजति शबरदस्युस्वामितामर्थभाक् च ॥२०॥

इति श्रीवराहमिहिरविरचिते बृहज्जातके राजयोगाऽध्यायः॥११॥

सं०—गुरुसितबुधलग्ने (यस्मिन् कस्मिन्नपि लग्ने गुरुशुक्रबुधयुते) अर्कपुत्रे सप्तमस्थे, दिवसनाथे सूर्ये वियति (दशमस्थे सति) भोगिनां (सुखिनां भोगवतां) जन्म विद्यात् (जानीयात्) । तथा शुभबलयुतकेन्द्रैः (शुभराशिगतसबलशुभग्रहयुतकेन्द्रैः) पापैश्च क्रूरभस्थैः (पापराशिगतैः). यस्य जन्म भवति स शबरदस्युस्वामितां व्रजति । अर्थभाक् च (धनयुक्तश्च) भवति ॥ २० ॥

भा०—किसी भी लग्न में बुध गुरु और शुक्र हो, सप्तम स्थान में शनि, दशम स्थान में रवि हो तो ऐसे योग में उत्पन्न मनुष्य भोगी (सुख भोगने वाला) होता है । तथा शुभराशिगत शुभग्रह केन्द्र में हों और पापग्रह क्रूर राशियों में जिस किसी स्थान में हो तो ऐसे योग में जन्म लेनेवाला चोर डाकू आदि का सरदार होता है; तथा धनी भी होता है ॥२०॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके राज्ययोगाध्यायः ॥११॥

अथ नाभसयोगाध्यायः ॥१२॥

इस अध्याय में योगों के ४ विकल्प हैं । यथा आकृतियोग, संख्यायोग, आश्रययोग और दलयोग इन में दो और तीन एवं चारों विकल्प मिलकर कितनी योगसंख्या है ? सो कहते हैं--

नवदिग्वसवस्त्रिकाग्निवेदैर्गुणिता द्वित्रिचतुर्विकल्पजाः स्युः ।
यवनैस्त्रिगुणा हि षट्शती सा कथिता विस्तरतोऽत्र तत्समासः ॥

सं०—नवदिग्वसवः क्रमेण त्रिकाग्निवेदैर्गुणिता द्वित्रिचतुर्विकल्पजा योगाः स्युः, त्रिगुणितनवसंख्या द्विविकल्पजाः, त्रिगुणितदशसंख्यात्रिविकल्पजा-

श्चतुर्गुणितवसुसंख्याश्चतुर्विकल्पजा योगा अस्मिन्नध्याये सन्तीत्यर्थः । यवनैः (पुराणयवनाचार्यैः) या षट्शती सा त्रिगुणाऽष्टादशशततुल्या विस्तरतः कथिता, अत्र तु सत्समासः॰तत्संक्षेपः कृतः ॥ १ ॥

भा०--(इस अध्याय में योगों के जो ४ विकल्प हैं उनमें) २ विकल्प मिलकर ३ × ९ = २७ सत्ताइस । तीन विकल्प मिलकर ३ × १० = ३० तीस, चारों विकल्प मिलाकर ८ × ४ = ३२ बत्तीस योग मात्र कहे गये हैं । पुराण यवनों ने तो इसके १८०० भेद कहे हैं । हमने यहाँ उन्हीं को संक्षेप में कह दिये हैं ॥ १ ॥

वि०—आकृतियोग २०, संख्यायोग ७, आश्रय योग ३ और दलयोग २, इनमें दो विकल्प मिलकर २७, तीन मिलकर ३०, और चारों मिलकर ३२ होते हैं, जो आगे कहे गये हैं ।

पुराण यवनाचार्यों के आकृतियोग २३ और ७ ग्रहों से एकद्वित्र्यादि-विकल्प से "एकाद्येकोत्तरा अङ्का व्यस्ता भाज्याः क्रमस्थितैः । परः पूर्वेण संगुण्य तत्परस्तेन तेन च ॥" इत्यादि पाटीगणित रीति से, अथवा 'पूर्वेण पूर्वेण गतेन युक्तं स्थानं विनाऽन्ये प्रवदन्ति संख्याम् । इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः" इत्यादि वराहसंहितोक्त भेदानयन विधि से एकादि सप्तपर्यन्त कुल भेद १२७ होते हैं । एवं संख्यायोग और आकृतियोग दोनों मिलाकर १५०, भेद हुए । एक लग्न में १५० तो १२ लग्न में कितने ? इस अनुपात से १५० × १२ = १८०० योग के भेद होते हैं । परञ्च सबों का अन्तर्भाव वराहमिहिर कथित ३२ योगों में ही हो जाता है । इसलिये आचार्य यहाँ केवल मुख्य ३२ योग कहे हैं ।

वि०—आकाशस्थ द्वादश राशि चक्र में (लग्नादि द्वादश भाव में) ग्रहों की स्थिति से जैसी जिसकी आकृति होती है उसी प्रकार के फल भी उसका होता है । इसलिए तदनुसार २० योग आकृति नाम से कहे गये हैं ।

एवं चर, स्थिर और द्विस्वभाव के आश्रय से बनने के कारण ३ योग आश्रय नाम से कहे गये हैं ।

तथा—केन्द्र में शुभ और पाप की स्थिति से २ योग बनते हैं। इसलिये इन दोनों में प्रत्येक दल (अर्ध) योग कहे गये हैं।

तथा—ग्रहों की १ आदि राशि संख्या में स्थिति से ७ योग संख्या नाम से व्यवहृत हैं।

मैंने इस अध्याय में—ग्रन्थ विस्तर भय से सब योगों की आकृति न दिखलाकर कुछ योगों की आकृति भी यथा स्थान में दिखलायी है। जिससे सब योगों के नाम और फल की उपपत्ति बुद्धिमान् जनों की समझ में सहज ही आ सकती है ॥ १ ॥

रज्जु, मुसल और नल नामक ३ आश्रययोग—

रज्जुर्मुसलो नलश्चराद्यैः सत्यश्चाश्रयजाञ्जगाद योगान् ।
केन्द्रैः सदसद्युतैर्दलाख्यौ स्रक्-सर्पौ कथितौ पराशरेण ॥२॥

सं०—चराद्यैः (चरस्थिरद्विस्वभावराशिगतैः सर्वैर्ग्रहैः क्रमेण) रज्जुर्मुसलो नलश्चेति त्रयो योगाः अर्थात् सर्वग्रहैश्चरराशिस्थितै रज्जुः, स्थिरराशिगतैर्मुसलः, द्विस्वभावगतैश्च नलो नाम योगः, एतान् त्रीन् योगान् सत्यः (सत्याचार्यः) आश्रयजान् (आश्रयसंज्ञकान्) जगाद (उक्तवान्)। केन्द्रैः सदसद्युतैः (केवलसद्ग्रहयुतैर्वा केवलासद्ग्रहयुतैस्त्रिभिः केन्द्रस्थानैः, उभयथा) दलाख्यौ (दलसंज्ञौ) योगौ सत्यो जगाद। पराशरेण तु तौ क्रमेण स्रक्-सर्पौ कथितौ। शुभग्रहयुतकेन्द्रैर्यो दलयोगः स स्रक् (माला) नाम। पापग्रहयुतकेन्द्रैर्यो दलयोगः स सर्पो नाम भवतीत्यर्थः ॥ २ ॥

भा०—सब ग्रह चरराशि में हो तो रज्जुयोग, सब स्थिर में हों तो मुसलयोग, सब द्विस्वभाव में हों तो नलयोग होता है। इन तीनों को सत्याचार्य आश्रययोग कहे हैं। एवं यदि शुभग्रह (बुध, गुरु, शुक्र, ये तीनों) ३ केन्द्र स्थान में, वा पापग्रह (शनि, रवि, मङ्गल ये तीनों) ३ केन्द्र में हों तो ये दो प्रकार के दलयोग होते हैं। इन दलयोग को पराशर ने क्रम से माला और सर्प नाम से कहे हैं। अर्थात् शुभग्रह से युत केन्द्र हो तो माला और पापग्रह से युत हो तो सर्प ॥ २ ॥

वि०--यहाँ चर आदि के स्थान में किसी ने चारों चर, चारों स्थिर, चारों द्विस्वभाव ऐसा अर्थ किया है। परञ्च वह मुनि-वचनों से विरुद्ध है। यथा भगवान् गार्गि--

"एको द्वौ वा त्रयः सर्वे, चरा युक्ता ग्रहैर्यदा।
चरयोगस्तदा रज्जुः शीर्ष्याणां जन्मदो भवेत् ॥" इत्यादि ॥

तथा दल योग में चन्द्रमा को शुभ और अशुभ दोनों से भिन्न समझ कर छोड़ दिया गया है। क्योंकि चन्द्रमा में स्वाभाविक शुभत्व सर्वदा नहीं रहता है। पापसाहचर्य से पापत्व आता है। यथा भगवान् गार्गि—

"त्रिकेन्द्रगैर्यमारार्कैः सर्पो दुःखितजन्मदः।
भोगिजन्मप्रदा माला तद्वज्जीवसितेन्दुजैः ॥"इति॥

यहाँ भी केन्द्र में केवल शुभ या केवल पापग्रह से ही दल्योग होता है। यथा बादरायण—

"केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञजीवैः केन्द्रत्रिसंस्थैः कथयन्ति मालाम्।
सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमाऽऽर-सूर्यैर्योगाविमौ द्वौ कथितौ दलाख्यौ ॥"इति॥

कितने आचार्य आश्रय और दल्योग पृथक् नहीं कहे हैं उसका कारण—

योगा व्रजन्त्याश्रयजाः समत्वं यवाब्जवज्राण्डजगोलकाद्यैः।
केन्द्रोपगैः प्रोक्तफलौ दलाख्यावित्याहुरन्ये न पृथक्फलौ तौ ॥

सं०--पूर्वोक्ता आश्रयजा योगाः यवाब्जवज्राण्डजगोलकाद्यैर्योगैः समत्वं व्रजन्ति (यववज्राद्यन्तर्गता एव भवन्तीत्यर्थः) तथा केन्द्रोपगैः (सदसद्-ग्रहैः) यौ प्रोक्तफलौ दलाख्यौ योगौ—तौ 'अपि' पृथक्फलौ भिन्नफलौ न (अर्थात् तावपि यववज्रादिभिः समत्वमेव व्रजतः) इत्यन्ये आहुः। अतस्तैः पृथक् आश्रययोगत्रयं, दल्योगद्वयं नोक्तमित्यर्थः ॥३॥

भा०--ये तीनों आश्रययोग—यव, कमल, वज्र, विहग, गोल इत्यादि योग जो आगे कहे जायँगे उन्हीं के सदृश (अर्थात् उन्हीं लक्षणों से युक्त होने के कारण उहीं योगों के अन्तर्गत) होते हैं। तथा केन्द्रों में शुभाशुभ

ग्रह होने से जो दो दल योग कहे गये हैं वे भी यवादि योग से पृथक् फल देनेवाले नहीं हैं, ऐसा अन्याचार्यों ने कहा है ॥ ३ ॥

वि०—जब अन्य कितने आचार्यों ने आश्रय और दल्योग नहीं कहे तो फिर वराहमिहिर ने क्यों कहे ? इसका कारण स्वयं आगे कहेंगे ॥ ३ ॥

[आकृति के भेद] गदा, शकट, विहग, शृङ्गाटक और हलयोग—

आसन्नकेन्द्रभवनद्वयगैर्गदाख्य-
स्तन्वस्तगेषु शकटं विहगः खबन्ध्वोः ।
शृङ्गाटकं नवमपञ्चमलग्नसंस्थै-
र्लग्नान्यगैर्हलमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥४॥

सं०—आसन्नकेन्द्रभवनद्वयगैः (निकटस्थितकेन्द्रस्थानद्वयस्थितैः सर्वैर्ग्रहैश्चतुर्विधः) गदाख्यो योगो भवति । तथा तन्वस्तगेषु सर्वेषु ग्रहेषु शकटं (शकटनामा योगः) भवति । खबन्ध्वोः (दशम–चतुर्थयोः सर्वेषु ग्रहेषु) विहगो नाम योगो भवति । नवमपञ्चमलग्नसंस्थैः सर्वग्रहैः शृङ्गाटकं नाम योगो भवति । इति (एवं) लग्नान्यगैः (लग्नादन्यस्थानात्, परस्परत्रिकोणस्थानगतैः) सर्वग्रहैः हलं हलाख्यं योगं तज्ज्ञाः प्रवदन्ति ॥ ४ ॥

भा०—समीपस्थ दो दो केन्द्र (यथा लग्न चतुर्थ, चतुर्थ सप्तम, सप्तम दशम, दशम लग्न) में सब ग्रह पड़ें तो गदा नामक योग होता है। तथा लग्न सप्तम में सब ग्रह हो तो शकट, और दशम चतुर्थ में सब ग्रह हो तो विहग (पक्षी) योग होता है। तथा लग्न पञ्चम और नवम (इन त्रिकोण) में सब ग्रह हो तो शृङ्गाटक योग होता है। इस प्रकार लग्न से भिन्न (२, ३, इनमें किसी) स्थान से यदि परस्पर त्रिकोण में सब ग्रह पड़े तो हल नामक योग होता है ॥४॥

वि०—समीप के दो दो केन्द्र में ग्रहों के होने से पुराण यवनाचार्य ने ४ नाम से चार योग कहे हैं। जैसे (१) लग्न चतुर्थ में गदा। चतुर्थ

सप्तम में शङ्ख, सप्तम दशम में बभ्रु, दशम लग्न में सब ग्रह हो तो ध्वज-नामक योग होता है। इस लिये उनके मत में आकृति योग २३ होते हैं। वराहमिहिर ने इन चारों का नाम 'गदा' ही रक्खा है; इसलिये इनके मत में २० आकृति योग हैं॥

इस प्रकार पुराणयवनादि आचार्यों ने केन्द्रस्थित ग्रहों से आकृति योगों के भेद कहे हैं। उनमें आसन्न केन्द्रद्वय में सब ग्रहों से गदा। एकान्तर केन्द्रद्वय (लग्न सप्तम, वा चतुर्थ दशम) में सब ग्रहों से शकट। तथा ३ केन्द्र में केवल शुभग्रहों से माला, और ३ केन्द्र में केवल पापग्रहों से सर्प योग कहे हैं। उसी प्रकार एकान्तर केन्द्रद्वय (लग्न सप्तम) में केवल शुभग्रह, और चतुर्थ दशम में केवल सब पापग्रहों से दो प्रकार से वज्रयोग कहे हैं। तथा इसके विपरीत स्थिति में अर्थात् लग्न सप्तम में केवल सब पापग्रह हो वा चतुर्थ दशम में सब शुभ ग्रह हो तो यव योग होता है।

केन्द्रत्रयगतैः पापैः सौम्यैर्वा दलसंज्ञितौ।
द्वौ योगौ सर्पमालाख्यौ विनष्टेष्टफलप्रदौ॥
वज्रं लग्नास्तगैः सौम्यैः पापखेटैः ख-बन्धुगैः।
यवस्तु विपरीतस्थैः मिश्रस्थैः कमलं स्मृतम्॥ इत्यादि॥

यहाँ जैसे दलयोग में पृथक् पाप और शुभ ग्रहों से विकल्प है उसी प्रकार वज्र और यव योग में भी पृथक् पाप और शुभ ग्रहों से विकल्प समझना चाहिये।

परञ्च वराहमिहिर ने सहसा—"लग्न सप्तम में सब शुभ, और दशम चतुर्थ में सब पाप एक साथही हो तो वज्र योग होता है" इस प्रकार अर्थ कल्पना करके उसी आधार पर वज्रयोग के लक्षण लिखकर, फिर खुदही आगे इसमें दोष भी देते हैं कि इस प्रकार का वज्र और यव योग हो नहीं सकता।

वज्र, यव, कमल और वापी योग—

शकटाण्डजवच्छुभाशुभैर्वज्रं तद्विपरीतगैर्यवः ।
कमलं तु विमिश्रसंस्थितैर्वापी तद्यदि केन्द्रबाह्यतः ॥ ५ ॥

सं०—शकटाण्डजवत् शुभाशुभैः (शकटवत् लग्नसप्तमगतैः शुभैः, अण्डजवत् दशमचतुर्थगतैरशुभैः) वज्रं वज्रनामा योगो भवति। तद्विपरीतगैः (शकटवत् लग्नसप्तमगतैः पापैः, अण्डजवत् दशमचतुर्थगैः शुभैः) यवः (यवनामा योगो) भवति । विमिश्रसंस्थितैस्तु कमलं नाम योगो भवति । तद् (कमलं) यदि केन्द्रबाह्यतो भवत्यर्थात् चतुर्षु पणफरेषु वा चतुर्ष्वापोक्लिमेषु शुभाशुभग्रहा मिश्रिता एव स्थितास्तदा वापीनाम योगो भवति ॥५॥

भा०—यहाँ वराहमिहिर का आशय है कि—सब शुभ ग्रह शकटवत् (लग्न और सप्तम में) हो तथा सब पापग्रह विहगवत् (दशम चतुर्थ में) हो तो वज्रयोग होता है । इससे विपरीत अर्थात् सब पाप ग्रह लग्न सप्तम में और सब शुभ ग्रह दशम चतुर्थ में हो तो यवयोग होता है । और पाप शुभ ग्रह दोनों मिलकर ही केन्द्र में हों तो कमलयोग, और मिश्रित सर्व ग्रह यदि केन्द्र से भिन्न स्थान में (अर्थात् सब पणफर या आपोक्लिम में ही) हो तो दोनों हालत में वापी नामक योग होता है ॥ ५ ॥

वि०—इस प्रकार वराहमिहिराचार्य का आशय असङ्गत है । जो स्वयं आगे श्लोक में प्रकट करते हैं । इसलिये यहाँ वैकल्पिक अर्थ किया जाय तो प्राचीनाचार्य और वराहमिहिर के वाक्य सङ्गत हो जाते हैं । यथा—

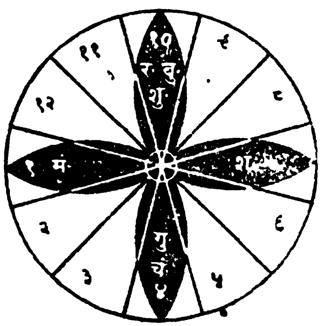
सं०—"शकटाण्डजवच्छुभाशुभैः (शकटवच्छुभैः, अण्डजवदशुभैर्वा स्थितैर्वज्रं वज्रयोगः) तद्विपरीतस्थितैर्यवो भवति । इति

भा०—शकटवत् (लग्न सप्तम में सब शुभ ग्रह, अथवा दशम चतुर्थ में सब पाप ग्रह हो तो वज्रयोग) और इससे विपरीत अर्थात् लग्न सप्तम में सब पाप अथवा दशम चतुर्थ में सब शुभ ग्रह हो तो यवयोग होता है । इस प्रकार अर्थ निर्दुष्ट होता है ॥ ५ ॥

(१) इसकी उपपत्ति—संक्षेप में यह है कि वज्रयोग में पूर्व और पश्चिम (१।७) केन्द्र में सब शुभ ग्रह पड़ते हैं। इसलिये आदि (पूर्ववयस) और अन्त (पश्चिम वयस) में अपना शुभ फल देते हैं। इन्द्र के वज्र की आकृति ऐसी है कि उसके दोनों भाग (मूल और अग्र) में समान शक्ति रहती है। इसलिये आदि और अन्त में फल देने के कारण ही इसका नाम वज्र रक्खा गया।

(२) एवं मध्य केन्द्र (४।१०) में सब शुभ ग्रह के रहने से मध्य वयस में ही शुभ फल होता है। आदि अन्त में नहीं। इसलिये इसका नाम यव रक्खा गया क्योंकि यव के मध्य भाग ही पुष्ट होता है। दोनों योगों के आचार्योक्त फलों को आगे १४ वें श्लोक में देखिए ॥ ५ ॥

कमलयोग—



अब आचार्य अपने कल्पित अर्थ के अनुसार प्राचीनाचार्यों के वाक्य में दोष बतलाते हैं—

पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः ।
चतुर्थे भवने सूर्याज्ज्ञ-सितौ भवतः कथम् ॥ ६ ॥

सं०—पूर्वशास्त्रानुसारेण (पूर्वेषां मय-यवन-मणित्थादीनां मतानुसारेण) मया वज्रादयो योगाः कृताः कथिताः। वस्तुतः सूर्यात् चतुर्थे भवने ज्ञ-सितौ

(बुध-शुक्रौ) कथं भवतः (न कथमपि ? भवितुमर्हत इत्यर्थः) ।

सूर्यात्—चतुर्थस्थानस्थितयोरेव बुध-शुक्रयोर्वज्र-यवयोगयोः सिद्धिः, परञ्च सूर्यात् चतुर्थस्थाने तयोः स्थितिरसम्भवा, यतो मध्यमबुधशुक्रौ मध्यम-सूर्यतुल्यावेव । तथा बुध-सूर्ययोः शुक्रसूर्ययोर्वा परमफलयोर्योगो राशिद्वयाल्प एवाऽतः सूर्यात् तयोः परमान्तरस्य सर्वदा राशिद्वयाल्पतैवेति वराह-मिहिराशयः ॥ ६ ॥

भा०—मय, यवन, मणित्थ आदि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ में देखकर मैंने भी वज्र आदि योग के लक्षण कहे हैं । वास्तव में-वज्र और यव योग में तो सूर्य से चतुर्थ स्थान में बुध और शुक्र पड़ते हैं यह किस प्रकार हो सकता है । अर्थात् इस प्रकार का योग कभी हो ही नहीं सकता है ॥६॥

वि०—वराहमिहिराचार्य ने-"लग्नास्तगतैः सौम्यैः" इत्यादि पूर्वाचार्योक्त वज्र, यव योग के लक्षण में विकल्प नहीं समझकर मनमाना अर्थ किया कि—'लग्न सप्तम में बुध गुरु शुक्र और चतुर्थ दशम में शनि रवि मङ्गल हो तो वज्र योग होता है' इस प्रकार उन के मन में फिर आशंका हुई कि-यह योग किस प्रकार हो सकता है ? क्योंकि इसमें तो सूर्य से चतुर्थ स्थान में बुध और शुक्र पड़ता है, जो सिद्धान्त गणित से सर्वथा असम्भव है । यतः सूर्य से बुध और शुक्र का परम अन्तर २ राशि से अल्प ही सदा रहता है । इसी आशङ्का से इस विषय को यहां कह कर अपने दोष को पूर्वाचार्यों के मत्थे मढ़ दिया । वराहमिहिर के समय में उनसे बढ़कर कोई ज्योतिषी नहीं था, इस लिये इस बात को सबने मान लिया । उसके बाद भी भट्टोत्पल आदि टीकाकारों ने भी इस पर ध्यान न देकर वराहमिहिर के अर्थ का ही समर्थन कर दिया । परञ्च पण्डितों को चाहिये कि—

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥"

इस नीति को मन में रख कर जिस प्रकार सङ्गति हो उस प्रकार का ही अर्थ शास्त्रों का ग्रहण करे ॥६॥

यूप, शर, शक्ति और दण्ड योग—

कण्टकादिप्रवृत्तैस्तु चतुर्गृहगतैर्ग्रहैः।
यूपेषु-शक्ति-दण्डाख्या होराद्यैः कण्टकैः क्रमात् ॥७॥

सं०—होराद्यैः कण्टकैः (लग्नप्रभृतिचतुर्भिः केन्द्रैः) कण्टकादिप्रवृत्तैश्चतुर्गृहगतैः समस्तग्रहैः क्रमात् यूपेषुशक्तिदण्डाख्या योगा भवन्ति। तद्यथा लग्नादिचतुर्गृहगतैः सर्वग्रहैः यूपः, चतुर्थादिचतुर्गृहगतैरिषुः (शरः), सप्तमादिचतुर्गृहगतैः शक्तिः, दशमादिचतुर्गृहगतैर्दण्डयोगो भवति ॥७॥

भा०—लग्न से आरम्भकर चतुर्थ पर्यन्त चारो स्थान में सब ग्रह हो तो यूपयोग, चतुर्थ से सप्तम पर्यन्त चारो राशि में सब ग्रह हो तो शर योग, सप्तम से दशम पर्यन्त चारो घर में सब ग्रह हों तो शक्तियोग और दशम से लग्न पर्यन्त चारो भाव में सब ग्रह हो तो दण्ड नामक योग होता है ॥७॥

नौका, कूट, छत्र और चाप और अर्द्ध चन्द्रयोग—

नौकूटच्छत्रचापानि तद्वत्सप्तर्क्षसंस्थितैः।
अर्द्धचन्द्रस्तु नावाद्यैः प्रोक्तस्त्वन्यर्क्षसंस्थितैः ॥ ८ ॥

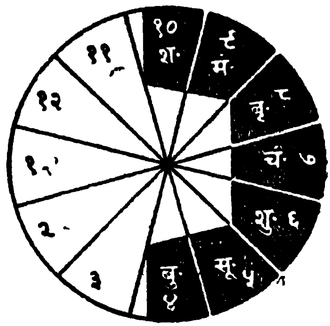
सं०—तद्वत् (पूर्ववत् कण्टकादिप्रवृत्तैः) सप्तर्क्षसंस्थितैः सर्वग्रहैः नौ-कूट-च्छत्र-चापानि भवन्ति। लग्नादिसप्तमस्थानस्थितैर्ग्रहैर्नौयोगः, चतुर्थादिदशमावधिस्थितैः कूटयोगः, सप्तमादिलग्नावधिसप्तस्थान-स्थितैश्छत्रयोगः, दशमादिचतुर्थावधिस्थितैः सप्तग्रहैश्चापयोगो भवतीत्यर्थः। अन्यर्क्षसंस्थितैः (अन्यर्क्षे कण्टकभिन्नं=पणफरमापोक्लिमं वाऽऽरभ्य सप्तस्थानस्थितैः सप्तग्रहैस्तु) अर्धचन्द्रः प्रोक्तः ॥८॥

भा०—पूर्वोक्त रीति से लग्न से आरम्भ कर सप्तम पर्यन्त सातो स्थान में सातो ग्रह हो तो नौका योग, चतुर्थ से दशम पर्यन्त सातो स्थान में सब हों तो कूटयोग, सप्तम से लग्नपर्यन्त सातो स्थान में ग्रह हों तो छत्रयोग और दशम से चतुर्थपर्यन्त सातो स्थान में ग्रह हों तो चापयोग होता है। एवं केन्द्र से भिन्न (पणफर या आपोक्लिम) स्थान से आरम्भ कर ७ स्थान पर्यन्त प्रति स्थान में सब ग्रह हो तो अर्धचन्द्र नामक योग होता है ॥८॥

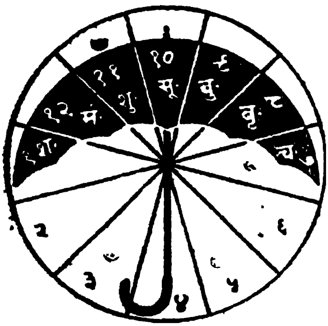
१ नौकायोग



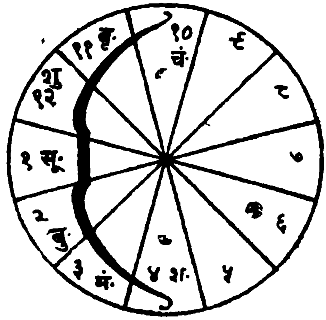
२ कूटयोग



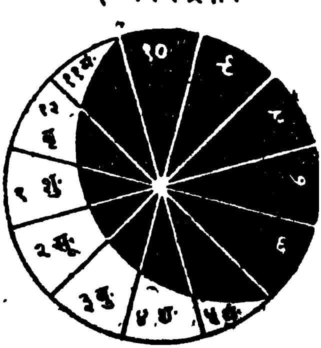
३ छत्रयोग



४ चापयोग



५ अर्धचन्द्रयोग



समुद्र और चक्रयोग—

एकान्तरगतैरर्थात् समुद्रः षड्गृहाश्रितैः ।
विलग्नादिस्थितैश्चक्रमित्याकृतिजसङ्ग्रहः ॥९॥

सं०—अर्थात् (द्वितीयभावादारभ्य) एकान्तरगतैः षड्गृहाश्रितैः सर्वग्रहैः समुद्रः (समुद्रनामा योगः) कथितः । विलग्नादिस्थितैः (लग्नमारभ्यैकान्तरेण षड्गृहाश्रितैः सर्वग्रहैः) चक्रम् (चक्रसंज्ञो योगो) भवति । इत्येवं आकृतिजसङ्ग्रहः (आकृत्या = आकारेण जातानां योगानां संग्रहो विंशतिसंख्याकः) कथितः ॥ ९ ॥

भा०—द्वितीय भाव से आरम्भ कर एक अन्तर करके छहो समभाव (२।४।६।८।१०।१२) में यदि सब ग्रह हों तो समुद्रयोग होता है । एवं लग्न से आरम्भ कर एकान्तर से छहो विषम (१।३।५।७।९।११) भाव में सब ग्रह प्रतिस्थान में हों तो चक्रयोग होता है । इस प्रकार आकृतियोग का सङ्ग्रह यहाँ किया गया है ॥ ९ ॥

वि०—आकृति (आकार) के अनुसार जिस योग का जो नाम रक्खा गया वह आकृतियोग कहलाता है । यहां गदा से लेकर चक्रपर्यन्त २० प्रकार के आकृतियोग कहे गये हैं ॥ ९ ॥

अब ७ प्रकार के संख्यायोग कहते हैं—

संख्यायोगाः स्युः सप्त सप्तर्क्षसंस्थैरेकापायाद्वल्लकी दामनी च ।
पाशः केदारः शूलयोगो युगश्च गोलश्चान्यान् पूर्वमुक्तान् विहाय॥

सं०—सप्तर्क्षसंस्थैः सप्तभिर्ग्रहैरेकापायात् (एकैकस्थानह्रासादर्थात् सप्त-षट्-पञ्च-चतुस्त्रिद्व्येकस्थानेषु स्थितैर्ग्रहैः) सप्त संख्यायोगाः स्युः । ते क्रमेण वल्लकी, दामनी, पाशः, केदारः, शूलयोगः, युगं, गोलश्चेति ज्ञेयाः । यथा सर्वे ग्रहाः सप्तसु स्थानेषु तदा वल्लकी, षट्स्थानेषु दाम, पञ्चसु स्थानेषु पाशः, चतुर्षु स्थानेषु केदारः, त्रिषु शूलयोगः, द्वयोः स्थानयोः युगं, एकस्मिन् स्थाने सर्वे ग्रहाश्चेत् तदा गोलो नाम योगः स्यात् । परञ्चैते योगाः पूर्वमुक्ता-

नन्यान् (नौकूटादियोगान्)* विहाय ज्ञेयाः । यत्र संख्यायोगे नौकूटादिलक्षणं प्राप्तं तत्र तत्तन्नामैव योगो ग्राह्य इत्यर्थः ॥ १० ॥

भा०—यदि सात स्थानों में सातो ग्रह हों तो वल्लकी (वीणा) योग, तथा ६ स्थान में सातो ग्रह हों तो दामयोग, पांच स्थान में सब ग्रह हों तो पाश, ४ स्थान में सब ग्रह हों तो केदारयोग, ३ स्थान में सब ग्रह हों तो शूल, २ स्थान में सब ग्रह हों तो युगनामक योग और एक ही स्थान में सब ग्रह हों तो गोलनामक योग होता है। एवं सात प्रकार के संख्यायोग कहे गये हैं। परञ्च इस संख्यायोग में यदि पूर्व कथित यूप, इषु आदि वा नौकूट आदि योगों का लक्षण हो तो वहां संख्यायोग नहीं समझ कर पूर्वोक्त लक्षण-वाला नौकूट आदि नामक आकृति योग ही समझना चाहिये ॥१०॥

वि०—लग्न से सप्तम पर्यन्त सातो स्थान में ग्रह हो तो यहां संख्यायोग वल्लकी नामक होता है। तथा नौका नामक आकृति योग का लक्षण भी प्राप्त होता है, अतः इस स्थिति से नौकायोग ही समझना, वल्लकी नहीं इत्यादि अन्यत्र भी समझना ॥ १० ॥

अब पूर्वोक्तयोगों के फल कहते हैं। उनमें प्रथम रज्जु, मुसल, नल, माला और सर्पयोगों के फल—

ईर्ष्युर्विदेशनिरतोऽध्वरुचिश्च रज्ज्वां
मानी धनी च मुसले बहुकृत्यशक्तः।
व्यङ्गः स्थिराढ्यनिपुणो नलजः स्रगुत्थो
भोगान्वितो भुजगजो बहुदुःखभाक् स्यात् ॥११॥

सं०—रज्ज्वां (रज्जुयोगे) जातो जन ईर्ष्युः (मत्सरयुतः) विदेश-निरतः, अध्वरुचिः (पर्यटनशीलो) भवति। मुसले जातः मानी, धनी, बहुकृत्यसक्तश्च भवति। नलजः (नलयोगोत्पन्नः) व्यङ्गस्थिराढ्यनिपुणः (व्यङ्गोऽङ्गहीनः, स्थिरो दृढप्रतिज्ञः, आढ्यो धनवान्, निपुणः सर्वकार्य-

कुशलो) भवति । स्रगुत्थः (मालायोगोत्पन्नः) भोगान्वितो भवति । भुजगजः (सर्पयोगोद्भवः) बहुदुःखभाक् स्यात् ॥ ११ ॥

भा०—रज्जुयोग में जन्म लेने वाला ईर्ष्यावान्, विदेश में रहने वाला, भ्रमणशील होता है । मुसलयोग में मानी, धनवान् और अनेक कार्य को आरम्भ करने वाला होता है । नलयोग में अङ्गहीन, दृढ़ निश्चय, और सब कार्यों में कुशल होता है । मालायोग में भोगी और सर्पयोग में उत्पन्न मनुष्य दुःखभागी होता है ॥ ११ ॥

आश्रयोक्त (रज्जु, मुसल और नल) योगों की विशेषता—

आश्रयोक्तस्तु विफला भवन्त्यन्यैर्विमिश्रिताः ।
मिश्रा यैस्ते फलं दद्युरमिश्राः स्वफलप्रदाः ॥१२॥

सं०—आश्रयोक्ताः (रज्जु-मुसल-नलाख्याः) योगास्तु अन्यैर्योगैर्विमिश्रिताः सन्तो विफला भवन्ति । यैर्मिश्रास्ते एव योगाः फलं दद्युः । यदि—आश्रययोगा अमिश्राः (अन्यलक्षणहीनाः स्वलक्षणयुतास्तदा) स्वफलप्रदा भवन्ति ॥ १२ ॥

भा०—आश्रय (रज्जु, मुसल, नल) योग में यदि अन्य (आकृति आदि) योगों का लक्षण प्राप्त हो तो आश्रययोग का फल नहीं होता है, जिस अन्ययोग के लक्षण से युक्त होता है उसी योग का फल होता है । यदि अन्य लक्षणों से युक्त नहीं होता है तब ही आश्रययोग अपना फल देता है ॥ १२ ॥

वि०—जैसे चारों चर में सब ग्रह हो और चर लग्न भी हों तो रज्जु का भी लक्षण प्राप्त है तथा कमलयोग का भी लक्षण प्राप्त है । इस लिये यहां कमल का ही फल होगा, रज्जु का नहीं । यदि चर में सब ग्रह हो और स्थिर या द्विस्वभाव लग्न हो तो उस हालत में रज्जु का फल होगा ॥१२॥

गदा, शकट, विहग, शृङ्गाटक और हल योग के फल—

यज्वार्थभाक् सततमर्थरुचिर्गदायां

तद्वृत्तिभुक्छकटजः सरुजः कुदारः ।
दूतोऽटनः कलहकृद्विहगे प्रदिष्टः
शृङ्गाटके चिरसुखी कृषिकृद्धलाख्ये ॥१३॥

सं०— गदायां जातः यज्वा यज्ञकृत्, अर्थभाक् धनवान्, सततं अर्थरुचिः धनोपार्जनतत्परो भवति । शकटजस्तद्वृत्तिभुक् (तद्वृत्त्या शकटवृत्त्या भुंक्ते इति तद्वृत्तिभुक्) स-रुजः (रोगसहितः), कुदारः कु-स्त्रीको भवति । विहगे जातो दूतः, अटनो भ्रमणशीलः, कलहकृच्च भवति । शृङ्गाटके चिरसुखी (चिरेण बहुकालेन सुखी वयोऽन्ते सुखभाग्) भवति । हलाख्ये योगे कृषिकृद् भवति ॥ १३ ॥

भा०— गदायोग में उत्पन्न मनुष्य यज्ञ करने वाला, धनवान्, सर्वदा धनोपार्जन में तत्पर होता है । शकटयोग में उत्पन्न मनुष्य शकट (गाड़ी) से आजीविका करने वाला, रोगी, दुष्ट स्त्री वाला होता है । विहगयोग में दूत, भ्रमणशील, और कलहकारक होता है । शृङ्गाटकयोग में वयस के अन्त में सुखी होता है। और हलयोग में उत्पन्न मनुष्य खेती करने वाला होता है।

वज्र, यव, कमल और वापीयोगों के फल—

वज्रेऽन्त्यपूर्वसुखितः सुभगोऽतिशूरो
वीर्यान्वितोऽप्यथ यवे सुखितो वयोन्तः ।
विख्यातकीर्त्यमितसौख्यगुणश्च पद्मे
वाप्यां तनुस्थिरसुखो निधिकृन्न दाता ॥१४॥

सं०—वज्रे वज्रयोगे जातः अन्त्यपूर्वसुखितः (पूर्ववयसि, अन्त्ये वयसि च सुखयुक्तः) सुभगः, अतिशूरः, वीर्यान्वितश्च भवति । अथ यवे जातो वयोन्तः (वयसोऽन्तर्मध्ये वयसीत्यर्थः) सुखितो भवति । पद्मे (कमलयोगे) विख्यातकीर्त्यमितसौख्यगुणश्च भवति । वाप्यां (वापीयोगे) जातः तनुस्थिरसुखः (तनु स्वल्पं स्थिरञ्च सुखं यस्य स तथोक्तः), निधिकृत् (भूमौ धनस्थापनशीलः) भवति । किञ्च दाता न भवत्यर्थात् कदर्यो भवति ॥ १४ ॥

भा०—वज्रयोग में जन्म लेनेवाला अन्त्य और आदि वयस में सुखी होता है, अर्थात् युवावस्था में दुःखी रहता है, परन्तु सुन्दर, शूर और बलवान् होता है। यव योग में उत्पन्न मनुष्य वयस के मध्य में सुखी होता है। कमल योग में जन्म लेने वाला ख्यातकीर्ति, अतिशय सुख और बहुत गुणों से युक्त होता है। वापीयोग में उत्पन्न मनुष्य थोड़ा किन्तु स्थिर सुख से युक्त, धन को गाड़ रखने वाला हो, किन्तु किसी को एक पैसा देने वाला नहीं होता है ॥ १४ ॥

यूप, शर, शक्ति और दण्डयोगों के फल—

त्याग्यात्मवान् क्रतुवरैर्यजते च यूपे
हिंस्रोऽथ गुप्त्यधिकृतः शरकृच्छराख्ये।
नीचोऽलसः सुखधनैर्वियुतश्च शक्तौ
दण्डे प्रियैर्विरहितः पुरुषोऽन्त्यवृत्तिः ॥१५॥

सं०—यूपे जातस्त्यागी दाता, आत्मवान् स्थिरमनाः भवति, क्रतुवरैः श्रेष्ठयज्ञैश्च यजते। शराख्ये योगे जातो हिंस्रो वधरुचिः, गुप्त्यधिकृतः (कारागारस्वामी) शरकृत् (बाणाकारो) भवति। शक्तौ (शक्तियोगे) जातः नीचोऽलसः सुखधनैर्वियुतश्च भवति। दण्डे जातः पुरुषः प्रियैर्विरहितः, अन्त्यवृत्तिर्दासवृत्तिर्भवति ॥ १५ ॥

भा०—यूपयोग में जन्म लेनेवाला दाता, स्थिर बुद्धि, और उत्तम २ यज्ञ करनेवाला होता है। शरयोग में उत्पन्न हिंसक, जेलखाना का मालिक और शर बनानेवाला होता है। शक्तियोग में जातक नीच, आलसी, सुख धन से हीन होता है। और दण्डयोग में जन्म लेनेवाला अपने प्रियजनों से हीन और नौकरी करनेवाला होता है ॥ १५ ॥

नौ-कूट-छत्र और चापयोगों के फल—

कीर्त्या युतश्चलसुखः कृपणश्च नौजः
कूटेऽनृतप्रवनबन्धनपश्च जातः।

छत्रोद्भवः स्वजनसौख्यकरोन्त्यसौख्यः
शूरश्च कार्मुकभवः प्रथमान्त्यसौख्यः ॥१६॥

सं०—नौजः पुरुषः कीर्त्या युतश्चलसुखः कृपणश्च भवति। कूटे जातः अनृतप्लवनबन्धनपः (अनृते प्लवना मतिर्यस्य स चासौ बन्धनपः कारागारस्वामी) च भवति। छत्रोद्भवो मनुष्यः स्वजनसौख्यकरोऽन्त्यसौख्यश्च भवति। कार्मुकभवः (चापयोगोत्पन्नो नरः) शूरः, प्रथमान्त्यसौख्यश्च भवति ॥ १६ ॥

भा०—नौकायोग में उत्पन्न बालक कीर्ति से युक्त, चल सुखवाला (अर्थात् कभी सुख, कभी दुःख) और कृपण होता है। कूटयोग में उत्पन्न मिथ्याभाषी और कारागार का मालिक होता है। छत्रयोग में जातक अपने परिवार को सुख देनेवाला और अन्त वयस में सुख पानेवाला होता है। और धनुष (चाप) योग में जातक शूर और बाल्य तथा वार्धक्य वयस में सुखी होता है। अर्थात् मध्यवयस में दुःखी होता है ॥१६॥

अर्धचन्द्र, समुद्र, चक्र और वीणायोगों के फल—

अर्द्धेन्दुजः सुभगकान्तवपुः प्रधान-
स्तोयालये नरपतिप्रतिमस्तु भोगी।
चक्रे नरेन्द्रमुकुटद्युतिरञ्जिताङ्घ्रि-
र्वीणोद्भवश्च निपुणप्रियगीतनृत्यः ॥१७॥

सं०—अर्धेन्दुजः (अर्धचन्द्रयोगोद्भवो नरः) सुभगकान्तवपुः प्रधानः (सर्वजनमान्यः) भवति। तोयालये (समुद्रयोगे जातः) नरेन्द्रप्रतिमो (नीचकुलोत्पन्नोऽपि राजतुल्यो) भवति, राजकुलोत्पन्नस्तु राजाधिराजो भवतीत्यर्थादेव सिद्ध्यति। चक्रे जातो नरेन्द्रमुकुटद्युतिरञ्जिताङ्घ्रिः (भूपवृन्दवन्दितचरणः) भवति। वीणोद्भवश्च निपुणः कार्यवस्त्वज्ञः, प्रियगीतनृत्यो भवति ॥ १७ ॥

भा०—अर्धचन्द्रयोग में उत्पन्न मनुष्य सर्वजनप्रिय, सुन्दर कान्तियु

और प्रधान (सर्वमान्य) होता है। समुद्रयोग में उत्पन्न दरिद्रकुल का भी मनुष्य राजा के समान और भोगी होता है। चक्रयोग में उत्पन्न मनुष्य राजाओं से वन्दनीय (चक्रवर्ती राजा, अथवा विशिष्ट ज्ञानयुक्त होकर राजाओं का गुरु) होता है। वीणायोग में उत्पन्न मनुष्य सूक्ष्मबुद्धि और गान विद्या एवं नृत्य में प्रीति करनेवाला होता है ॥१७॥

दाम, पाश, केदार और शूलयोगों के फल—

दातान्यकार्यनिरतः पशुपश्च दाम्नि
पाशे धनार्जनविशीलसभृत्यबन्धुः।
केदारजः कृषिकरः सुबहूपयोज्यः
शूरः क्षतो धनरुचिर्विधनश्च शूले ॥१८॥

सं०—दाम्नि (दामयोगे जातः) दाताऽन्यकार्यनिरतः पशुपश्च भवति। पाशे जातः (धनार्जने विशीलः शीलरहित इति धनार्जनविशीलो भृत्यबन्धुभिः सहितो यः स तथोक्तः-असन्मार्गेण धनसंग्रहकर्ता) भवति। केदारजः (केदारयोगोत्पन्नः) कृषिकरः सुबहूपयोज्यः (बहुजनोपकारकर्ता) भवति। शूले जातः शूरः क्षतः (शस्त्रादिना क्षतशरीरो) धनरुचिः (धनप्रियः) परञ्च विधनो (धनरहितो) भवति ॥ १८ ॥

भा०—दामयोग में जन्म लेनेवाला दानी, परोपकारी और पशुओं का पालन करनेवाला होता है। पाशयोगोत्पन्न नौकर और बन्धुवर्ग सहित धन संग्रह करने में शील रहित होता है, अर्थात् वह लज्जा को त्याग करके अनीति से धन लाभ करता है। केदार योगोत्पन्न खेती करनेवाला और बहुतों का उपकारी होता है। और शूलयोग में उत्पन्न मनुष्य युद्धप्रिय, शस्त्र द्वारा क्षत शरीरवाला, धन की इच्छा करनेवाला किन्तु सदा धनहीन होता है ॥१८॥

युग और गोलयोग के फल—

धनविरहितः पाखण्डी वा युगे त्वथ गोलके
विधनमलिनोऽज्ञानोपेतः कुशिल्प्यलसोऽटनः।

इति निगदिता योगाः सार्द्धं फलैरिह नाभसा
नियतफलदाश्चिन्त्या ह्येते समस्तदशास्वपि ॥१९॥

सं०—युगे (युगयोगे जातो नरः) धनविरहितः, वा पाखण्डी (वेद-निन्दकश्च) भवति। 'वा' शब्दश्चात्र चार्थे प्रयुक्तश्छन्दोभङ्गभयात्। अथ गोलके (गोलयोगे जातः) विधनमलिनः, अज्ञानोपेतः, कुशिल्पी (निन्द्य-कर्मकर्ता), अलसः, अटनः (भ्रमणशीलः) भवति। इति (एवं) इह (अस्मिन् अध्याये) फलैः सार्धं निगदिताः (कथिताः) एते नाभसा योगा समस्तदशास्वपि नियतफलदाश्चिन्त्या विज्ञातव्याः ॥१९॥

भा०—युगयोग में धनहीन और वेदशास्त्रनिन्दक होता है। और गोलयोग में जन्म लेनेवाला निर्धन, मलिन शरीर, अज्ञानी, निन्द्यकर्म करने वाला, आलसी (कार्य करने में अक्षम) और व्यर्थ घूमनेवाला होता है। इस अध्याय में फल सहित जो नाभसयोग ३२ कहे गये हैं, ये समस्त दशा में (अर्थात् सर्वदा जीवन भर) निश्चित रूप से फलप्रद होते हैं ॥१९॥

वि०—यहाँ कहा गया है कि ये नाभसयोग समस्त दशा में फलप्रद होते हैं। परञ्च वज्रयोग का फल कहा गया है कि "पूर्व और अन्तिम वयस में सुखी होता है" एवं यव योग में—"मध्य वयसमात्र में सुखी होता है" तो फिर समस्त दशा में नियत फलप्रद कैसे हुआ ? इसका समाधान यह है कि जिस योग के लिये जो समय कहा गया है उस समय में उसका फल होता है। जिस योग का समय नहीं कहा गया है उसका फल सर्वदा होता है। क्योंकि ये योग सब ग्रहों के सम्बन्ध से होते हैं इस लिये सब ग्रहों की दशा में इन योगों का फल होना सम्भव है। जैसे माला योग में भोगी का जन्म लिखा है तो वह जीवन भर दरिद्र भी होकर भोग करने वाला होता है। तथा सर्पयोगोत्पन्न धनी भी हो तथापि सर्वदा क्लेशभागी बना रहता है। इत्यादि विचार कर समझना चाहिये ॥ १९ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके नाभसयोगाध्यायः ॥१२॥

———०———

अथ चन्द्रयोगाध्यायः ॥१३॥

अधम, सम, उत्तमयोगः—

अधमसमवरिष्ठान्यर्ककेन्द्रादिसंस्थे
शशिनि विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि ।
अहनि निशि च चन्द्रे स्वेऽधिमित्रांशके वा
सुरगुरुसितदृष्टे वित्तवान् स्यात्सुखी च ॥१॥

सं०—शशिनि (चन्द्रे) अर्ककेन्द्रादिसंस्थे अर्कात् केन्द्र-पणफरा-पोक्लिमस्थे सति) जातस्य विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि (विनयो नीतिः सुशी-लता, वित्तं धनम्, ज्ञानं शास्त्रबोधः, धीर्बुद्धिः, नैपुणं कार्यकौशलम्, एतानि) क्रमेण अधम-सम-वरिष्ठानि (निकृष्ट-मध्यमोत्तमानि) भवन्ति । अर्कात् केन्द्रस्थे चन्द्रे विनयादीनि अधमानि, पणफरस्थे मध्यमानि, आपोक्लिमस्थे चोत्तमानि भवन्तीत्यर्थः । चन्द्रे स्वेऽधिमत्रांशके स्थिते अहनि, निशि च यथाक्रमं सुरगुरुसितदृष्टे स्वे नवांशे, अधिमित्रनवांशे वा स्थिते चन्द्रे (दिने गुरुदृष्टे, रात्रौ शुक्रदृष्टे सति) जातको वित्तवान् सुखी च भवति ॥ १ ॥

भा०—चन्द्रमा यदि सूर्य से केन्द्र (१।४।७।१०) स्थान में हो तो शील, धन, शास्त्रज्ञान, बुद्धि और कार्य निपुणता ये सब निकृष्ट = अधम (अल्प) होते हैं । यदि पणफर (२।५।८।११) स्थान में सूर्य से हो तो उपरोक्त बिनय धन आदि मध्यम मान से होते हैं । यदि सूर्य से आपोक्लिम (३।६।९।१२) स्थान में चन्द्रमा हो तो जातक के उपरोक्त शील धन आदि उत्तम होते हैं । तथा चन्द्रमा अपने नवांश या अधिमित्र के नवांश में हो तथा दिन में गुरु से और रात्रि में शुक्र से दृष्ट हो तो जन्म लेनेवाला धनवान् और सुखी होता है ॥ १ ॥

अधियोग और उसका फल—

सौम्यैः स्मरारिनिधनेष्वधियोग इन्दो-
स्तस्मिंश्चमूप-सचिव-क्षितिपालजन्म ।
सम्पन्नसौख्यविभवा हतशत्रवश्च
दीर्घायुषो विगतरोगभयाश्च जाताः ॥२॥

सं०—इन्दोश्चन्द्रात् सौम्यैः शुभग्रहैः (बुध-गुरु-शुक्रैः) स्मरारि-निधनेषु (सप्तमषष्ठाष्टमेषु स्थानेषु स्थितैः) अधियोगो भवति, तस्मिन्नधियोगे चमूप-सचिव-क्षितिपालजन्म भवति। तथा चास्मिन् योगे जाता जनाः सम्पन्नसौख्यविभवाः, हतशात्रवश्च, दीर्घायुषः, विगतरोगभयाश्च भवन्ति ॥२॥

भा०—चन्द्रमा से ६, ७, ८ इन स्थानों में सब शुभ ग्रह (बुध-गुरु-शुक्र) हों तो सेनापति, या मन्त्री अथवा राजा का जन्म होता है। अर्थात् शुभ ग्रह निर्बल हों तो सेनापति, मध्यबल हो तो मन्त्री, पूर्णबली हों तो राजा का ही जन्म होता है। तथा इस योग में जन्म लेनेवाला सुख और विभव से सम्पन्न, शत्रुओं से रहित, दीर्घायु और नीरोग शरीरवाला होता है ॥ २ ॥

वि०—यहाँ किसी टीकाकार का मत है कि ६।७।८ तीनों स्थान में तीनों ग्रह हों तभी अधियोग होता है। परञ्च ऐसा अर्थ करने से अन्य आचार्यों के मत से विरोध होता है।

यथा श्रुतकीर्ति आदि—

"निधनं द्यूनं षष्ठं चन्द्रस्थानाद् यदा शुभैर्युक्तम्।
अधियोगः स प्रोक्तो व्यासकृतो सप्तधा पूर्वैः ॥"

इस प्रकार अधियोग के पूर्वाचार्यों ने ७ भेद कहे हैं। अतः चन्द्र से ६,७,८ इन में एक में हो या दो में हो अथवा तीनों स्थान में शुभग्रह हों तभी ७ भेद हो सकता है। तथा माण्डव्य—

अमित्रं यामित्रं निधनमथ वा शीतरुचितो
गताः सर्वे सौम्यास्तमिह जनयेयुर्नरपतिम्।

'घृतेनेवासेकं गतवति विषादाश्रुपयसा
प्रतापाग्निर्यस्य ज्वलति हृदये शत्रुषु भृशम् ॥" इति ॥

इस लिये ६,७,८ इन में किसी भी स्थान में शुभ ग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र तीनों) के रहने से अधियोग होता ही है ॥ २ ॥

सुनफा अनफा, दुरुधुरा और केमद्रुमयोग—

हित्वार्कं सुनफाऽनफा-दुरुधुराः स्वान्त्योभयस्थैर्ग्रहैः
शीतांशोः कथितोऽन्यथा तु बहुभिः केमद्रुमोऽन्यैस्त्वसौ।
केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते
केचित्केन्द्रनवांशकेषु च वदन्त्युक्तिप्रसिद्धा न ते ॥३॥

सं०—अर्कं हित्वाऽन्यैः कुजाद्यैर्ग्रहैः शीतांशोः (चन्द्रात्) स्वान्त्योभयस्थैः (द्वितीयद्वादशोभयत्रस्थितैः) क्रमेण सुनफाऽनफा दुरुधुरा योगा भवन्ति। द्वितीयस्थैः सुनफा, द्वादशस्थैरनफा, उभयत्रस्थितैर्ग्रहैर्दुरुधुरा भवन्तीत्यर्थः। अन्यथा (द्वितीयद्वादशयोः कुजादिग्रहाभावे) तु बहुभिः केमद्रुमः कथितः। अन्यैस्तु-केन्द्रे (जन्मलग्नकेन्द्रे) अथवा शीतकरे (चन्द्रे) ग्रहयुते सति असौ केमद्रुमो नेष्यते (नोच्यते) केचिदाचार्याः, एतान् (सुनफानफादुरुधुरायोगान्) केन्द्रनवांशकेषु (केन्द्रेषु, नवांशकेषु च) वदन्ति। परञ्च ते (आचार्याः) (उक्तिप्रसिद्धाः उक्त्या वचनेन प्रसिद्धाः) न सन्ति, तेषामुक्तिर्बहुभिर्न स्वीक्रियते इत्यर्थः ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य को छोड़कर कोई भी ग्रह यदि चन्द्रमा से द्वितीय स्थान में हो तो सुनफा, यदि द्वादश स्थान में हो तो अनफा, यदि दोनों (द्वितीय और द्वादश) में हो तो दुरुधुरा नामक योग होता है। अन्यथा (अर्थात् द्वितीय वा द्वादश में कोई ग्रह नहीं हो तो) केमद्रुम योग होता है ऐसा बहुतों का मत है। तथा कितने (श्रुतकीर्ति, जीवशर्म आदि) आचार्य का मत है कि यदि लग्न से केन्द्र में या चन्द्रमा के साथ कुजादि ग्रहों में से कोई भी ग्रह हो तो केमद्रुम नहीं माना जाता है, अर्थात् केमद्रुमयोग का

भङ्ग हो जाता है। तथा कितने आचार्य का मत है कि-जिस प्रकार द्वितीय द्वादश स्थान में ग्रहवश सुनफादियोग होते हैं उसी प्रकार चन्द्रमा से केन्द्र (४।१०) स्थान में ग्रह के होने से सुनफादि योग होता है। और कोई चन्द्र-नवांश (चन्द्रमा जिस राशि के नवांश में हो उस राशि) से द्वितीय द्वादश-स्थान में ग्रहों से सुनफादि योग मानते हैं। परन्तु उन लोगों का मत प्रसिद्ध (सर्वमान्य) नहीं है ॥ ३ ॥

यथा श्रुतकीर्ति—

"तुर्यस्थैः सुनफेन्दोः दशमस्थैः कीर्तिताऽनफा विहगैः ।
उभयस्थितैर्दुरुधुरा केमद्रुमसंज्ञितोऽन्यथा योगः ॥"

तथा जीवशर्मा—"यद्राशिसंज्ञे शीतांशुर्नवांशे जन्मनि स्थितः ।
तद्द्वितीयस्थितैर्योगः सुनफाख्यः प्रकीर्तितः ॥
रिष्फगैरनफा ज्ञेयो ग्रहैर्द्विर्द्वादशस्थितैः ।
प्रोक्तो दुरुधुरा योगो ऽन्यथा केमद्रुमः स्मृतः ॥" इति । स्पष्टार्थ ॥

तथा सारावली—"एते यदा न योगाः केन्द्रं ग्रहवर्जितं शशाङ्कश्च ।
केमद्रुमोऽतिकष्टः शशिनि च सर्वग्रहादृष्टे ॥"

अर्थात् यदि सुनफा, अनफा, दुरुधरा ये योग नहीं हों (अर्थात्) चन्द्र से २।१२ स्थान ग्रह वर्जित हो, उस हालत में यदि केन्द्र और चन्द्रमा भी ग्रह वर्जित और ग्रहों से अदृष्ट हो तो कष्टकर केमद्रुम योग होता है ॥ ३ ॥

सुनफा, अनफा, दुरुधरा योग के भेद—

त्रिंशत् सरूपाः सुनफानफाख्याः षष्टित्रयं दौरुधुरे प्रभेदाः ।
इच्छाविकल्पैः क्रमशोभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः ॥

सं०—स-रूपा (रूपेणैकेन सहिता) त्रिंशदर्थादेकत्रिंशत् सुनफा-ऽनफाख्या योगा भवन्ति, एकत्रिंशद्विधाः सुनफाः एकत्रिंशद्विधा अनफा योगाश्च भवन्तीत्यर्थः । तथा दौरुधुरे षष्टित्रयं (अशीत्यधिकशतं) प्रभेदा भवन्ति । एतद्भेदज्ञानार्थं—इच्छाविकल्पैः क्रमशः 'भेदान्' अभिनीय

(आनीत्वा) नीते निवृत्तिः कार्या, पुनरन्यनीतिः कार्या (आनीतभेदं परित्यज्य, पुनरन्यभेदानयनं कार्यमित्यर्थः) ॥ ४ ॥

भा०—पूर्वोक्त सुनफा और अनफा योग के ३१, ३१ भेद होते हैं। और दुरुधुरा के ६०×३ = १८० भेद होते हैं। इनको समझने के लिये लोष्टुक प्रस्तार के द्वारा इष्टविकल्प से इष्ट भेद समझकर, फिर उसको छोड कर क्रम से अन्य भेद का आनयन कर सब भेद समझना चाहिये ॥ ४ ॥

वि०—ग्रहों की स्थिति के अनुसार भेद समझने के लिये ज्यौतिषशास्त्र में प्रसिद्ध दो प्रकार है। एक वराहमिहिर का, दूसरा भास्कराचार्य का।

यथा वराहमिहिर—

"पूर्वेण पूर्वेण गतेन युक्तः स्थानं विनाऽन्त्यं प्रवदन्ति सख्याम् ।
इच्छाविकल्पैः क्रमशोभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः ॥"

अर्थ—जितने ग्रह या जितने वस्तुओं के एक द्वित्र्यादि योग से भेद की संख्या जाननी हो तो उतने स्थानों में १ आदि अङ्क लिखै। उसमें अन्तिम अङ्कतुल्य एक ग्रह से भेद होता है। फिर (नीचे) दूसरी पंक्ति में ऊपर लिखित अङ्कों को पूर्व, पूर्व को अग्रिम में जोड़कर लिखै, किन्तु अन्तिम अङ्क को छोड़कर अर्थात् अन्तिम अङ्क में पूर्व अङ्क को न जोड़े, इसी प्रकार फिर उसके नीचे तीसरी पंक्ति बनावें एवं चौथी इत्यादि तब तक बनावे जब तक अन्तिम पंक्ति में केवल १ आ जावै। इसी प्रकार छन्दःशास्त्र में छन्दों के भेद और एकद्वयादिलगक्रिया जानने के लिये चक्र बनाते हैं, वह पताके की आकृति होने के कारण "पताका" कहलाती है। इनमें अन्तिम अङ्क एकद्वित्र्यादि भेद और सब का योग सम्पूर्ण भेद की संख्या होती है।

उदाहरण—जैसे सुनफादि योग में 'रविचन्द्र को छोड़कर' केवल कुजादि ५ ग्रहों की एकद्वयादि संयोगस्थिति से भेद जानना है, तो यहाँ १ से क्रम से ५ तक संख्या प्रथम पंक्ति में लिखी, इनमें अन्तिम (५) अङ्क

एक ग्रह से बने भेद की संख्या हुई। दूसरी पंक्ति में ऊपरवाले अङ्कों को ही पूर्व, पूर्व को अग्रिम में-जोड़कर (४ स्थान तक अर्थात् अन्तिम को छोड़कर) रखने से अन्त में १० हुए यह २ ग्रहों के योग से भेद संख्या हुई। फिर तृतीय पंक्ति में द्वितीय पंक्ति वाले अङ्कों को ही पूर्व पूर्व को अग्रिम अग्रिम में जोड़ने से

१	२	३	४	५	एक ग्रहों से
१	३	६	१०	...	दो ग्रहों से
१	४	१०	...	...	तीन ग्रहों से
१	५	...	...	...	चार ग्रहों से
१	...	...	...	...	पाँच ग्रहों से

अन्त में १० यह ३ ग्रहों के योग से भेद संख्या हुई। फिर चतुर्थ पंक्ति में इसी प्रकार (तृतीय पंक्ति वाले २ स्थान तक) के अङ्कों को पूर्व को अग्रिम में जोड़कर रखने से अन्तिम अङ्क ५ यह चार ग्रहों के योग से भेद संख्या हुई। इस प्रकार पञ्चम पंक्ति में ऊपरवाली (चतुर्थ) पंक्ति के अन्तिम अङ्क को छोड़कर पूर्वाङ्क १ ही बचा यह पाँचो ग्रह के योग से भेद संख्या हुई। तथा सब अन्तिमाङ्कों का योग ५ + १० + १० + ५ + १ = ३१ समस्त भेद हुए। इस प्रकार सुनफा और अनफा के भेद ३१ उपपन्न होते हैं। यही छन्दःशास्त्र में "खण्ड मेरु" भी कहलाता है। इसी प्रकार को भास्कराचार्य ने अपनी पाटी गणित में और सरल कर दिया है। यथा—

"एकाद्येकोत्तरा अङ्का व्यस्ता भाज्याः क्रमस्थितैः।
परः पूर्वेण सद्गुण्यस्तत्परस्तेन तेन च ॥
एकद्वित्र्यादिभेदाः स्युरिदं साधारणं स्मृतम्।" इति।

अर्थात् जितने वस्तुओं के एक द्वित्र्यादि योग-जनित भेद समझना हो उतने स्थान तक १ से आरम्भ कर व्यस्त (बाएँ तरफ बढ़ा कर) एकोत्तर संख्या लिख कर उन में क्रम से १ एकादि एकोत्तर संख्या से भाग देना; फिर पूर्व, पूर्व से अग्रिम अग्रिम को गुना कर नीचे पंक्ति में क्रम से पृथक् पृथक् रखने से एकद्वित्र्यादि भेदों की संख्या होती है उन सबों का योग समस्त भेद की संख्या होती है।

उदाहरणं—जैसे ५ ग्रहों से एक द्विन्यादि भेद संख्या जानने के लिये

$\frac{5}{1}$	$\frac{4}{2}$	$\frac{3}{3}$	$\frac{2}{4}$	$\frac{1}{5}$
५	१०	१०	५	१

१ से ५ तक उत्क्रम से संख्या लिख कर उन में १ से ५ तक अङ्कों के क्रम से भाग दिया अर्थात् सब के नीचे क्रम से १ आदि अङ्कों को भाजक (हर) रूप में लिखा। इन में प्रथम $\frac{5}{1}$ = ५ यह एक ग्रह से उत्पन्न भेद से संख्या हुई। फिर उस से अगले अङ्क को गुना करने से (५ × $\frac{4}{2}$ = १० यह) दो ग्रहों से भेद संख्या हुई। फिर इस १० से अग्रिम $\frac{3}{3}$ को गुना करने से (१० × $\frac{3}{3}$ = १०)· यह तीन ग्रहों से भेद संख्या हुई। फिर इस से अग्रिम अङ्क को गुना करने से (१० × $\frac{2}{4}$ = ५) यह चार ग्रहों से भेद संख्या हुई। फिर इस से अग्रिम अङ्क को गुना करने से (५ × $\frac{1}{5}$ = १) यह पाँचो ग्रह के योग से भेद संख्या हुई। सब की योग = (५ + १० + १० + ५ + १ = ३१) पूर्व समान ही हुआ॥

अब दुरुधुरा योग के १८० भेद की उपपत्ति दिखलाते हैं—यथा—दुरुधुरा भी मङ्गलादि ५ ग्रहों से ही होती है। उन में इतनी विशेषता है कि द्वितीय और द्वादश दोनों स्थान में ग्रह की स्थिति रहती है इस लिये एक स्थान में किसी १ ग्रह को रख कर दूसरे स्थान में शेष चार ग्रह के कुल भेद पूर्व रति से चार ग्रह से भेद संख्याचक्र (४ + ६ + ४ + १ = १५)

$\frac{4}{1}$	$\frac{3}{2}$	$\frac{2}{3}$	$\frac{1}{4}$	
४	६	४	१	भेदयोग १५

पन्द्रह होते हैं। अतः अनुपात हुआ कि एक ग्रह के साथ १५ भेद तो ५ ग्रहों से कितने—१५ × ५ = ७५ ये एक स्थान से भेद हुए। इतने ही फिर द्वितीय स्थान से ७५ अतः दोनों मिल कर ७५ + ७५ = १५० एवं एक स्थान में २ और द्वितीय में ३ तथा दोनों में २, २, ग्रहों से ३० कुल १८० = ६० × ३ भेद हुए। इस से "षष्टित्रयं दौरुधरे प्रभेदाः" यह उपपन्न हुआ॥ ४॥

सुनफा और अनफायोग में उत्पन्न मनुष्य का फल—

स्वयमधिगतवित्तः पार्थिवस्तत्समो वा

भवति हि सुनफायां धीधनख्यातिमांश्च ।
प्रभुरगदशरीरः शीलवान् ख्यातकीर्ति-
र्विषयसुखसुवेषो निर्वृतश्चानफायाम् ॥५॥

सं०—सुनफायां जातो मनुष्यः—स्वयमधिगतवित्तः (स्वबाहुबलोपार्जित-धनः) पार्थिवो (राजा) तत्समो राजतुल्यो वा धीधनख्यातिमांश्च भवति । अनफायां जातः प्रभुः (बहुजनाधिपतिः) अगदशरीरः (रोगरहितदेहः) शीलवान् ख्यातकीर्तिः, विषयसुखसुवेषः (विषयाः शब्दस्पर्शादयस्तेषां सुखं यस्य स चासौ सुवेषः सत्स्वरूपश्चेति तथोक्तः) निर्वृतः (मनोव्यथारहितश्च) भवति ॥ ५ ॥

भा०—सुनफायोग में जन्म लेनेवाला स्वबाहुबल से धन प्राप्ति करने-वाला, राजा वा राजा के तुल्य बुद्धि धन और सुयश से युक्त होता है । अनफायोग में उत्पन्न मनुष्य, लोगों को वश में रखने वाला, रोगरहित, सुशील, विख्यात यश, विषय सुखों से युक्त, सुन्दर रूप युक्त और मानस चिन्ता से रहित होता है ॥ ५ ॥

दुरुधुरा और केमद्रुमयोग का फल—

उत्पन्नभोगसुखभुग्धनवाहनाढ्य-
स्त्यागान्वितो दुरुधुराप्रभवः सुभृत्यः ।
केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिःस्वः
प्रेष्यः खलश्च नृपतेरपि वंशजातः ॥ ६ ॥

सं०—दुरुधुराप्रभवो नरः उत्पन्नभोगसुखभुक् (उपस्थितभोगसुख-भोक्ता) धनवाहनाढ्यः, त्यागान्वितः (दानशीलः), सुभृत्यः सुष्ठु शोभनो भृत्यो यस्य स सुभृत्यः) भवति । केमद्रुमे नृपतेरपि वंशजातो मनुजः मलिन-दुःखित-नीच-निःस्वः, प्रेष्यः, खलश्च भवति; किमन्यकुलोद्भव इति ॥ ६ ॥

भा०—दुरुधुरायोग में उत्पन्न मनुष्य उपस्थित भोग और सुख को

भोगने वाला, धन, वाहनों से युक्त, दानी, और इमानदार नौकरों को रखने वाला होता है। और केमद्रुमयोग में राजवंश में भी उत्पन्न मनुष्य मलिन, दुखी, नीच, निर्धन, और दूसरों की सेवा करनेवाला होता है ॥ ६ ॥

सुनफादियोग कारक ग्रहों के अनुसार फल—

उत्साहशौर्यधनसाहसवान् महीजः
सौम्यः पटुः सुवचनो निपुणः कलासु ।
जीवोऽर्थधर्मसुखभुङ् नृपपूजितश्च
कामी भृगुर्बहुधनो विषयोपभोक्ता ॥ ७ ॥

सं०—'सुनफाऽनफादुरुधुरायोगकारको' महीजो मङ्गलश्चेत् तदा जातः उत्साहशौर्यधनसाहसवान् भवति। सौम्यो बुधश्चेत् तदा पटुः (पण्डितः), सुवचनः, कलासु निपुणो भवति। जीवश्चेत् तदा अर्थधर्मसुखभाक्, नृपपूजितश्च भवति। भृगुश्चेत् तदा कामी, बहुधनः, विषयोपभोक्ता भवति ॥७॥

भा०—सुनफा अनफा वा दुरुधुरायोगकारक यदि मङ्गल हो तो जातक उत्साह, पराक्रम, धन और साहस से युक्त होता है। बुध हो तो पण्डित, मृदुभाषी, कलाओं में कुशल होता है। बृहस्पति हो तो धनी, धर्मात्मा, सुखी और राजमान्य होता है। शुक्र हो तो कामी, बहुत धन से युक्त और विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धजन्य) सुख को भोगने वाला होता है॥७॥

परविभवपरिच्छदोपभोक्ता रवितनयो बहुकार्यकृद्गणेशः।
अशुभकृदुडुपोऽह्नि दृश्यमूर्तिर्गलिततनुश्च शुभोऽन्यथाऽन्यदूह्यम्॥८॥

सं०—रवितनयो योगकारकश्चेत् तदा जातकः परविभवपरिच्छदोपभोक्ता, बहुकार्यकृत् गणेशः (बहुजनाधिपः) भवति। अथ चन्द्रफलं कथयति–अह्नि दिवा जन्मनि उडुपश्चन्द्रो यदि दृश्यमूर्तिः (दृश्यचक्रार्धे स्थितः) तदा अशुभकृत् (अनिष्टफलदो) भवति। यदि गलिततनुरदृश्यबिम्बः (अदृश्यचक्रार्धस्थितः) तदा शुभो भवति। अन्यथाऽन्यत् फलमूह्यम् (अर्थात् निशि जन्मनि दृश्यचक्रार्धस्थश्च शुभः। अदृश्यचक्रार्धस्थश्चेत् तदाऽशुभो भवति) ॥

भा०—यदि शनि सुनफादियोग कारक हो तो दूसरों के धन, गृह, वस्त्रादि का भोग करने वाला, बहुत कार्य करने वाला और बहुतों का मालिक होता है। अब चन्द्रमा का फल कहते हैं—यदि दिन में जन्म हो और चन्द्रमा दृश्य चक्रार्ध (सप्तमभोग्यांश, ८, ९, १०, ११, १२ भाव और लग्न के भुक्तांश) में हो तो अशुभ फल कारक होता है। यदि अदृश्य चक्रार्ध (लग्न के भोग्यांश २, ३, ४, ५, ६ और सप्तम भाव के भुक्तांश) में हो तो शुभ होता है। रात्रि में इससे भिन्न फल समझना। जैसे—रात्रि में दृश्यचक्रार्ध हो तो शुभ, अदृश्य चक्रार्ध में हो तो अशुभ होता है॥ ८॥

अधिक मध्यम और अल्पधन होने का योग—

लग्नादतीववसुमान् वसुमाञ्छशाङ्कात्
सौम्यग्रहैरुपचयोपगतैः समस्तैः।
द्वाभ्यां समोऽल्पवसुमांश्च तदूनताया-
मन्येष्वसत्स्वपि फलेष्विदमुत्कटेन॥ ९॥

सं०—लग्नात्, शशाङ्कात्, उभाभ्यां वा समस्तैः सौम्यग्रहैः (बुध-गुरुसितैः) उपचयोपगतैः, जातकोऽतीवधनवान् भवति। द्वाभ्यां शुभग्रहाभ्यां (उपचयस्थिताभ्यां) समो मध्यमधनयुतो भवति। तदूनतायां (एकेन शुभग्रहेणोपचयस्थेन) अल्पवसुमान् भवति। अन्येषु (केमद्रुमादिषु) असत्सु फलेष्वपि इदं फलं उत्कटेन (बाहुल्येन = प्रबलत्वेन) भवति। अनेन योगेन दारिद्र्ययोगो हन्यते इत्यर्थः॥ ९॥

भा०—लग्न से अथवा चन्द्रमा से यदि सब शुभग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) उपचय स्थान में हो तो अत्यन्त धनवान् होता है, यदि २ शुभग्रह उपचय में हो तो मध्यम प्रकार का धनवान् होता है। यदि कोई एकही शुभग्रह उपचय स्थान (३।६।१०।११) में हो तो अल्प धनयुक्त होता है। यह योग अशुभ (केमद्रुम आदि) योगों के रहने पर भी विशेष प्रबल होता है, अर्थात् उपचयस्थ शुभग्रह के रहने पर भी दारिद्र्य योग का नाश हो

जाता है। यदि लग्न और चन्द्रमा दोनों से उपचय स्थान में शुभ पड़े तो और भी प्रबल योग होता है ॥ ६ ॥

उपरिकथित सुनफादि शुभयोग में जितने ग्रहों से योग होता है। उन सब ग्रहों के जो पृथक् फल कहे गये हैं, वे सब फल प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके चन्द्रयोगाध्यायः ॥ १३ ॥

अथ द्विग्रहयोगाध्यायः ॥ १४ ॥

चन्द्रादि प्रत्येक ग्रह के साथ सूर्य के फल--

तिग्मांशुर्जनयत्युषेशसहितो यन्त्राश्मकारं नरं
भौमेनाघरतं बुधेन निपुणं धीकीर्त्तिसौख्यान्वितम् ।
क्रूरं वाक्पतिनान्यकार्यनिरतं शुक्रेण रङ्गायुधै-
र्लब्धस्वं रविजेन धातुकुशलं भाण्डप्रकारेषु वा ॥ १ ॥

सं०—तिग्मांशुः (सूर्यः) उषेशसहितः (चन्द्रयुतः) यन्त्राश्मकारं (यन्त्राणि तैलाद्युत्पादकादीनि, अश्मा पाषाणः, तत्कर्मकर्त्तारं) नरं जनयति, भौमेन युतोऽघरतं (पापासक्तं), बुधेन युतो निपुणं (सूक्ष्मदृष्टिं) धीकीर्तिसौख्यान्वितं, वाक्पतिना सहितो रविः क्रूरं (उग्रस्वभावं) अन्यकार्यनिरतं च जनयति, शुक्रेण युतो रविः रङ्गायुधैः (रङ्गेन नृत्यादिना, आयुधैरस्त्रैश्च) लब्धस्वं प्राप्तधनं जनं जनयति। रविजेन (शनिना) सहितः सूर्यो धातुकुशलं (धातुषु ताम्रादिषु गैरिकादिषु कुशलं निपुणं) भाण्डप्रकारेषु (भूषणादिनिर्माणेषु) वा कुशलं नरं जनयति ॥ १ ॥

भा०—जन्मसमय में सूर्य यदि चन्द्रमा से युत हो तो यन्त्र और पत्थर के काम करनेवाला होता है, मङ्गल से युत सूर्य हो तो जातक पापी होता है। बुध से युत हो तो सब कार्य में निपुण और ज्ञान, यश, सुखों से युक्त होता है। बृहस्पति से युत रवि हो तो क्रूर स्वभाववाला और दूसरे

का कार्य करनेवाला होता है। शुक्र से युत रवि हो तो नृत्यगीत (फिल्म कम्पनी) या रणक्षेत्र तथा अस्त्रों से धन प्राप्त करनेवाला होता है। यदि शनि से युत सूर्य हो तो धातु (ताँबा आदि) तथा आभूषणादिक कर्म में निपुण होता है ॥ १ ॥

मङ्गलादि ग्रह से चन्द्रमा के योग फल—

कूटस्त्र्यासवकुम्भपण्यमशिवं मातुः सवक्रः शशी
सज्ञः प्रश्रितवाक्यमर्थनिपुणं सौभाग्यकीर्त्यान्वितम् ।
विक्रान्तं कुलमुख्यमस्थिरमतिं वित्तेश्वरं साङ्गिरा
वस्त्राणां ससितः क्रियादिकुशलं सार्किः पुनर्भूसुतम् ॥ २ ॥

सं०— शशी (चन्द्रः) स-वक्रः (वक्रेण मङ्गलेन सहितः) कूट-स्त्र्यासव-कुम्भपण्यं (कूटं द्रव्यप्रतिरूपं कृत्रिमद्रव्यमित्यर्थः, स्त्री कन्यादिका, आसवो मद्यं, कुम्भो घटः, एतेषां पण्यं विक्रयव्यवहारो यस्य स कूटस्त्र्यासवकुम्भपण्यस्तं तथोक्तं) तथा मातुरशिवं क्लेशदायकं नरं जनयति । स-ज्ञः बुधेन सहितः प्रश्रितवाक्यं (विनीतवचनं) अर्थनिपुणं, सौभाग्यकीर्त्यान्वितं नरं जनयति । साङ्गिराः सजीवः, शशी विक्रान्तं, कुल-मुख्यं अस्थिरमतिं (चञ्चलमति) वित्तेश्वरं नरं जनयति । स-सितः स-शुक्रः शशी-वस्त्राणां क्रियादिकुशलं, तथा सार्किः (स-शनिः) शशी पुनर्भूसुतं जनयति ॥ २ ॥

भा०—चन्द्रमा यदि मङ्गल से युत हो तो नकली द्रव्य, स्त्री, मदिरा और घडा का विक्रय करनेवाला, और माता को कष्ट देनेवाला होता है। बुध से युक्त हो तो कोमल वचन बोलनेवाला, धनोपार्जन में चतुर, सौभाग्य और सुयश से युक्त होता है। चन्द्रमा बृहस्पति से युत हो तो पराक्रमी, कुल में श्रेष्ठ, चञ्चल बुद्धि, और पूर्ण धनवान् होता है। शुक्र से युत चन्द्रमा हो तो वस्त्रों की क्रिया (सूत कातना, कपड़ा बिनना आदि) में चतुर और शनि से युत हो तो पुनर्भू (दूसरा पति करनेवाली स्त्री) का पुत्र होता है ॥२॥

बुधादिग्रह के योग से मङ्गल के फल—

मूलादिस्नेहकूटैर्व्यवहरति वणिग्बाहुयोद्धा ससौम्ये-
पुर्य्यध्यक्षः सजीवे भवति नरपतिः प्राप्तवित्तो द्विजो वा।
गोपो मल्लोऽथ दक्षः परयुवतिरता द्यूतकृत् सासुरेज्ये
दुःखार्तोऽसत्यसन्धः ससवितृतनये भूमिजे निन्दितश्च ॥३॥

सं०—महीजे मङ्गले स-सौम्ये बुधसहिते जातको वणिक्मूलादिस्नेहकूटैः (मूलादीनि पत्र-पुष्प-फलादीनि, स्नेहास्तैलघृतादयः, कूटानि द्रव्यप्रतिरूपाणि तैः) व्यवहरति बाहुयोद्धा च भवति । स-जीवे जातः पुर्यध्यक्षः, नरपतिः, वा प्राप्तवित्तो द्विजो भवति । सासुरेज्ये स-शुक्रे गोपो, मल्लः (बाहुयोद्धा) दक्षः कार्यकुशलः, परयुवतिरतो द्यूतकृच्च भवति । स-सवितृतनये भूमिजे जातो दुःखार्तोऽसत्यसन्धः (मिथ्याभाषी) निन्दितश्च भवति ॥ ३ ॥

भा०—मङ्गल बुध से युत हो तो जातक फल मूल, तैल, घृत, कृत्रिम-द्रव्यों के व्यवहार करनेवाला बनिया, मल्ल होता है । बृहस्पति से युक्त हो तो ग्राम का स्वामी, राजा, अथवा धनवान् ब्राह्मण होता है । शुक्र से युत हो तो गोपालन करनेवाला, पहलवान् , चतुर, परस्त्रीगामी और जुआड़ी होता है, शनि से युत हो तो दुःखी, मिथ्यावादी और लोक में निन्दित होता है ॥३॥

जीवादि से युत बुध के और शुक्रादि से युत गुरु के फल—

सौम्ये रङ्गचरो बृहस्पतियुते गीतप्रियो नृत्यविद्-
वाग्मी भूगणपः सितेन मृदुना माया पटुर्लङ्घकः ।
सद्विद्यो धनदारवान् बहुगुणः शुक्रेण युक्ते गुरौ
ज्ञेयः श्मश्रुकरोऽसितेन घटकृज्जातोऽन्नकारोऽपि वा ॥४॥

सं०—सौम्ये (बुधे) बृहस्पतियुते रङ्गचरः सङ्ग्रामभूमिचारी, गीत-प्रियो नृत्यविद् भवति । सितेन युक्ते वाग्मी (प्रवचनपटुः) भूगणपः (भूपः, जनसमूहपतिर्वा) भवति । मृदुना शनिना युते मायापटुः (वञ्चकः), लङ्घकः

(गुरुजनाज्ञाविरुद्धः) भवति । गुरौ शुक्रेण युक्ते सति सद्विद्यो, धनदारवान्, बहुगुणश्च भवति । असितेन शनिना, युक्ते श्मश्रुकरो नापितः, घटकृत् कुम्भकारोऽन्नकारः पाचकोऽपि वा भवति ॥ ४ ॥

भा०—बुध यदि बृहस्पति से युक्त हो तो रणप्रिय, गीतप्रिय, नृत्य जाननेवाला होता है । यदि शुक्र से युत हो तो बोलने में चतुर, पृथ्वीपति, या जनसमूह का मालिक (नेता) होता है । शनि से युक्त हो तो दूसरों को ठगनेवाला (खोफिया), गुरुजनों की आज्ञा को न-माननेवाला होता है । यदि बृहस्पति शुक्र से युत हो तो उत्तम विद्वान्, धन, स्त्री और गुणों से युक्त होता है । शनि से युक्त गुरु हो तो नाऊ, कुम्भकार, वा रसोइयाँदार होता है ॥ ४ ॥

शुक्र शनि के योग फल, तथा त्रिग्रहचतुर्ग्रहादियोगफल—

असितसितसमागमेऽल्पचक्षुर्युवतिसमाश्रयसम्प्रवृद्धवित्तः ।
भवति च लिपिपुस्तचित्रवेत्ता कथितफलैः परतो विकल्पनीयाः॥

सं०—असित-सितसमागमे शनि-शुक्रयोगे जातकोऽल्पचक्षुः, युवतिसमाश्रयसम्प्रवृद्धवित्तः (स्त्रीसंश्रयेण लब्धधनः), लिपिपुस्तचित्रवेत्ता च भवति । एवं कथितफलैः परस्परग्रहद्वययोगोक्तफलैः परतोऽप्यन्यग्रहतोऽपि (त्रिचतुष्पञ्चादियोगवशात्) विकल्पनीयाः, सर्वाणि तत्फलानि ज्ञेयानीत्यर्थः ॥

भा०—शनि और शुक्र के योग से जातक अल्पनेत्रवाला, स्त्री के आश्रय पाकर धनवृद्धि करनेवाला, लेख, पुस्तक और चित्रकारी जाननेवाला होता है । इस प्रकार जो दो ग्रहों के फल कहे गये हैं, उनके अनुसार ३,४,५,६, या ७ सातो ग्रहों के योग से सब फलों को समझना चाहिये ॥५॥

उदाहरण—जैसे रवि, चन्द्र और बुध तीन ग्रहों का योग हो तो रवि-चन्द्र के योगफल, और रवि बुध के योगफल तथा बुध चन्द्र के योगफल भी समझना चाहिये । एवं चार, पाँच आदि योग में भी विचार करना चाहिये ॥ ५ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके द्विग्रहयोगाध्यायः ॥ १४ ॥

अथ प्रव्रज्याऽध्यायः ॥ १५ ॥

प्रथम प्रव्रज्यायोग—

एकस्थैश्चतुरादिभिर्बलयुतैर्जाताः पृथग्वीर्यगैः
शाक्याजीविकभिक्षुवृद्धचरका निर्ग्रन्थवन्याशनाः ।
माहेयज्ञगुरुक्षपाकरसितप्राभाकरीनैः क्रमात्
प्रव्रज्या बलिभिः समाः परजितैस्तत्स्वामिभिः प्रच्युतिः॥१॥

सं०—बलयुतैश्चतुरादिभिः (चतुर्भिः, पञ्चभिः, षड्भिः, सप्तभिर्वा ग्रहैः) एकस्थैः (एकराशिगतैः) माहेय-ज्ञ-गुरु-क्षपाकर सित-प्राभाकरीनैः पृथग्वीर्यगैः क्रमात् जाताः—शाक्याऽजीविक-भिक्षु-वृद्धचरका निर्ग्रन्थ-वन्याशना भवन्ति। एकस्थचतुरादिषु ग्रहेषु माहेयो बली चेत् तदा शाक्यः—पीतवस्त्रधारको गौतमबुद्धधर्मानुयायी भवति। बुधो बली चेत् तदा आजीविको लोकायनः (गोशालमङ्खलिपुत्रानुयायी), गुरुर्बली चेत्तदा भिक्षुर्यतिः, क्षपाकरश्चन्द्रो बली चेत्तदा वृद्धः (वृद्धश्रावकः कापालिकः), सितो बली चेत् तदा चरकः (कृष्णयजुर्वेदीयशाखापाठकः), शनिर्बली चेत्तदा निर्ग्रन्थो नग्नः (दिगम्बर-जैनमतानुयायी), सूर्यो बली चेत् तदा वन्याशनः मूलफलादिभक्षकस्तपस्वी भवतीत्यर्थः। तथा चैकस्थचतुरादिषु बहवो ग्रहा बलिनश्चेत् तदा सर्वैर्बलिभिः समाः प्रव्रज्या भवन्ति। तत्रापि बलक्रमादर्थात् प्रथमा प्रव्रज्या सर्वाधिक-बलस्यैव। तत्स्वामिभिः (प्रव्रज्याकारकग्रहैः) परजितैः (युद्धेऽन्यग्रहेण विजितैः) प्रच्युतिः प्रव्रज्यात्यागो भवति प्रव्रज्या गृहीत्वा पुनस्त्यजतीत्यर्थः॥१॥

भा०—जन्मकुण्डली में यदि एक राशि में बलयुक्त ४ या उससे अधिक ग्रह हों तो प्रव्रज्या (वैराग्य) योग होता है अर्थात् वह मनुष्य प्रव्राजक (गृहत्यागी) होता है। उन ग्रहों में जितने ग्रह बली हों उतनी प्रव्रज्या होती है, उनमें भी प्रथम प्रव्रज्या सबसे अधिक बली ग्रह की होती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि सब ग्रह निर्बल हो तो प्रव्रज्या

नहीं होती है। जैसे मङ्गल बली हो तो शाक्य (पीला वस्त्र धारण करने वाला बौद्ध संन्यासी), बुध बली हो तो आजीविक (लोकायत सम्प्रदाय का अनुयायी), गुरु बली हो तो भिक्षु (यती), चन्द्रमा बली हो तो वृद्धश्रावक (कपाली), शुक्र बली हो तो चरक (कृष्ण यजुर्वेद की शाखा का प्रचार करने वाला), शनि बली हो तो निर्ग्रन्थ (दिगम्बर जैनी) और सूर्य बली हो तो वन्याशन (कन्दमूल, फल से निर्वाह करने वाला) तपस्वी होता है। यदि प्रव्रज्या कारक ग्रह दूसरे ग्रह से पराजित हो तो उस प्रव्रज्या को ग्रहण करके फिर त्याग कर देता है। ॥१॥

वि०—एक राशि में जब भौमादि दो ग्रहों के अंश और कला तुल्य हो तो युद्ध कहलाता है। उनमें जो उत्तर दिशा में रहता है वह जयी और दक्षिण दिशा वाला पराजित समझा जाता है। युद्ध में शुक्र दक्षिण में भी हो तो वही विजयी होता है। उत्तर और दक्षिण दिशा का ज्ञान ग्रहों के शर जानने से होता है। शरज्ञान का प्रकार ग्रहलाघव या सिद्धान्त ग्रन्थों में देखिये ॥ १ ॥

प्रव्रज्या योग में विशेषता—

रविलुप्तकरैरदीक्षिता बलिभिस्तद्गतभक्तयो नराः।
अभियाचितमात्रदीक्षिता निहतैरन्यनिरीक्षितैरपि॥२॥

सं०—'पूर्वोक्तैश्चतुरादिभिः', बलिभिरपि रविलुप्तकरैः (अस्तमितैः) जाता नरा अदीक्षिताः (दीक्षारहिताः, किन्तु) तद्गतभक्तयो भवन्ति। तथा च बलिभिरपि निहतैः (अन्यग्रहेण पराजितैः) अपि वा अन्यनिरीक्षितैः, जाता अभियाचितमात्रदीक्षिताः (दीक्षा याच्ञापरा एव) भवन्ति, अर्थात् प्रार्थनापरा अपि दीक्षां न प्राप्नुवन्ति ॥२॥

भा०—पूर्वोक्त प्रव्रज्याकारक ग्रह अन्य प्रकार (उच्चादि) बल से युक्त होकर भी यदि सूर्य के किरण सान्निध्यवश अस्त हो तो वह जातक परिव्राजक (गृहत्यागी) होकर भी दीक्षा नहीं प्राप्त करता है। किन्तु उस प्रव्रज्या

में उसकी पूरी भक्ति रहती है। एवं यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह दूसरे ग्रहों से पराजित हो अथवा दृष्ट हो तो प्रार्थना करने पर भी दीक्षित नहीं होता है। अर्थात् उस आश्रम में रहता हुआ शिष्य बनने की इच्छा करता हुआ भी शिष्य नहीं बनाया जाता है ॥ २ ॥

वि०—सूर्य सान्निध्य से अस्त होने का ज्ञान ग्रहों के कालांश के ज्ञान से होता है। जैसे—

'भास्करा नगभुवो गुणचन्द्रा भूभुवो दिविषदस्तिथयोऽब्जात् ।
प्राक्तनैर्निगदिताः समयांशा वक्रिणोर्भृगुविदोः क्षितिहीनाः ॥"

अर्थात्—१२,१७,१३,११,९ और १५ ये क्रम से चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि के कालांश है। यदि बुध और शुक्र वक्री रहते हैं तो १ अंश कम कालांश होते हैं। जिस ग्रह का सूर्य से अन्तर अपने कालांश से कम हो तो उस ग्रह को अस्त समझना चाहिये ॥ २ ॥

द्वितीय प्रव्रज्यायोग—

जन्मेशोऽन्यैर्यद्यदृष्टोऽर्कपुत्रं पश्यत्यार्किर्जन्मपं वा बलोनम् ।
दीक्षां प्राप्नोत्यार्किद्रेष्काणसंस्थे भौमार्क्यंशे सौरदृष्टे च चन्द्रे ॥

स०—यदि जन्मेशो (जन्मराशिस्वामी) अन्यैर्ग्रहैरदृष्टः सन् अर्कपुत्रं शनिं पश्यति । अपि वा आर्किः (शनिः) बलोनं निर्बलं जन्मपं जन्मराशिपतिं पश्यति तदा जातो दीक्षां प्राप्नोति । तथा च चन्द्रे आर्किदृक्काणसंस्थे अथवा भौमार्क्यंशे (कुजशनिनवांशे) स्थिते चन्द्रे सति जातो दीक्षां प्राप्नोति ।

भा०—जन्मराशि का स्वामी यदि दूसरे ग्रहों से अदृष्ट होकर शनि को देखता हो अथवा निर्बल जन्मराशिपति को शनि देखता हो। अथवा चन्द्रमा यदि मङ्गल के द्रेष्काण में या मङ्गल वा शनि के नवांश में चन्द्रमा हो तो इन योगों में भी दीक्षा प्रव्राजक होकर प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

वि०—बली प्रव्रज्या कारक ग्रह की दशा अन्तर्दशा समय में प्रव्रज्या होती है ॥ ३ ॥

राजयोग के साथ प्रव्रज्यायोग में विशेषता—

सुरगुरुशशिहोरास्वार्किदृष्टासु धर्मे
गुरुरथ नृपतीनां योगजस्तीर्थकृत् स्यात् ।
नवमभवनसंस्थे मन्दगेऽन्यैरदृष्टे
भवति नरपयोगे दीक्षितः पार्थिवेन्द्रः ॥ ४ ॥

सं०—सुरगुरु-शशि-होरासु (सुरगुरुर्बृहस्पतिः, शशी चन्द्रः, होरा लग्नं, एतासु) आर्किदृष्टासु, गुरुर्यदि धर्मे (नवमभावे) तदा नृपतीनां योगजः (राजयोगोत्पन्नः) अर्थात् एतादृशे प्रव्रज्यायोगे यदि राजयोगोऽपि स्यात् तदा तत्र जातो जनस्तीर्थकृत् (शास्त्रकर्ता) स्यात् । अथ मन्दगे शनैश्चरे नवमभवनसंस्थेऽन्यैरदृष्टे सति नरपयोगे जातः पार्थिवेन्द्रो (राजाऽपि) दीक्षितो भवति ॥ ४ ॥

भा०—गुरु, चन्द्रमा और लग्न इन तीनों पर शनि की दृष्टि हो और गुरु नवम भाव में हो ऐसे योग में पूर्वोक्त कोई राजयोग भी प्राप्त हो तो इसमें उत्पन्न मनुष्य शास्त्रकार होता है । अथवा तीर्थ में भ्रमण करने वाला होता है । अर्थात् राजा न होकर शास्त्रकार होता है । जैसे कणाद, बुद्ध आदि । अथवा नवम भाव में शनि हो उस पर किसी भी ग्रह की दृष्टि नहीं हो तो ऐसे योग में कोई राजयोग पड़े तो जातक राजा होकर दीक्षित होता है ॥४॥

वि०—इन योगों में राजयोग नहीं हो तो जातक साधारण प्रव्राजक होता है । अर्थात् प्रव्रज्यायोग में राजयोग होने से शास्त्रकार सम्प्रदाय चलाने वाला परम प्रसिद्ध प्रव्राजक होता है । जैसे बुद्ध, शङ्कराचार्य आदि हुए । कहा भी है—"नवमस्थाने सौरो यदि स्थितः सर्वदर्शनविमुक्तः ।

नरनाथयोगजातो नृपोऽपि दीक्षान्वितो भवति ॥
नृपयोगस्याभावे योगेऽस्मिन् दीक्षितो नरो भवति ।
निःसन्दिग्धं प्रवदेद्योगस्यास्य प्रभावेन ॥" इति ।

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके प्रव्रज्याऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ ऋक्षशीलाध्यायः ॥१६॥

अश्विनी और भरणी नक्षत्रोत्पन्न मनुष्य का फल—

प्रियभूषणः सुरूपः सुभगो दक्षोऽश्विनीषु मतिमांश्च ।
कृतनिश्चयसत्यारुग्दक्षः सुखितश्च भरणीषु ॥ १ ॥

सं०—अश्विनीषु जातो जनः प्रियभूषणः सुरूपः, सुभगः (सर्वजनप्रियः), दक्षः (सर्वकार्यकरणक्षमः) मतिमांश्च भवति । भरणीषु जातः कृतनिश्चयसत्यारुग् (कृतनिश्चयो दृढप्रतिज्ञः, सत्यवाग्, अरुक्) दक्षः, सुखितश्च भवति ॥ १ ॥

भा०—अश्विनी में उत्पन्न मनुष्य अलङ्करण प्रिय, सुन्दर स्वरूप, सर्वजन प्रिय, कार्यों में पटु और बुद्धिमान् होता है । भरणी में उत्पन्न अपने वचन को पूरा करनेवाला, सत्यवक्ता, रोगरहित, चतुर और सुखी होता है ॥ १ ॥

कृत्तिका और रोहिणी जन्म का फल—

बहुभुक् परदाररतस्तेजस्वी कृत्तिकासु विख्यातः ।
रोहिण्यां सत्यशुचिः प्रियंवदः स्थिरमतिः सुरूपश्च ॥ २ ॥

सं०—कृत्तिकासु जातः बहुभुक्, परदाररतः, तेजस्वी, विख्यातश्च भवति । रोहिण्यां जातः सत्यशुचिः (सत्यवक्ता, पवित्रश्च) प्रियंवदः, स्थिरमतिः सुरूपश्च भवति ॥ २ ॥

भा०—कृत्तिका नक्षत्र में जन्म लेनेवाला बहुत खानेवाला, परस्त्रीगामी, असहिष्णु और विख्यात होता है । रोहिणी में जिसका जन्म हो वह सत्यवक्ता, पवित्रात्मा, प्रियवचन बोलनेवाला, स्थिर बुद्धि और सुन्दर होता है ॥ २ ॥

मृगशिरा और आर्द्रा में जन्म का फल—

चपलश्चतुरो भीरुः पटुरुत्साही धनी मृगे भोगी ।
शठगर्वितः कृतघ्नो हिंस्रः पापश्च रौद्रश्च ॥ ३ ॥

सं०—मृगे मृगशीर्षे जातः चपलः, चतुरः, भीरुः, पटुः, उत्साही, धनी भोगी च भवति। रौद्रर्क्षे (आर्द्रायां) जातः शठगर्वितः (शठः स्ववचनविरुद्धकारी, गर्वितः, अभिमानी), कृतघ्नः, हिंस्रः, पापश्च भवति ॥

भा०—मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य चञ्चल, चतुर, डरपोक, पण्डित, उत्साही, धनी और भोगी होता है। आर्द्रा नक्षत्र में जन्म लेनेवाला कुटिल हृदय, अभिमानी, कृतघ्न, हिंसक और पापी होता है ॥ ३ ॥

पुनर्वसुनक्षत्र में जन्म का फल—

दान्तः सुखी सुशीलो दुर्मेधा रोगभाक् पिपासुश्च।
अल्पेन च सन्तुष्टः पुनर्वसौ जायते मनुजः ॥ ४ ॥

सं०—पुनर्वसौ दान्तः (तपःक्लेशसहः), सुखी, सुशीलः, दुर्मेधा जडबुद्धिः, रोगभाक्, पिपासुः, अल्पेन सन्तुष्टश्च मनुजो जायते ॥ ४ ॥

भा०—पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य क्लेश को सहनेवाला, सुखी, सुशील, बुद्धिहीन, रोगी, तृषार्त, और थोड़े में ही सन्तुष्ट होता है ॥ ४ ॥

पुष्य और आश्लेषानक्षत्र में जन्म का फल—

शान्तात्मा सुभगः पण्डितो धनी धर्मसंस्तुतः पुष्ये।
शठसर्वभक्षपापः कृतघ्नधूर्तश्च भौजङ्गे ॥ ५ ॥

सं०—पुष्ये जातः शान्तात्मा, सुभगः, पण्डितः, धनी, धर्मसंस्तुतश्च भवति। भौजङ्गे (श्लेषानक्षत्रे) जातः शठसर्वभक्षपापः कृतघ्नो, धूर्तश्च भवति ॥ ५ ॥

भा०—पुष्यनक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य शान्तहृदय, सर्वप्रिय, विद्वान्, धनी और धर्म में तत्पर होता है। आश्लेषा नक्षत्र में जन्म लेने वाला, शठ, सर्वभक्षी, पापी, कृतघ्न (उपकार को न मानने वाला), और धूर्त होता है ॥ ५ ॥

मघा और पूर्वाफाल्गुनी में जन्म का फल—

बहुभृत्यधनो भोगी सुरपितृभक्तो महोद्यमः पित्र्ये।

प्रियवाग् दाता द्युतिमानटनो नृपसेवको भाग्ये ॥ ६ ॥

सं०—पित्र्ये (मघानक्षत्रे) जातः—बहुभृत्यधनः, भोगी, सुरपितृभक्तः, महोद्यमी च भवति । भाग्ये (पूर्वफाल्गुनीभे) जातः प्रियवाक्, दाता, द्युतिमान्, अटनः, नृपसेवकश्च भवति ॥ ६ ॥

भा०—मघा नक्षत्र में जन्म लेनेवाला बहुत धन, बहुत नौकरों से युक्त, भोगी, देवता और माता पिता का भक्त तथा महा उद्योगी होता है। पूर्वफाल्गुनी में उत्पन्न मनुष्य प्रियवक्ता, दाता, कान्तिमान्, भ्रमणशील और राजा का नौकर होता है ॥ ६ ॥

उत्तरफाल्गुनी और हस्तनक्षत्र में जन्म का फल—

सुभगो विद्याप्तधनो भोगी सुखभाग् द्वितीयफाल्गुन्याम् ।
उत्साही धृष्टः पानपोऽघृणी तस्करो हस्ते ॥७॥

सं०—द्वितीयफाल्गुन्यां जातः सुभगः, विद्याप्तधनः, भोगी, सुखभाक् च भवति । हस्ते जातः—उत्साही, धृष्टः, पानपः (मद्यप्रियः) अघृणी (अदयः) तस्करश्च भवति ॥ ७ ॥

भा०—उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में जन्म लेनेवाला सर्वप्रिय, विद्या से धन लाभ करनेवाला, भोगी और सुखी होता है। हस्त में उत्पन्न मनुष्य उत्साही, निर्लज्ज, मदिरा पीनेवाला, निर्दय और चोर होता है ॥ ७ ॥

चित्रा और स्वाती में जन्म का फल—

चित्राम्बरमाल्यधरः सुलोचनाङ्गश्च भवति चित्रायाम् ।
दान्तो वणिक् कृपालुः प्रियवाग् धर्माश्रितः स्वातौ ॥ ८ ॥

सं०—चित्रायां जातो जनः चित्राम्बरमाल्यधरः सुलोचनाङ्गश्च भवति। स्वातौ जातः दान्तो वणिक् कृपालुः प्रियवाक्, धर्माश्रितश्च भवति ॥ ८ ॥

भा०—चित्रा में जिस का जन्म होता है वह अनेक रङ्ग के वस्त्र और माला को धारण करनेवाला, सुन्दर लोचन और शरीरवाला होता है ।

स्वाती में जिस का जन्म हो वह क्लेश सहनेवाला, तपस्वी, उदार, व्यापारी, कृपालु, मधुरभाषी और धर्मात्मा होता है ॥ ८ ॥

विशाखा और अनुराधा में जन्म का फल—

ईर्ष्युर्लुब्धो द्युतिमान् वचनपटुः कलहकृद्विशाखासु ।
आढ्यो विदेशवासी क्षुधालुरटनोऽनुराधासु ॥९॥

सं०—विशाखासु जातः-ईर्ष्युः, लुब्धः, द्युतिमान्, वचनपटुः, कलहकृद् भवति । अनुराधासु जातः आढ्यः [धनी], विदेशवासी, क्षुधालुः, अटनो भ्रमणशीलश्च भवति ॥ ९ ॥

भा०—विशाखा में उत्पन्न मनुष्य ईर्ष्या करनेवाला, लोभी, कान्तियुक्त, बोलने में चतुर, और कलहकारक होता है । अनुराधा में—धनी, परदेशी, क्षुधार्त और भ्रमण शील होता है ॥ ९ ॥

ज्येष्ठा और मूल में जन्म का फल—

ज्येष्ठासु न बहुमित्रः सन्तुष्टो धर्मकृत् प्रचुरकोपः ।
मूले मानी धनवान् सुखी न हिंस्रः स्थिरो भोगी ॥१०॥

सं०—ज्येष्ठायां जातो जनो न बहुमित्रः [अल्पमित्रः] सन्तुष्टः, धर्मकृत्, प्रचुरकोपश्च भवति । मूले जातः—मानी, धनवान्, सुखी, न हिंस्रः [हिंसारहितः] स्थिरः [दृढनिश्चयः] भोगी च भवति ॥१०॥

भा०—ज्येष्ठा में उत्पन्न मनुष्य थोड़े मित्रवाला, सन्तोषी, धर्मात्मा परञ्च बड़ा ही क्रोधी होता है । मूल में उत्पन्न—मानी, धनी, सुखी, अहिंसक, स्थिरचित्त और भोगी होता है ॥ १० ॥

पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ में जन्म का फल—

इष्टानन्दकलत्रो मानी दृढसौहृदश्च जलदैवे ।
वैश्वे विनीतधार्मिकबहुमित्रकृतज्ञसुभगश्च ॥११॥

सं०—जलदैवे [पूर्वाषाढनक्षत्रे] जातः इष्टानन्दकलत्रः [इष्टानन्दं

कलत्रं पत्नी यस्य सः] मानी, दृढसौहृदश्च भवति । वैश्वे [उत्तराषाढभे] जातः— विनीतो धार्मिकबहुमित्रकृतज्ञसुभगश्च भवति ॥ ११ ॥

भा०— पूर्वाषाढनक्षत्र में जन्म लेनेवाला–इच्छानुसार आनन्ददेनेवाली स्त्री से युक्त, मानी और दृढ मैत्री करनेवाला होता है । उत्तराषाढनक्षत्र में—विनययुक्त, धर्मात्मा, अधिकमित्रवाला, कृतज्ञ (उपकार माननेवाला) और सर्वजनप्रिय होता है ॥ ११ ॥

श्रवण और धनिष्ठा में जन्म का फल—

श्रीमाञ्छ्रवणे श्रुतवानुदारदारो धनान्वितः ख्यातः ।
दाताढ्यशूरगीतप्रियो धनिष्ठासु धनलुब्धः ॥१२॥

सं०—श्रवणे जातः श्रीमान् श्रुतवान् [विद्वान्], उदारदारः धनान्वितः ख्यातश्च भवति । धनिष्ठासु जातः—दाता, आढ्यः शूरः, गीतप्रियः, धनलुब्धश्च भवति ॥ १२ ॥

भा०—श्रवणनक्षत्र में उत्पन्न पुरुष लक्ष्मीवान्, पण्डित, उदार भार्यावाला, धनवान् और विख्यात होता है । धनिष्ठा में दाता, धनी, शूर, गीतप्रिय और धन का लोभी होता है ॥ १२ ॥

शततारा और पूर्वभाद्रपदा में जन्म का फल—

स्फुटवाग्व्यसनी रिपुहा साहसिकः शतभिषासु दुर्ग्राह्यः ।
भाद्रपदासूद्विग्नः स्त्रीजितधनी पटुरदाता च ॥१३॥

सं०—शतभिषासु जातः स्फुटवाक्, व्यसनी, रिपुहा, साहसिकः [अविचारितकार्यकर्ता] दुर्ग्राह्यः [दुराराध्यः] भवति । भाद्रपदासु [पूर्वभाद्रपदासु] जातः उद्विग्नः [दुःखितचित्तः], स्त्रीजितधनी [स्त्रिया जितो धनी च], पटुः, अदाता च भवति ॥ १३ ॥

भा०—शतभिषानक्षत्र में उत्पन्न साफ साफ बोलने वाला, व्यसन (स्त्री सङ्ग आदि) से युक्त, शत्रु को जीतने वाला, बिना विचारे काम करने

वाले, किसी का वश न होने वाला होता है। पूर्वभाद्रपदा में—दुःखित हृदय, स्त्री के वश में रहने वाला, धनवान्, पण्डित और कदर्य होता है ॥१३॥

उत्तरभाद्रपदा और रेवती में जन्म का फल—

वक्ता सुखी प्रजावाञ्जितशत्रुर्धार्मिको द्वितीयासु।
सम्पूर्णाङ्गः सुभगः शूरः शुचिरर्थवान् पौष्णे ॥१४॥

इति श्रीवराहमिहिरकृते बृहज्जातके नक्षत्र-
फलाऽध्यायः षोडशः ॥१६॥

सं०—द्वितीयासु [उत्तरभाद्रपदासु] जातः वक्ता सुखी, प्रजावान्, जितशत्रुः धार्मिकश्च भवति। पौष्णे [रेवतीनक्षत्रे] जातः सम्पूर्णाङ्गः, सुभगः, शूरः, शुचिः, अर्थवान् भवति ॥ १४ ॥

भा०—उत्तरभाद्रपदा में उत्पन्न जन—वक्ता, सुखी, बहुत पुत्र पौत्रादि से युक्त, शत्रुको जीतनेवाला, धर्मात्मा होता है। रेवती में जन्म लेनेवाला सब अङ्गों से परिपूर्ण, सर्वजनप्रिय, सङ्ग्रामप्रिय, पवित्रहृदय और धनवान् होता है ॥ १४ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके ऋक्षशीलाध्यायः ॥ १६ ॥

अथ चन्द्रराशिशीलाध्यायः ॥१७॥

मेषराशिस्थचन्द्रफल—

वृत्ताताम्रदगुष्णशाकलघुभुक् क्षिप्रप्रसादोऽटनः
कामी दुर्बलजानुरस्थिरधनः शूरोऽङ्गनावल्लभः।
सेवाज्ञः कुनखी व्रणाङ्कितशिरा मानी सहोत्थाग्रजः
शक्त्या पाणितलेऽङ्कितोऽतिचपलस्तोयेऽतिभीरुः क्रिये ॥१॥

सं०—क्रिये [मेषे स्थिते चन्द्रे] जातः वृत्तातात्रदृक्, उष्णशाकलघुभुक्, क्षिप्रप्रसादः, अटनः, कामी, दुर्बलजानुः, अस्थिरधनः, शूरः, अङ्गना-

वल्लभः, सेवाज्ञः, कुनखी, व्रणाङ्कितशिराः, मानी, सहोत्थाग्रजः, पाणितले [हस्ते] शक्त्याऽङ्कितः अतिचपलः तोये भीरुश्च भवति ॥ १ ॥

भा०—जन्मसमय में चन्द्रमा मेष राशि में हो तो—वह जातक-गोल गोल रक्त वर्ण नेत्र वाला, गर्म, शाक और थोड़े भोजन करने वाला, जल्दी प्रसन्न होनेवाला, भ्रमणशील, कामी, कमजोर घुटनावाला, चल सम्पत्तिवाला, रणप्रिय (वीर), स्त्रियों का प्रिय, सेवाकार्य में चतुर, खराब नख वाला, शिर में घाव के चिह्न से युक्त, मानी, सहोदरों में ज्येष्ठ, हथेली में शक्तिरेखा (चिह्न) वाला, अत्यन्त चञ्चल और पानी में डरनेवाला होता है ॥ १ ॥

वृषराशिस्थचन्द्रमा का फल--

कान्तः खेलगतिः पृथूरुवदनः पृष्ठास्यपार्श्वेऽङ्कित-
स्त्यागी क्लेशसहः प्रभुः ककुद्वान् कन्याप्रजः श्लेष्मलः ।
पूर्वैर्बन्धुधनात्मजैर्विरहितः सौभाग्ययुक्तः क्षमी
दीप्ताग्निः प्रमदाप्रियः स्थिरसुहृन्मध्यान्त्यसौख्यो गवि ॥२॥

सं०—गवि [वृषराशौ स्थिते चन्द्रे] जातः कान्तः [मनोहररूपः] खेलगतिः, पृथूरुवदनः, पृष्ठास्यपार्श्वेऽङ्कितः, त्यागी, क्लेशसहः, प्रभुः, ककुद्वान् [उन्नतस्कन्धः], श्लेष्मलः, पूर्वैर्बन्धुधनात्मजैर्विरहितः सौभाग्ययुक्तः, क्षमी [क्षमावान्], दीप्ताग्निः, प्रमदाप्रियः, स्थिरसुहृत्, मध्यान्त्यसौख्यो भवति ॥ २ ॥

भा०—जन्मसमय में वृषराशि में चन्द्रमा हो तो वह जातक दर्शनीय स्वरूप, सविलासगमन करनेवाला, विशाल मुखवाला, पीठ, मुख, और पार्श्व में चिह्न (तिलमसकादि) से युक्त, दाता, क्लेश को सहने वाला, प्रभुत्व युक्त, ऊंचा कन्धावाला, कन्या सन्तानवाला, कफप्रकृति, प्रथम बन्धु, पूर्व का धन और प्रथम सन्तान से रहित, भाग्यवान्, क्षमाशील, दीप्त जठराग्निवाला (अन्न को शीघ्र पचानेवाला), स्त्रियों का प्रिय, स्थिर मैत्री करनेवाला और मध्यवयस (युवावस्था) तथा अन्त्य (वृद्धावस्था) में सुखयुक्त होता है ॥

मिथुन राशिगत चन्द्र का फल—

स्त्रीलोलः सुरतोपचारकुशलस्ताम्रेक्षणः शास्त्रविद्
दूतः कुञ्चितमूर्द्धजः पटुमतिर्हास्येङ्गितद्यूतवित् ।
चार्वङ्गः प्रियवाक् प्रभक्षणरुचिर्गीतप्रियो नृत्यवित्
क्लीबैर्याति रतिं समुन्नतनसश्चन्द्रे तृतीयर्क्षगे ॥ ३ ॥

सं०—तृतीयर्क्षगे (मिथुनस्थे) चन्द्रे जातः स्त्रीलोलः, सुरतोपचारकुशलः, ताम्रेक्षणः, शास्त्रविद्, दूतः, कुञ्चितमूर्द्धजः, पटुमतिः, हास्येङ्गितद्यूतवित्, चार्वङ्गः, प्रियवाक्, प्रभक्षणरुचिः, गीतप्रियः, नृत्यवित् भवति । क्लीबैः सह रतिं प्रीतिं याति (गच्छति करोतीत्यर्थः) समुन्नतनसश्च भवति ॥

भा०—यदि चन्द्रमा मिथुन में हो तो जातक स्त्री में विशेष इच्छा रखने वाला, कामशास्त्र में निपुण, रक्त नेत्रवाला, शास्त्रज्ञ, दूत का काम करनेवाला, कुटिल केश वाला, तीक्ष्ण बुद्धि, सब को हँसाने वाला, दूसरे की हृदय गत बात को जानने वाला, जूआ (सतरञ्ज, चौसर आदि खेल) को जानने वाला, सुन्दर शरीर वाला, मधुरभाषी, अधिक भोजन करने वाला, गीतप्रिय, नृत्य (नाच) जाननेवाला, नपुंसकों से प्रेम करनेवाला और ऊँची नाक वाला होता है ॥ ३ ॥

कर्कराशिस्थ चन्द्र का फल—

आवक्रद्रुतगः समुन्नतकटिः स्त्रीनिर्जितः सत्सुहृद्
दैवज्ञः प्रचुरालयः क्षयधनैः संयुज्यते चन्द्रवत् ।
ह्रस्वः पीनगलः समेति च वशं साम्ना सुहृद्वत्सल-
स्तोयोद्यानरतः स्ववेश्मसहिते जातः शशाङ्के नरः ॥ ४ ॥

सं०—स्ववेश्मसंहिते कर्कस्थे शशाङ्के चन्द्रे जातो नर आवक्रद्रुतगः (आवक्रं कुटिलं द्रुतं शीघ्रं च गच्छतीति-तथोक्तः) समुन्नतकटिः, स्त्रीनिर्जितः, सत्सुहृद्, दैवज्ञः, प्रचुरालयः (बहुभवनः) भवति । चन्द्रवत् क्षयधनैः

(ह्रासवृद्धिभिः) संकुच्यते, कदाचिन्निर्धनः, कदाचिद् धनपूर्णो भवतीत्यर्थः । ह्रस्वः, पीनगलश्च भवति । आज्ञा विनयेन वशमेति, सुहृद्वत्सलः, तोयोद्यानरतो नरो भवति ॥ ४ ॥

भा०—चन्द्रमा अपनी राशि (कर्क) में हो तो जातक कुटिल गति से शीघ्र चलनेवाला, उन्नत कटि (ऊँची जङ्घावाला), स्त्री का वशीभूत, अच्छे मित्रवाला, ज्योतिष जाननेवाला, अधिक घर बनानेवाला, चन्द्रमा के समान हानिवृद्धिवाला (अर्थात् कभी धनी कभी धनहीन), छोटे शरीरवाला किन्तु स्थूल गर्दनवाला, केवल प्रेम से वश में होनेवाला, मित्रों को प्रिय माननेवाला, जलाशय और बगीचे से प्रेम रखनेवाला होता है ॥ ४ ॥

सिंहस्थ चन्द्र का फल—

तीक्ष्णः स्थूलहनुर्विशालवदनः पिङ्गेक्षणोऽल्पात्मजः
स्त्रीद्वेषी प्रियमांसकाननगः कुप्यत्यकार्ये चिरम् ।
क्षुत्तृष्णोदरदन्तमानसरुजा सम्पीडितस्त्यागवान्
विक्रान्तः स्थिरधीः सुगर्वितमना मातुर्विधेयोऽर्कभे ॥ ५ ॥

सं०—अर्कभे सिंहे स्थिते चन्द्रे जातः तीक्ष्णः (अमर्षशीलः) स्थूलहनुः, विशालवदनः, पिङ्गेक्षणः, अल्पात्मजः, स्त्रीद्वेषी, प्रियमांसकाननगः (प्रिया मांसकाननगा यस्य सः तथोक्तो) भवति । चिरं (बहुकालं) अकार्ये कुप्यति, क्षुत्तृष्णोदरदन्तमानसरुजा सम्पीडितः, त्यागवान् (दाता) विक्रान्तः (पराक्रमी), स्थिरधीः, सुगर्वितमनाः, मातुर्विधेयः (आज्ञाकारी) भवति ॥ ५ ॥

भा०—सिंह में चन्द्रमा हो तो जातक तेजस्वी (अमर्षयुक्त), मोटी ठुड्डी, विशालमुख और पीले नेत्रवाला, थोड़े पुत्रवाला, स्त्री का द्वेषी, मांस, वन और पर्वत में प्रेम रखनेवाला, बिना कार्य ही अधिक समय क्रोध करनेवाला, क्षुधा, तृषा, उदर रोग और मानस रोग से पीड़ित, दानी, पराक्रमी, दृढ़बुद्धि, अभिमानी और माता का भक्त होता है ॥ ५ ॥

कन्यास्थित चन्द्र का फल—

व्रीडामन्थरचारुवीक्षणगतिः स्रस्तांसबाहुः सुखी
श्लक्ष्णः सत्यरतः कलासु निपुणः शास्त्रार्थविद्धार्मिकः।
मेधावी सुरतप्रियः परगृहैर्वित्तैश्च संयुज्यते
कन्यायां परदेशगः प्रियवचाः कन्याप्रजोऽल्पात्मजः॥ ६॥

सं०—कन्यायां स्थिते चन्द्रे जातः व्रीडामन्थरचारुवीक्षणगतिः (व्रीडया लज्जया मन्थरं मन्दं चारु शोभनं वीक्षणं, गतिर्गमनं च यस्य स तथोक्तः), स्रस्तांसबाहुः (स्रस्तौ शिथिलौ चांसौ स्कन्धौ बाहू च यस्य स तथोक्तः), सुखी श्लक्ष्णः (मृदुकायः) सत्यरतः, कलासु निपुणः, शास्त्रार्थविद्, धार्मिकः, मेधावी, सुरतप्रियो भवति। परगृहैर्वित्तैश्च संयुज्यते, परदेशगः, प्रियवचाः, कन्याप्रजः, अल्पात्मजः स्वल्पपुत्रो भवति॥ ६॥

भा०—सिंह में चन्द्रमा हो तो जन्म लेनेवाला मनुष्य लज्जा से आलस युत सुन्दर दृष्टिपात और गमनवाला, शिथिल (ढीले) कन्धा और बाहुवाला, सुखी, कोमलदेह, सत्यवक्ता, कलाओं में निपुण, शास्त्रतत्त्व को जाननेवाला, धर्मात्मा, बुद्धिमान, स्त्रीसंभोगप्रिय, दूसरे के घर और धन से युक्त, परदेशी, प्रियवक्ता, अधिक कन्या और थोड़े पुत्र सन्तानवाला होता है॥ ६॥

तुलागत चन्द्रमा का फल—

देवब्राह्मणसाधुपूजनरतः प्राज्ञः शुचिः स्त्रीजितः
प्रांशुश्चोन्नतनासिकः कृशचलद्गात्रोऽटनोऽर्थान्वितः।
हीनाङ्गः क्रयविक्रयेषु कुशलो देवद्विनामा सरुग्-
बन्धूनामुपकारकृद्विरूपितस्त्यक्तस्तु तैः सप्तमे॥ ७॥

सं०—सप्तमे तुले स्थिते चन्द्रे जातः देवब्राह्मणसाधुपूजनरतः, प्राज्ञः, शुचिः, स्त्रीजितः, प्रांशुः, उन्नतनासिकः, कृशचलद्गात्रः, अटनः, अर्थान्वितः, हीनाङ्गः, क्रयविक्रयेषु कुशलः, देवद्विनामा (देवपर्यायं द्वितीयं नाम यस्य सः),

सरुक्, बन्धूनां (स्वकुटुम्बानां) उपकारकृत् किन्तु स्वयं तैः (बन्धुभिः) विरुषितः (अनादृतः) त्यक्तश्च भवति ॥ ७ ॥

भा०—तुलाराशि में चन्द्रमा हो तो जातक—देव, विप्र और साधुओं का सत्कार करनेवाला, पण्डित, पवित्र, स्त्री का वश, उन्नत शरीर, ऊँची नाकवाला, दुर्बल और शिथिल अङ्गवाला, भ्रमणशील, धनवान्, अङ्गहीन, क्रयविक्रय में चतुर, देववाचक दो नामवाला, रोगयुक्त, कुटुम्बों का उपकार करनेवाला, किन्तु स्वयं उन्हीं कुटुम्बों से अपमानित और त्यक्त होता है ॥७॥

वृश्चिकस्थ चन्द्र का फल—

पृथुलनयनवक्षा वृत्तजङ्घोरुजानु-
र्जनकगुरुवियुक्तः शैशवे व्याधियुक्तः ।
नरपतिकुलपूज्यः पिङ्गलः क्रूरचेष्टो
झषकुलिशखगाङ्कश्छन्नपापोऽलिजातः ॥ ८ ॥

सं०—अलिजातः (अलौ वृश्चिके चन्द्रमसि जातः) पृथुलनयनवक्षाः, वृत्तजङ्घोरुजानुः, जनकगुरुवियुक्तः, शैशवे व्याधियुक्तः, नरपतिकुलपूज्यः, पिङ्गलः (कपिलवर्णः), क्रूरचेष्टः, झषकुलिशखगाङ्कः (पाणितले मत्स्य-वज्र-पक्षिचिह्नैश्चिह्नितः), छन्नपापश्च भवति ॥ ८ ॥

भा०—वृश्चिक में चन्द्रमा हो तो जातक विशाल नेत्र, विशालवक्षः स्थलवाला, गोल जङ्घा और जानु (ठेहुना) वाला, माता पिता और गुरु-जनों से हीन, बाल्यावस्था में रोगी, राजकुलों में पूज्य, कपिल वर्ण, कुटिल स्वभाव, हाथ वा पैर में मत्स्य, वज्र और पक्षी आकार की रेखा से युक्त तथा गुप्त पाप करने वाला होता है ॥८॥

धनुराशिगत चन्द्रमा का फल—

व्यादीर्घास्यशिरोधरः पितृधनस्त्यागी कविर्वीर्यवान्
वक्ता स्थूलरदश्रवोऽधरनसः कर्मोद्यतः शिल्पवित् ।

कुब्जांसः कुनखी समांसलभुजः प्रागल्भ्यवान् धर्मवित्-
बन्धुद्विट् न बलात्समेति च वशं साम्नैकसाध्योऽश्वजः॥९॥

सं०—अश्वजः (धनुष्युत्पन्नो) जनः व्यादीर्घास्यशिरोधरः, पितृधनः, त्यागी, कविः वीर्यवान्, वक्ता, स्थूलदरभवोऽधरनसः, कर्मोद्यतः, शिल्पवित्, कुब्जांसः, कुनखी, समांसलभुजः, प्रागल्भ्यवान्, धर्मविद्, बन्धुद्विट्, बलात् वशं न समेति, साम्नैकसाध्यो भवति ॥९॥

भा०—धनुराशि में चन्द्रमा हो तो लम्बामुख और लम्बा गलावाला, पिता से धन पानेवाला, दाता, कवि, बलवान्, वक्ता, स्थूल दाँत, स्थूल कान, और स्थूल ओठवाला, कार्य में उद्यत, शिल्प (चित्रादि) जानने-वाला, कुबड़े गर्दनवाला, मोटे बाहुवाला, प्रगल्भ, धर्मज्ञ, बन्धुओं का द्वेषी, बल से वश में नहीं होनेवाला, केवल प्रेम से वश में हो जानेवाला होता है।

मकरराशिस्थ चन्द्र का फल—

नित्यं लालयति स्वदारतनयान् धर्मध्वजोऽधः कृशः
स्वक्षः क्षामकटिर्गृहीतवचनः सौभाग्ययुक्तोऽलसः।
शीतालुर्मनुजोऽटनश्च मकरे सत्त्वाधिकः काव्यकृत्
लुब्धोऽगम्यजराङ्गनासु निरतः सन्त्यक्तलज्जोऽघृणः॥१०॥

सं०—मकरे स्थिते चन्द्रे जातो मनुजो नित्यं स्वदारतनयान् लालयति; धर्मध्वजः (मिथ्याधार्मिकः) अधःकृशः, स्वक्षः (सुनेत्रः), क्षामकटिः, गृहीतवचनः, सौभाग्ययुक्तः, अलसः, शीतालुः (शीतासहिष्णुः), अटनः, सत्त्वाधिकः (बलाधिकः), काव्यकृत्, लुब्धः, अगम्यजराङ्गनासु निरतः, सन्त्यक्तलज्जः, अघृणश्च भवति ॥१०॥

भा०—मकर राशि में उत्पन्न मनुष्य, नित्य अपनी स्त्री और सन्तान के पोषण करने वाला, धर्मध्वजी (धर्म कार्य में मिथ्या आडम्बर करनेवाला), कमर से नीचे कृश अङ्गवाला, सुन्दर नेत्रवाला, क्षीण कटि (कमर) वाला, अपने कहे हुए को [illegible] वाला, भाग्यवान्, आलसी, शीत से डरने

वाला, भ्रमणशील, बलवान्, कवि, लोभी, अगम्या और वृद्धा स्त्री से प्रेम करनेवाला, निर्लज्ज और निर्दय होता है ॥१०॥

कुम्भराशिस्थ चन्द्रमा का फल—

करभगलः शिरालुः खरलोमशदीर्घतनुः
पृथुचरणोरुपृष्ठजघनास्यकटिर्जरठः ।
परवनितार्थपापनिरतः क्षयवृद्धियुतः
प्रियकुसुमानुलेपनसुहृद्घटजोऽध्वसहः ॥११॥

सं०—घटजः (कुम्भराश्युत्पन्नो) मनुजः करभगलः (उष्ट्रग्रीवः), शिरालुः, खरलोमशदीर्घतनुः, पृथुचरणोरुपृष्ठजघनास्यकटिः, जरठः (मूर्खः), परवनिताऽर्थपापनिरतः, क्षयवृद्धियुतः, प्रियकुसुमानुलेपनसुहृत्, अध्वसहश्च भवति ॥ ११ ॥

भा०—कुम्भराशि में उत्पन्न मनुष्य ऊँट के समान गर्दन वाला, प्रकट नस (शिरा) वाला, रूखे और अधिक रोमयुक्त शरीरवाला, लम्बे लम्बे पैर, जङ्घा, पीठ, मुख, और विस्तृत कमरवाला, मूर्ख, परस्त्री, परद्रव्य और पाप कर्म में आसक्त, धनादि में ह्रास वृद्धिवाला, पुष्प, चन्दन और मित्रों में प्रीति रखनेवाला तथा भ्रमण शील होता है ॥११॥

मीन राशिस्थ चन्द्रमा का फल—

जलपरधनभोक्ता दारवासोऽनुरक्तः
समरुचिरशरीरस्तुङ्गनासो बृहत्कः ।
अभिभवति सपत्नान् स्त्रीजितश्चारुदृष्टि-
र्द्युतिनिधिधनभागी पण्डितश्चान्त्यराशौ ॥१२॥

सं०—अन्त्यराशौ (मीने स्थिते चन्द्रे) जातः जलपरधनभोक्ता दारवासोऽनुरक्तः, समरुचिरशरीरः, तुङ्गनासः (उन्नतनासिकः), बृहत्कः (बृहन्मस्तकः) सपत्नान् (शत्रून्) अभिभवति, स्त्रीजितः, चारुदृष्टिः, द्युतिनिधिधनभागी, पण्डितश्च भवति ॥१२॥

भा०—मीनराशि में जन्म लेनेवाला, जल से उत्पन्न धन (मोती आदि और दूसरे के धन) भोगने वाला, स्त्रियों में और वस्त्रों में अनुरागवाला, मझोला सुन्दर शरीरवाला, ऊँची नाक और बड़े मस्तकवाला, शत्रुओं को जीतनेवाला, स्त्री का वश, सुन्दर नेत्रवाला, कान्ति और निधि (खान से उत्पन्न) धन का भागी और पण्डित होता है ॥१२॥

उक्त फलों में पूर्णता योग—

बलवति राशौ तदधिपतौ च स्वबलयुतः स्याद्यदि तुहिनांशुः।
कथितफलानामविकलदाता शशिवदतोऽन्येऽप्यनुपरिचिन्त्याः॥

इति श्रीवराहमिहिरकृते बृहज्जातके राशिशीलाऽध्यायः सप्तदशः ॥१७॥

सं०—राशौ (जन्मकाले यत्र चन्द्रमाः स्थितस्तस्मिन् राशौ) बलवति सति, तदधिपतौ (तद्राशिस्वामिनि च) बलवति सति यदि च तुहिनांशुः (चन्द्रोऽपि) स्वबलयुतः स्यात् तदा स चन्द्रमाः कथितफलानां पूर्वोक्तराशिफलानामविकलदाता परिपूर्णफलप्रदाता भवति। अर्थात् राशिस्तदधिपतिश्चन्द्रश्चेति त्रयोऽपि बलवन्तश्चेत् तदोक्तं फलं पूर्णं भवति, एषु द्वौ बलिनौ चेत् तदा पादोनं एको बली चेत् तदाऽर्धं, यदि त्रयोऽपि निर्बलास्तदाऽत्यल्पं चरणमितं फलं भवतीत्यनुक्तमपि ज्ञेयम्। अन्येऽपि (रवि-कुजादयो ग्रहाः) शशिवत् परिचिन्त्याः, वक्ष्यमाणफलेषु परिकल्प्या इति ॥१३॥

भा०—जन्म समय जिस राशि में चन्द्रमा हो वह राशि, और उसका स्वामी तथा चन्द्रमा ये तीनों बलयुक्त हों तो उक्त फल पूर्णरूप से समझना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि इन तीनों में दो बली हों तो कुछ न्यून, यदि एक बली हो तो आधा, यदि सब निर्बल हों तो अत्यल्प फल होता है। इसी प्रकार (चन्द्रमा के समान ही) अन्य ग्रहों के फल में भी तारतम्य कर के आदेश करना चाहिये ॥१३॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके चन्द्रराशिशीलाध्यायः ॥१७॥

अथ चन्द्रान्यराशिशीलाध्यायः ॥१८॥

मेष और वृष स्थित सूर्य का फल—

प्रथितश्चतुरोऽटनोऽल्पवित्तः क्रियगे त्वायुधभृद्वितुङ्गभागे ।
गवि वस्त्रसुगन्धपण्यजीवी वनिताद्विट् कुशलश्च गेयवाद्ये ॥१॥

सं०—क्रियगे मेषस्थे भानौ वितुङ्गभागे (परमोच्चांशादन्यत्र स्थिते) जातः, प्रथितः, चतुरः, अटनः, अल्पवित्तः, आयुधभृद् भवति, उच्चांशे तु प्रख्यातः, परमचतुरः, अधिकवित्तो भवति । अटनो न भवति, स्वयमायुधभृन्न भवति, तस्यानुयायिन आयुधभृतो भवन्तीत्यर्थत एव सिद्ध्यति । गवि वृषे भानौ स्थिते जातः वस्त्रसुगन्धपण्यजीवी, वनिताद्विट्, गेयवाद्ये कुशलो भवति ॥ १ ॥

भा०—सूर्य जन्मसमय मेष राशि में उच्चांश (१० अंश) से अन्यत्र हो तो जातक विख्यात, चतुर, भ्रमणशील, थोड़े धनवाला, और शस्त्रधारी होता है । अर्थात् सिद्ध होता है कि यदि परमोच्चांश (१० वें अंश) तक हो तो खराब फल (अल्प वित्त और आयुधधारी होना जो कहा गया है वह) नहीं होता है । याने उच्चांश में रहने से बहुत धनी और उसके अनुयायी लोग शस्त्रधारी होते हैं । तथा वृष में सूर्य हो तो, वस्त्र, सुगन्ध (इत्र आदि) के व्यापार करने वाला, स्त्री का द्वेषी और गाने बजाने में निपुण होता है ॥

मिथुन कर्क सिंह कन्या गत सूर्य का फल—

विद्याज्योतिषवित्तवान् मिथुनगे भानौ कुलीरे स्थिते
तीक्ष्णोऽस्वः परकार्यकृच्छ्रमपथक्लेशैश्च संयुज्यते ।
सिंहस्थे वनशैलगोकुलरतिर्वीर्यान्वितोऽज्ञः पुमान्
कन्यास्थे लिपिलेख्यकाव्यगणितज्ञानान्वितः स्त्रीवपुः ॥२॥

सं०—मिथुनगे भानौ जातः विद्याज्योतिषवित्तवान् भवति । कुलीरे

स्थिते तीक्ष्णः (उग्रः), अस्वः (निर्धनः), परकार्यकृत्, श्रमपथक्लेशैश्च संयुज्यते। सिंहस्थे जातः पुमान् वनशैलगोकुलरतिः, वीर्यान्वितः, अज्ञश्च भवति। कन्यास्थे भानौ जातः लिपिलेख्यकाव्यगणितज्ञानान्वितः, स्त्री-वपुश्च भवति ॥ २ ॥

भा०—मिथुन में सूर्य हो तो जातक विद्वान्, ज्योतिषी और धनवान् होता है। कर्क में सूर्य हो तो उग्र स्वभाव, निर्धन, दूसरे का कार्य करने वाला, श्रम और मार्ग में चलने से क्लेश का भागी होता है। सिंह में सूर्य हो तो वन, पर्वत गोपालन में प्रेम रखने वाला, बलवान् और मूर्ख होता है। कन्या में सूर्य हो तो चित्र, लेख, काव्य और गणितशास्त्र को जानने वाला तथा स्त्री सदृश आकार वाला होता है ॥२॥

तुला, वृश्चिक, धनु और मकरस्थ सूर्य का फल—

जातस्तौलिनि शौण्डिकोऽध्वनिरतो हैरण्यको नीचकृत्
क्रूरः साहसिको विषार्जितधनः शस्त्रान्तगोऽलिस्थिते।
सत्पूज्यो धनवान् धनुर्द्धरगते तीक्ष्णो भिषक्कारुको
नीचोऽज्ञः कुवणिक् मृगेऽल्पधनवाँल्लुब्धोऽन्यभाग्ये रतः॥ ३॥

सं०—तौलिनि स्थिते सूर्ये जातः शौण्डिकः (मद्याजीविकः), अध्व-निरतः, हैरण्यकः (स्वर्णकारः), नीचकृत् (अनुचितकार्यकर्ता) भवति। अलिस्थिते सूर्ये जातः-क्रूरः, साहसिकः, विषार्जितधनः, शस्त्रान्तगो भवति। धनुर्धरगते सूर्ये जातः सत्पूज्यः,धनवान्, तीक्ष्णः, भिषक्, कारुकः (शिल्प-कर्मकृत्) भवति। मृगे मकरे स्थिते भानौ जातः नीचः, अज्ञः, कुवणिक्, अल्पधनवान्, अन्यभाग्ये (परधनादौ) रतो भवति ॥३॥

भा०—जन्म समय में सूर्य तुला में हो तो जातक मद्य व्यवसायी, मार्ग चलने वाला, सोनार और अपने कुल से निन्द्य कार्य को करने वाला होता है। वृश्चिक में सूर्य हो तो क्रूर, बिना विचारे कार्य करने वाला, विष आदि के द्वारा धनोपार्जन करने वाला, शस्त्र को चलाने वाला होता है।

धनु में सूर्य हो तो सज्जनों से पूजित, धनी, उग्र स्वभाव, वैद्य और चित्रकार होता है। मकर में सूर्य हो तो नीच, मूर्ख, निन्द्य व्यापार करने वाला, थोड़े धन वाला, लोभी और दूसरे के भाग्य से जीनेवाला होता है ॥३॥

कुम्भ और मीन स्थित सूर्य का फल—

नीचो घटे तनयभाग्यपरिच्युतोऽस्व-
स्तोयोत्थपण्यविभवो वनिताऽऽदृतोऽन्त्ये ।
नक्षत्रमानवतनुप्रतिमे विभागे
लक्ष्मादिशेत् तुहिनरश्मिदिनेशयुक्ते ॥४॥

सं० - घटे स्थिते सूर्ये जातः नीचः, तनयभाग्यपरिच्युतः, अस्वो (धनरहितश्च) भवति। अन्त्ये मीने स्थिते भानौ जातः तोयोत्थपण्यविभवः, वनितादृतश्च भवति। तुहिनरश्मिदिनेशयुक्ते नक्षत्रमानवतनुप्रतिमे विभागे अङ्गे लक्ष्म (चिह्नं) आदिशेत् ॥४॥

भा०—सूर्य कुम्भ में हो तो जातक नीच (अनुचित कार्य करनेवाला), पुत्र और भाग्य से परित्यक्त तथा निर्धन होता है। मीन में सूर्य हो तो जलोत्पन्न वस्तु (मोती आदि) के व्यापार से धन लाभ करने वाला और स्त्री से पूजित होता है। सूर्य और चन्द्रमा जिस राशि में दोनों एक साथ हों वह राशि नक्षत्र मानव ('कालाङ्गानि' इत्यादि कथित कालपुरुष) के जिस अङ्ग में हो उस अङ्ग पर चिह्न (मसक, तिल आदि) कहना चाहिये। जैसे मेष में हो तो मस्तक पर, वृष में हो तो मुख पर, इत्यादि ॥४॥

मेष वृश्चिक और वृष तुलागत मङ्गल का फल—

नरपतिसत्कृताऽटनचमूपवणिक्सधनान्
क्षततनुचौरभूरिविषयांश्च कुजः स्वगृहे ।
युवतिजितान् सुहृत्सु विषमान् परदाररतान्
कुहकसुवेषभीरुपरुषान् सितभे जनयेत् ॥५॥

सं०—कुजः स्वर्क्षे (मेषे, वृश्चिके वा स्थितस्तदा) नरपतिसत्कृता-टनचमूपवणिक्सधनान्, क्षततनुचोरभूरिविषयांश्च पुरुषान् जनयेत् । सितभे (शुक्रराशौ वृषे तुले वा स्थितः कुजः) युवतिजितान्, सुहृत्सु विषमान् (कुटिलान्), परदाररतान्, कुहकसुवेषभीरुपरुषान् जनान् जनयेत् उत्पादयतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

भा०—जन्म समय मङ्गल मेष या वृश्चिक में हो तो जातक राजा से सत्कार पानेवाला, भ्रमणशील, सेनापति, व्यापारी और धनवान् पुरुष को पैदा करता है । यदि वृष या तुला में मङ्गल हो तो स्त्री के वश में रहनेवाला मित्रों से कपट करनेवाला, परस्त्री में रत, इन्द्रजाल विद्या जाननेवाला, सुन्दर वेषवाला, डरपोक और कर्कश मनुष्य को पैदा करता है ॥५॥

मिथुन कन्या और कर्क स्थित मङ्गल का फल—

बौधेऽसहस्तनयवान् विसुहृत् कृतज्ञो
गान्धर्वयुद्धकुशलः कृपणोऽभयोऽर्थी ।
चान्द्रेऽर्थवान् सलिलयानसमर्जितस्वः
प्राज्ञश्च भूमितनये विकलः खलश्च ॥६॥

सं०—भूमितनये बौधे (बुधराशौ मिथुने कन्यायां वा स्थिते) जातः—असहः, तनयवान्, विसुहृत्, कृतज्ञः, गान्धर्वयुद्धकुशलः, अभयः, अर्थी (प्रार्थनातत्परः) भवति । चान्द्रे (चन्द्रराशौ कर्के स्थिते भूमितनये) जातः—अर्थवान्, सलिलयानसमर्जितस्वः, प्राज्ञः, विकलः (अङ्गहीनः) खलश्च भवति ॥ ६ ॥

भा०—मङ्गल यदि मिथुन या कन्या में हो तो जातक असह (किसी की अनुचित कथा को बर्दाश्त नहीं करनेवाला अर्थात् तेजस्वी), पुत्रवान्, मित्र रहित, कृतज्ञ (उपकार को माननेवाला) गाने, बजाने में और युद्ध भूमि में निपुण, कृपण, निर्भय किन्तु याचक होता है । यदि कर्क में कुज हो

तो जातक–धनवान्, नौका द्वारा धनोपार्जन करनेवाला, पण्डित, अङ्गहीन और शठ होता है ॥६॥

सिंह, धनु, मीन, मकर और कुम्भ स्थित मङ्गल का फल—

निःस्वः क्लेशसहो वनान्तरचरः सिंहेऽल्पदारात्मजो
जैवे नैकरिपुर्नरेन्द्रसचिवः ख्यातोऽभयोऽल्पात्मजः ।
दुःखार्तो विधनोऽटनोऽनृतरतस्तीक्ष्णश्च कुम्भस्थिते
भौमे भूरिधनात्मजो मृगगते भूपोऽथवा तत्समः ॥७॥

सं०—भौमे सिंहे स्थिते जातः–निस्वः, क्लेशसहः, वनान्तरचरः, अल्पदारात्मजो भवति । जैवे (जीवराशौ धनुषि मीने वा स्थिते) जातः–नैकरिपुः, नरेन्द्रसचिवः, ख्यातः, अभयः, अल्पात्मजो भवति । कुम्भस्थिते भौमे जातः–दुःखार्त्तः, विधनः, अटनः, अनृतरतः (मिथ्यावादी), तीक्ष्णश्च भवति । मृगगते (मकरस्थे भौमे) जातः भूरिधनात्मजः, भूपोऽथवा तत्समः राजतुल्यो वा) भवति ॥७॥

भा०—जन्मसमय में मङ्गल सिंह राशि में हो तो जातक-निर्धन, क्लेश सहनेवाला, वन में घूमनेवाला, अल्प स्त्री और अल्प पुत्रवाला होता है। यदि धनु या मीन में मङ्गल हो तो अधिक शत्रुवाला, राजा का मन्त्री, विख्यात, निर्भय, और थोड़े पुत्रवाला होता है। कुम्भ में मङ्गल हो तो दुःख से पीड़ित, धनहीन, भ्रमणशील, मिथ्याभाषी, उग्र स्वभाव होता है। मकर में मङ्गल हो तो बहुत धन और बहुत पुत्रवाला राजा या राजा के तुल्य होता है ॥ ७ ॥

मेष, वृश्चिक और वृष तुलागत बुध का फल—

धूर्तपामरतनास्तिकचौरनिःस्वाः
स्त्रीकःकूटकृदनृतरताः   कुजर्क्षे ।
आचार्यभूरिसुतदारधनार्जनेष्टः
शौक्रे वदान्यगुरुभक्तिरतश्च सौम्ये ॥ ८ ॥

सं०—सौम्ये बुधे कुजर्क्षे [मेषे, वृश्चिके वा स्थिते सति] जाताः द्यूतर्णपानरतनास्तिकचौरनिःस्वाः, कुस्त्रीककूटकृदसत्यरताश्च भवन्ति । शौक्रे [शुक्रराशौ वृषे, तुलायां वा स्थिते बुधे] जाताः—आचार्यभूरिसुतदारधनार्जनेष्टाः, वदान्यगुरुभक्तिरताश्च भवन्ति ॥ ८ ॥

भा०—जन्मकाल में बुध यदि मेष या वृश्चिक में हो तो जातक-जुआड़ी, ऋण करनेवाला, मद्यपायी, नास्तिक, चोर, निर्धन, दुष्ट स्त्री वाला, जाल बनानेवाला, मिथ्याभाषी होता है। यदि वृष या तुला में बुध हो तो जातक अध्यापक, बहुत पुत्रवाला, बहुत स्त्री और बहुत धनोपार्जन करनेवाला, उदार हृदय और गुरुजन [माता पिता आदि] का भक्त होता है ॥

मिथुन, और कर्क राशिगत बुध का फल—

विकत्थनः शास्त्रकलाविदग्धः प्रियंवदः सौख्यरतस्तृतीये ।
जलार्जितस्वः स्वजनस्य शत्रुः शशाङ्कजे शीतकरर्क्षयुक्ते ॥

सं०—शशाङ्कजे (बुधे) तृतीये मिथुने स्थिते सति जातः विकत्थनः (वाचालः), शास्त्रकलाविदग्धः, प्रियंवदः सौख्यरतश्च भवति । शीतकरर्क्षयुक्ते कर्कस्थे बुधे जातः जलार्जितस्वः, स्वजनस्य शत्रुर्भवति ॥९॥

भा०—बुध यदि मिथुन राशि में हो तो जातक वाचाल (अधिक बोलने वाला), शास्त्रकला जाननेवाला, प्रियभाषी और सुखी होता है। यदि कर्क में बुध हो तो जलोत्पन्न वस्तुओं से धन उपार्जन करनेवाला, और अपने कुटुम्बों का शत्रु होता है ॥ ९ ॥

सिंह और कन्या गत बुध का फल—

स्त्रीद्वेष्यो विधनसुखात्मजोऽटनोऽज्ञः
स्त्रीलोलः स्वपरिभवोऽर्कराशिगे ज्ञे ।
त्यागी ज्ञः प्रचुरगुणः सुखी क्षमावान्
युक्तिज्ञो विगतभयश्च षष्ठराशौ ॥ १०॥

सं०—ज्ञे (बुधे) अर्कराशिगे, सिंहस्थिते जातः स्त्रीद्वेष्यः, विधन-

सुखात्मजः, अटनः, अज्ञः, स्त्रीलोलः (वनिताभिलाषी), स्वपरिभवः (स्वादात्मीयजनात् परिभवोऽनादरो यस्य स तथोक्तः) भवति । षष्ठराशौ (कन्यायां स्थिते बुधे) जातकः त्यागी, ज्ञः, प्रचुरगुणः, सुखी, क्षमावान्, युक्तिज्ञः, विगतभयश्च भवति ॥ १० ॥

भा०—बुध यदि सिंह राशि में हो तो जातक स्त्री का शत्रु, धन सुख और सन्तानों से हीन, भ्रमणशील, मूर्ख, स्त्रीलम्पट (परवनिताभिलाषी), अपने जनों से अनादृत होता है। यदि कन्याराशि में बुध हो तो दाता, विद्वान्, बहुत गुणों से युक्त, सुखी, क्षमाशील, युक्ति को जानने वाला और निर्भय होता है ॥ १० ॥

मकर कुम्भ और धनु मीन स्थित बुध का फल—

परकर्मकृदस्वशिल्पबुद्धिर्ऋणवान् विष्टिकरो बुधेऽर्कजर्क्षे ।
नृपसत्कृतपण्डिताप्तवाक्यो नवमेऽन्त्ये जितसेवकोऽन्त्यशिल्पः ॥

सं०—अर्कजर्क्षे (मकरे, कुम्भे वा स्थिते) बुधे जातः परकर्मकृत् अस्वशिल्पबुद्धिः ऋणवान् विष्टिकरः (पराज्ञापालकः) भवति । नवमे (धनुषि) स्थिते बुधे जातः नृप-सत्कृत-पण्डिताऽऽप्तवाक्यो भवति । अन्त्ये (मीनराशौ) बुधे जातः जितसेवकः अन्त्यशिल्पः (नीचकार्य-कृत्) भवति ॥ ११ ॥

भा०—यदि मकर या कुम्भ में बुध हो तो जातक दूसरे का कार्य करने वाला, निर्धन, शिल्प कर्म जाननेवाला, ऋण लेनेवाला, दूसरे का हुक्म करने वाला होता है। यदि धनु में बुध हो तो जातक राजा से पूजित, पण्डित, अपने अनुकूल बात को जाननेवाला (व्यवहारज्ञ) होता है। मीन में बुध हो तो सेवक को जीतने (वश करने) वाला और निन्द्यकर्म करनेवाला होता है ॥ ११ ॥

मेष वृश्चिक, वृष, तुला और मिथुन कन्यागत गुरु का फल—

सेनानीर्बहुवित्तदारतनयो दाता सुभृत्यः क्षमी

तेजोदारगुणान्वितः सुरगुरौ ख्यातः पुमान् कौजभे ।
कल्पाङ्गः ससुखार्थमित्रतनयस्त्यागी प्रियः शौक्रभे
बौधे भूरिपरिच्छदात्मजसुहृत् साचिव्ययुक्तः सुखी ॥१२॥

सं०—कौजभे (कुजराशौ मेषे, वृश्चिके वा) स्थिते सुरगुरौ जातः सेनानीः, बहुवित्तदारतनयः, दाता, सुभृत्यः, क्षमी, तेजोदारगुणान्वितः (तेजसा दारगुणैः स्त्रीसौख्यैर्युतः) ख्यातश्च भवति । शौक्रभे (शुक्रराशौ वृषे तुलायां वा स्थिते गुरौ) जातः—कल्याङ्गः (दृढदेहः) ससुखार्थमित्रतनयः, त्यागी प्रियश्च भवति । बौधे (बुधराशौ मिथुने कन्यायां वा गुरौ) जातः—भूरिपरिच्छदात्मजसुहृत्, साचिव्ययुक्तः, सुखी च भवति ॥१२॥

भा०—मेष या वृष, वृश्चिक में बृहस्पति हो तो जातक—सेनापति, बहुत धन, बहुत स्त्री और बहुत पुत्रवाला दाता, अच्छे नौकरवाला, क्षमावान्, कान्ति और स्त्री सुख से युक्त, विख्यात पुरुष होता है। यदि गुरु वृष या तुला में हो तो जातक - मजबूत देहवाला, धनी, सुख, मित्र और पुत्र से युक्त, दाता और सर्वजन प्रिय होता है। यदि मिथुन या कन्या में गुरु हो तो अनेक वस्त्रों से युत; बहुत पुत्र और मित्रों से युक्त; राजमन्त्री और सुखी होता है ॥ १२ ॥

कर्क सिंह धनु मीन मकर और कुम्भ स्थित गुरु का फल—

चान्द्रे रत्नसुतस्वदारविभवप्रज्ञासुखैरन्वितः
सिंहे स्याद्बलनायकः सुरगुरौ प्रोक्तश्च यच्चन्द्रभे ।
स्वर्क्षे माण्डलिको नरेन्द्रसचिवः सेनापतिर्वा धनी
कुम्भे कर्कटवत्फलानि मकरे नीचोऽल्पवित्तोऽसुखी ॥१३॥

सं०—सुरगुरौ चान्द्रे (चन्द्रराशौ कर्के स्थिते) जातः रत्नसुतस्वदारविभवप्रज्ञासुखैरन्वितो भवति । सिंहे स्थिते सुरगुरौ जातो बलनायकः (सेनापतिः) भवति । तथा चन्द्रभे यद् फलं प्रोक्तं तद् सिंहेऽप्यपि

भवति। स्वर्क्षे धनुषि मीने वा स्थिते गुरौ जातः माण्डलिको नरेन्द्रसचिवः, सेनापतिः, अथवा धनी भवति। कुम्भे स्थिते गुरौ कर्कटवत् (कर्कराशौ यथातथा) फलानि ज्ञेयानि। मकरे स्थिते गुरौ नीचः, अल्पवित्तः असुखी च भवति ॥ १३ ॥

भा०—कर्क में बृहस्पति हो तो जातक रत्न, पुत्र, धन, स्त्री, ऐश्वर्य, बुद्धि और सर्व सुखों से युक्त होता है। सिंह में गुरु हो तो कर्क के जो फल कहे गये हैं वे सब तथा सेनापति होता है। धनु या मीन में गुरु हो तो मण्डलाधीश (प्रान्तपति), राजमन्त्री, सेनापति वा धनी होता है। कुम्भ में गुरु हो तो कर्क समान सब फल समझना। यदि मकर में गुरु हो तो नीच, निर्धन और दुःखी होता है ॥ १३ ॥

मेष, वृश्चिक और वृष तुला स्थित शुक्र का फल—

परयुवतिरतस्तदर्थवादैर्हृतविभवः कुलपांसनः कुजर्क्षे।
स्वबलमतिधनो नरेन्द्रपूज्यः स्वजनविभुः प्रथितोऽभयः सिते स्वे॥

सं०—सिते शुक्रे कुजर्क्षे (मेषे वृश्चिके वा स्थिते) जातः—परयुवतिरतः, तदर्थवादैर्हृतविभवः, कुलपांसनश्च भवति। स्वे (स्वराशौ वृषे तुले वा) स्थिते शुक्रे जातः—स्वबलमतिधनः, नरेन्द्रपूज्यः, स्वजनविभुः, प्रथितः (ख्यातः), अभयश्च भवति ॥ १४ ॥

भा०—यदि शुक्र मेष या वृश्चिक में हो तो जातक—परस्त्रीगामी, तथा उसी अपवाद से धनहीन और कुल में दाग लगानेवाला होता है। यदि शुक्र अपने घर (वृष या तुला) में हो तो अपने बल और बुद्धि से धन कमानेवाला, राजमान्य, अपने कुटुम्बों में श्रेष्ठ, विख्यात और निर्भय होता है ॥ १४ ॥

मिथुन कन्या और मकर कुम्भ गत शुक्र का फल—

नृपकृत्यकरोऽर्थवान् कलाविन्मिथुने षष्ठगतेऽतिनीचकर्मा।
रविजर्क्षगतेऽमरारिपूज्ये सुभगः स्त्रीविजितो रतः कुनार्याम् ॥

सं०—अमरारिपूज्ये शुक्रे मिथुने स्थिते जातकः—नृपकृत्यकरः, अर्थवान्, कलावित् भवति। षष्ठगते कन्यास्थिते शुक्रे अतिनीचकर्मा भवति। रविजर्क्षगते (मकरकुम्भस्थे शुक्रे) सुभगः, स्त्रीविजितः, कुनार्यां रतश्च भवति ॥ १५ ॥

भा०—शुक्र यदि मिथुन में हो तो राजा का कार्य करनेवाला, धनी और कला को जाननेवाला होता है। कन्या में शुक्र हो तो अत्यन्त निन्द्य कर्म करनेवाला होता है। यदि मकर या कुम्भ में शुक्र हो तो सुन्दर (सर्व-प्रिय), स्त्री के वश में रहनेवाला तथा कुचालवाली स्त्री में आसक्त होता है ॥ १५ ॥

कर्क, सिंह, धनु और मीन गत शुक्र का फल—

द्विभार्योऽर्थी भीरुः प्रबलमदशोकश्च शशिभे
हरौ योषाप्तार्थः प्रबलयुवतिर्मन्दतनयः।
गुणैः पूज्यः सस्वस्तुरगसहिते दानवगुरौ
झषे विद्वानाढ्यो नृपजनितपूजाऽतिसुभगः॥१६॥

सं०—दानवगुरौ शुक्रे शशिभे (कर्के स्थिते) जातः द्विभार्यो द्विपत्नीकः, अर्थी याचकः, भीरुः प्रबलमदशोकश्च भवति। हरौ सिंहे स्थिते शुक्रे जातः योषाप्तार्थः, प्रबलयुवतिः, मन्दतनयः (अल्पसन्ततिः) भवति। तुरगसहिते धनुषि स्थिते शुक्रे जातः गुणैः पूज्यः, सस्वः सधनो भवति। झषे मीने स्थिते दानवगुरौ शुक्रे जातो विद्वान्, आढ्यः (धनवान्), नृपपूजितः, अतिसुभगः (सकलजनप्रियः) भवति ॥१६॥

भा०—शुक्र यदि कर्क में हो तो जातक—दो स्त्री वाला, याचना करनेवाला, सभय, विशेष मद (गर्व) वाला और प्रबल शोक से युक्त होता है। सिंह में शुक्र हो तो स्त्री के द्वारा धन काम करनेवाला, स्त्री के वश में रहनेवाला और थोड़ी सन्ततिवाला होता है। धनु में शुक्र हो तो

बहुतों से पूजित, और धनवान् होता है। मीन में शुक्र हो तो विद्वान्, धनवान्, राजा का मान्य और सर्वजनप्रिय होता है ॥१६॥

मेष, वृश्चिक, मिथुन और कन्यास्थित शनि का फल—

मूर्खोऽटनः कपटवान् विसुहृद्यमेऽजे
कीटे तु बन्धवधभाक् चपलोऽघृणश्च।
निर्ह्रीसुखार्थतनयः स्खलितश्च लेख्ये
रक्षापतिर्भवति मुख्यपतिश्च बौधे ॥१७॥

सं०—यमे (शनैश्चरे) अजे मेषस्थे जातः—मूर्खः, अटनः, कपटवान्, विसुहृत् (मित्ररहितश्च) भवति। कीटे वृश्चिके स्थिते शनौ बन्धवधभाक्, चपलः, अघृणः (निर्दयश्च) भवति। बौधे (बुधराशौ मिथुने कन्यायां वा स्थिते शनौ) निर्ह्रीसुखार्थतनयः, लेख्ये (लेखकर्मणि) स्खलितः (अनभिज्ञश्च), रक्षापतिः, मुख्यपतिश्च भवति ॥ १७ ॥

भा०—शनि यदि मेष में हो तो जातक मूर्ख, भ्रमणशील, कपटी, मित्रों से रहित होता है। वृश्चिक में शनि हो तो बन्धन और बध का भागी, चपल और निर्दय होता है। यदि मिथुन या कन्या में शनि हो तो निर्लज्ज, सुखहीन, लेख कर्म में अनभिज्ञ, रक्षक (चौकीदार) या प्रधानपति (मुख्य रक्षक) होता है ॥ १७ ॥

वृष, तुला, कर्क और सिंहस्थ शनि का फल—

वर्ज्यस्त्रीष्टो न बहुविभवो भूरिभार्यो वृषस्थे
ख्यातः स्वोच्चे गणपुरबलग्रामपूज्योऽर्थवांश्च।
कर्किण्यस्वो विकलदशनो मातृहीनोऽसुतोऽज्ञः
सिंहेऽनार्यो विसुखतनयो विष्टिकृत् सूर्यपुत्रे ॥१८॥

सं०—सूर्यपुत्रे शनौ वृषस्थे जातः वर्ज्यस्त्रीष्टः (वर्ज्यस्त्रीणामिष्टो भवेत्), न बहुविभवः (अल्पधनः), भूरिभार्यः (बहुपत्नीकश्च) भवति।

स्वोर्वे (तुलास्थे शनौ) ख्यातः, गणपुरबलग्रामपूज्यः, अर्थवांश्च भवति। कर्किणि स्थिते शनौ जातः—अस्वः (निर्धनः), विकलदशनः, मातृहीनः, असुतः (सन्तानहीनः), अज्ञः (मूर्खश्च) भवति। सिंहे स्थिते शनौ जातः— अनार्यः (दुराचारः), विसुखतनयः, विष्टिकृत् (भारवाहकः) भवति ॥१८॥

भा०—वृष में शनि हो तो अगम्या स्त्री का प्रेमी, अल्पधनवान्, बहुत स्त्रियों का पति होता है। तुला में शनि हो तो जातक विख्यात-जनसमूह में, नगर में, सेना में या गाँव में अग्रगण्य और धनवान् होता है। कर्क में शनि हो तो धनहीन, अल्पदाँत वाला या दाँत का रोगी, मातृहीन, पुत्रहीन, और मूर्ख होता है। सिंह में शनि हो तो विचारहीन, दुःखी, पुत्रहीन, और भारवाही होता है ॥ १८ ॥

धनु मीन और मकर कुम्भगत शनि का फल —

स्वन्तः प्रत्ययितो नरेन्द्रभवने सत्पुत्रजायाधनो
जीवक्षेत्रगतेऽर्कजे पुरबलग्रामाग्रनेताऽथवा।
अन्यस्त्रीधनसंवृतः पुरबलग्रामाग्रणीर्मन्ददृक्
स्वक्षेत्रे मलिनः स्थिरार्थविभवो भोक्ता च जातः पुमान्॥ १९॥

सं०—अर्कजे (शनौ) जीवक्षेत्रगते (धनुषि मीने वा स्थिते) जातः पुमान् स्वन्तः (सुष्ठु शोभनोऽन्तो यस्य स स्वन्तः सन्मृत्युः। अथवा सुष्ठु अन्तो निश्चयो यस्य स॰स्वन्तः सुकार्यफलः) नरेन्द्रभवने प्रत्ययितः (विश्वास-पात्रम्), सत्पुत्रजायाधनः, अथ वा पुरबलग्रामाग्रनेता भवति। स्वक्षेत्रे (मकरे कुम्भे वा स्थिते शनौ) जातः—अन्यस्त्रीधनसंवृतः, पुरबलग्रामाग्रणीः, मन्ददृक्, मलिनः, स्थिरार्थविभवः, भोक्ता च भवति ॥१९॥

भा०—यदि शनि धनु या मीन में हो तो जातक—अन्त में सुख पाने वाला, राजा के घर में विश्वासपात्र, सत्पुत्र, सुन्दरी स्त्रीवाला, अच्छे धन सम्पन्न, अथवा शहर, सेना या ग्राम का मुखिया होता है। यदि मकर या कुंम्भ में शनि हो तो पर स्त्री परधन से युक्त, नगर सेना या ग्राम का

अक्षिपति, मन्दज्योति आँखवाला, मलिन, स्थिर धन ऐश्वर्य वाला और भोगी होता है ॥ १९ ॥

द्वादशराशियों के लग्न फल कहते हैं—

शिशिरकरसमागमेक्षणानां सदृशफलं प्रवदन्ति लग्नजातम् ।
फलमधिकमिदं यदत्र भावा भवनमनाथगुणैर्विचिन्तनीयाः ॥

इति श्रीबृहज्जातके ग्रहराशिशीलयोगाऽध्यायोऽष्टादशः ॥२०॥

सं०—शिशिरकरसमागमेक्षणानां मेषादिराशीनां सदृशफलं लग्नजातं मेषादिराशिलग्नसम्भूतं फलं आचार्याः प्रवदन्ति । यथा—मेषादिराशिस्थे चन्द्रे यद् यत् फलं प्रोक्तं तत् तन्मेषादिलग्नस्यापि फलं भवतीत्यर्थः । तथा चन्द्रेक्षणफलं "चन्द्रे भूपबुधौ" इत्यादि यत् प्रोक्तं तदपि लग्नजातं वक्तव्यम् । किन्त्वत्र लग्ने "इदं फलमधिकं" यत् भावास्तन्वादयो भावा भवन-भनाथ-गुणैः (राशिस्वामिबलैः) विचिन्त्या विज्ञेयाः । यथा भावराशिस्त-त्स्वामी चोभौ बलिनौ तदा तस्य भावस्यातीवपुष्टिः । यदि द्वयोरेकतरो बली तदा मध्यममानेन भावपुष्टिः । यदा द्वौ निर्बलौ तदा भावफलाभाव इत्याद्यनुक्तमपि बुद्धिमतोहनीयम् ॥ २० ॥

भा०—मेषादिराशियों में चन्द्र के योग और दृष्टि के जो जो फल कहे गये हैं उनके समान ही मेषादि लग्नों के फल होते हैं। किन्तु लग्न में इतनी विशेषता है कि लग्नादि भावों की राशि और राशियों के स्वामी के गुणों के अनुसार भावों के फल होते हैं ॥

जैसे—मेषराशिस्थचन्द्र के जो फल, पूर्व "वृत्तातामदृग्" इत्यादि तथा आगे "चन्द्रे भूपबुधौ" इत्यादि दृष्टि फल जो कहे गये हैं वे मेषलग्न के भी समझना चाहिये। भाव फल में विशेषता यह है कि—जिस भाव की राशि और राशिस्वामी दोनों बली हो तो उस भाव की पूर्ण वृद्धि, एक बली हो तो मध्यम, दोनों निर्बल हों तो भाव की हानि, तथा ६,८,१२ भाव में विपरीत होते हैं ॥ २० ॥

मेषादि राशि के स्वरूप और स्वभावानुसार मेषादि लग्न के फल जो सत्याचार्य ने कहे हैं, वे प्रसङ्गवश यहाँ दिये जाते हैं।

"मेषविलग्ने कुनखी सुरोषणो भेदकृत्स्खलितवाक्यः। पित्तानिलभूयिष्ठः कृपणोऽतिबहुव्ययश्चैव ॥ रहितो बाल्ये गुरुभिर्मन्दसुतः स्वजनसहजहितकर्ता। धर्मस्थितो विदेशोपगश्च कर्मारम्भत्यफलम् ॥ नीचो वा पिशुनो वा विकलो लभतेन्यपूर्विकां भार्याम्। सहजसमान्यपि मित्राणि चास्य बन्धुत्वमुपयान्ति ॥ शस्त्रेण वा विषैर्वा मरणं पित्तोद्भवैर्विकारैर्वा। स्वात्पक्षाज्ज्वलनाद्वा वर्षाद्दुर्गात् प्रपतनाद्वा ॥ वृषभविलग्ने स्थूलोष्ठगण्डनासो महाललाटश्च। श्लेष्मानिलभूयिष्ठस्त्यागी बहुशो व्ययरतश्च ॥ कन्याप्रजोऽल्पपुत्रः पितुर्जनन्याश्च दोषकृद्बहुशः। कर्मणि सततं सक्तो विधर्मयुक्तोऽर्थभाक् चैव ॥ नित्यं कलत्रकांक्षी शत्रुविघाती सदा स्वजनहर्ता। मृत्युः शस्त्रैः पाशैर्मृगैश्च लभतेऽन्यदेशेषु ॥ देहश्रमैर्जलैर्वा शूलैर्वाप्यटननिरसनैश्चैव। पुरुषश्चतुष्पदैर्वा बलान्वितान्मृत्युमुपयाति ॥ पूर्वविलग्ने मिथुने हीनांगः सूयतेऽधिकाङ्गो वा। प्रियवाग्विशिष्टकर्मा मिश्रप्रकृतिर्द्विजवनीकः॥ अल्पमतिरल्पकायः सतां च महितो गुरूणां च। अल्पसहजोऽल्पचेष्टः परावमर्दी गुणयुतश्च ॥ कर्मसु बहुष्वभिरतो धर्मं साधयति न चाथ धर्मेण। प्राप्तांल्लाभान् विविधान् दोषैस्तैस्तैश्च नाशयति ॥ बह्वीः पत्नीर्लभते रोगांश्च दारुणाञ्जयति। व्यालाद्विषान्मृगाद्वाप्युदकाद्वा मृत्युमुपयाति ॥ कर्किणि पूर्वविलग्ने नैकाग्रो गुह्यरोगवान् भीरुः। उरसि कृताभिज्ञानः कफानिलात्मा हठग्राही ॥ पापानहितान्भजते परस्वमपि निक्षिपेद्व्ययेन सकृत्। स्वजनाहतः स्वजनैर्विमत्सितो ह्यस्थिरप्रसवः ॥ तीक्ष्णं कर्मविदेशे नित्यं ह्युद्योदितः परस्वामी। असदक्षदारो रिपुनिर्जितश्च पूज्यः समूहानाम् ॥ कण्ठापीडाद्रज्वाकफोदयादस्थिभङ्गनाद्भेदात्। देहच्छेदादथवा जलोदरान्मृत्युमाप्नोति ॥ सिंहविलग्ने कठिनः प्रियामिषः पैत्तिको विततनासः। बह्वारम्भकुटुम्बः कृपणस्त्वथ संमतः ख्यातः ॥ सहजविषादी स्वजनस्य घातको विक्रमैः स्वकैर्युक्तः। अविचारी कर्मकरो विविधोपायैस्त्वधर्मिष्ठः ॥ भार्या बह्वीर्लभते विद्याद्विविधाः कुक्षेत्ताश्च। कथ्यां रुजश्च बहुशो जान्वोर्दशनेषु चाप्नोति ॥ मृत्युः शस्त्रैः पापैर्वि-

वैश्च काष्ठैरथामयैश्चापि । अम्बुचरैर्वा सत्त्वैर्बुभुक्षया ह्रासमुपयाति ॥ षष्ठविलग्ने प्रियवाक् तनुच्छविर्दीर्घकरचरणः । मिश्रप्रकृतिश्चार्याकृतिर्व्रणी चार्थवान् कृपणः ॥ स्वजनस्येष्टः कन्याबहुप्रजो भ्रातृभिर्विरुद्धश्च । धर्मप्रियोऽल्पलाभः कर्मणि निपुणः समाचरति ॥ विविधाच्चतुष्पदगणाच्छ्लात् पित्तोद्भवाद्रोगात् । शोकात् सम्पाताद्वा मृत्युं चाप्नोति पाशाद्वा ॥ सप्तमराशौ लग्ने विषमाङ्गः सूयते विषमशीलः । कफवातिकः सुचपलो ह्रस्वग्रीवः कृतज्ञश्च ॥ अर्थान् विपुलांल्लभते व्ययेन सम्पूज्यते यशः प्रायः । गुरुसेवायां निरतः वित्तार्जनतत्परः सहजपूज्यः ॥ अध्वरुचिर्धर्मिष्ठो विनाशमायाति पीडनैः स्वैः स्वैः । मृतभार्यः कलहरुचिर्बहुशः शोकादिभिः क्लिष्टः ॥ मृत्युः ख्यातात् पुरुषात् स्वजनात् सौम्याच्चतुष्पदाद्वापि । खेदाच्च विप्रयोगादुपवासान्मार्गयोगाद्वा अष्टमराशौ लग्ने विशालरुग्वाननोदरः क्रूरः ॥ पित्तप्रकृतिः पिङ्गेक्षणो मृदुद्रुतगतिः परस्वामी । स्फीतकुटुम्बस्वजनोऽन्तकश्च बहुव्ययो बहुप्रसवः ॥ सुखरहितो भ्रातृभ्यो वृषसेवी धर्महीनश्च । भार्यानिमित्तविसुखः शत्रोरर्थान्न ददाति बहुशश्च ॥ स्वकुलोद्भूतांश्छत्रूंल्लभते रोगांश्च नैकविधान् । गात्रच्छेदैः शत्रोर्वशङ्गतो बन्धनैः प्रहारैश्च ॥ रोगैर्वा पापकृतैर्ज्वलनाद्वा मृत्युमुपयाति । स्थूलोष्ठदशननासो नवमे लग्ने कफानिलप्रकृतिः ॥ मांसलगुल्फोरुभुजः कुनखी कर्मोद्यतः शूरः । क्षुद्राजीवान् भजते चौर्यादनलान्नृपाच्च नष्टधनः । विज्ञानानां प्रसवो बहुपूज्यो भ्रातृघातरुचिः॥ कर्मविदेशोद्विष्टः कुरुते वित्तानि चार्हनि नृपेभ्यः । धर्मे तु मध्यममनिदारैश्च विरोधमुपयाति॥रोगान् वदने लभते चतुष्पदाच्चात्मनः समाप्नोति । मृत्युं विलेशयाद्वा नृपाच्च बन्धाजनाद्वापि ॥ दशमविलग्ने तनुनासिकापुटो दीर्घवक्त्रकरचरणः । वाग्यात्मको मृगास्यो भीरुश्चपलोऽथ बन्धनभाक् ॥ क्षुद्रकुटुम्बोऽल्पधनः कृपणः कन्याप्रजो मृतस्वजनः । सहजसमृद्धः शौर्यान्नृपादरण्याच्च लब्धधनः ॥ उपवासव्रतशीलो नीचामिशामवाप्नुयान्द्वार्याम् । बहुविग्रहोऽल्पकेशो दुर्बलजानुश्च रोगार्तः ॥ बालादनिलाच्छूलान्नृपाद्विषात् प्रयतनाद्गजाद्वापि । पित्तोदयादजीर्णान्म्रियते वा मार्गविभ्रष्टः ॥ एकादशे विलग्ने स्तब्धः क्रूरः कुलाग्रजः पुरुषः । पित्तानिलभूयिष्ठस्तिलपुष्पसमाननासश्च ॥ प्राताबा-

शयतेऽर्थान् बहुभृत्यः साध्वी भार्याऽपि । क्षीणः स्वगोत्रगुरुजनकण्टकपुत्र-स्वजनमहाशत्रुः ॥ कर्मणि पापे सक्तस्तनुश्च कान्तानपत्यभार्याभावः । धर्मध्वज-प्रवृत्तौ दैवतपूजश्च कारयति भार्याम् ॥ विषमशीलां लभते विविधान् रोगान् कफोत्थपानुरसि । म्रियते च जठररोगाद्गमनात् स्त्रीणां प्रयोगाद्वा ॥ द्वादशभे भ्रष्टमे स्थूलोष्ठो मीनदृक् महानासः । कफवातिको महात्मा स्वच्छोषी नैकम-तिचेष्टः ॥ शिष्टायव्ययभृत्यैः स्वजनस्त्रीपूजितः सहजनाथः । कर्मणि धर्मे युक्तः पित्रोपचयः सुदारश्च ॥ नीचाचारां भार्यां लभते च रिपून् सुदारुणान् क्रूरान् । रोगात् सशोणितावाप्नुयान्द्भयं व्यालसिंहेभ्यः ॥ मृत्युं पुरुषैर्गणवृन्द-पूजितैर्गुह्यजैर्विकारैर्वा । विषौषधप्रयोगात्कुपवासान्मार्गदोषाद्वा ॥"

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके चन्द्रान्यराशिशीलाध्यायः ॥१८॥

—०※०—

अथ दृष्टिफलाध्यायः ॥१९॥

मेष, वृष, मिथुन और कर्क गत चन्द्र पर कुजादिग्रहों के दृष्टिफल—

चन्द्रे भूपबुधौ नृपोपमगुणी स्तेनोऽधनश्चाऽजगे
निस्वः स्तेननृमान्य भूधनिनः प्रेष्यः कुजाद्यैर्गवि ।
नृस्थेऽयोव्यवहारिपार्थिवबुधाभीरतन्तुवायोऽधनः
स्वर्क्षे योद्धृकविज्ञभूमिपतयोऽयोजीविदृग्रोगिणौ ॥१॥

सं०—चन्द्रेऽजगे मेषगते कुजाद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे जातः क्रमेण-भूप बुधौ, नृपोपम-गुणी स्तेनः, अधनश्च भवति । गवि वृषस्थे चन्द्रे कुजाद्यैर्दृष्टे जातः क्रमेण—निस्वः, स्तेन-नृमान्य-भूप-धनिनः, प्रेष्यश्च भवति । नृस्थे मिथुनस्थे चन्द्रे कुजाद्यैर्दृष्टे क्रमेण—अयोव्यवहारिपार्थिव-बुधाऽभीः, तन्तुवायः, अधनो भवति । स्वर्क्षे कर्के चन्द्रे कुजाद्यैर्दृष्टे क्रमेण योद्धृ-कवि-ज्ञ-भूमिपतयः, अयोजीवि-दृग्रोगिणौ च ज्ञेयौ ॥ १ ॥

भा०—मेष में चन्द्र हो और मङ्गल आदि ग्रहों से देखा जाता हो तो

जातक क्रम से राजा, पण्डित, राजा के तुल्य, गुणवान्, चोर और निर्धन होता है। अर्थात् मङ्गल की दृष्टि से राजा, बुध की दृष्टि से पण्डित, गुरु की दृष्टि से राजा के तुल्य (मन्त्री आदि), शुक्र की दृष्टि से गुणी, शनि की दृष्टि से चोर और रवि की दृष्टि से निर्धन, इसी प्रकार आगे राशि में भी ग्रह का क्रम समझना। तथा वृष में चन्द्र हो उस पर यदि मङ्गल आदि ग्रह की दृष्टि हो तो क्रम से निर्धन, चोर, लोक में मान्य, राजा, धनवान्, और भृत्य होता है। मिथुनस्थचन्द्रमा पर मङ्गल आदि की दृष्टि हो तो क्रम से—लोहार, राजा, पण्डित, निर्भय, कपड़ा बनाने वाला, और निर्धन होता है। कर्कस्थ चन्द्रमा पर मङ्गल आदि की दृष्टि हो तो जातक क्रम से योद्धा, कवि, पण्डित, राजा, लोहे का व्यापारी और नेत्र रोगी होता है ॥ १ ॥

वि०—मेष आदि लग्न में भी मङ्गल आदि की दृष्टि से ये ही फल समझना ॥

सिंह, कन्या, तुला वृश्चिकस्थ चन्द्र पर बुधादि ग्रह की दृष्टि फल—

ज्योतिर्ज्ञाढ्यनरेन्द्रनापितनृपक्ष्मेशा बुधाद्यैर्हरौ
तद्वद्भूपचमूपनैपुणयुताः षष्ठेऽशुभे स्त्र्याश्रयः।
जूके भूपसुवर्णकारवणिजः शेषेक्षिते नैकृतो
कीटे युग्मपिता नतश्च रजको व्यङ्गोऽधनो भूपतिः ॥ २ ॥

सं०—हरौ सिंहस्थे चन्द्रे बुधाद्यैः (बुध-गुरु-शुक्र-शनि-सूर्य-भौमैः) दृष्टे क्रमेण जाताः ज्योतिर्ज्ञाढ्यनरेन्द्रनापितनृपक्ष्मेशा भवन्ति। षष्ठे (कन्याराशौ) स्थिते चन्द्रे बुधाद्यैः (बुधगुरुशुक्रैरेभिस्त्रिभिः शुभैः) दृष्टे क्रमेण भूपचमूप-नैपुणयुता भवन्ति। अशुभैः (शनि-सूर्यमङ्गलैः) दृष्टे जातः स्त्र्याश्रयो भवति। जूके तुलागते चन्द्रे बुधादित्रयशुभदृष्टे क्रमेण भूपसुवर्णकारवणिजो भवन्ति, शेषेक्षिते (शेषैः शनिरविकुजैर्दृष्टे) जातो नैकृती प्राणिघातको भवति। कीटे वृश्चिकस्थे चन्द्रे बुधाद्यैर्दृष्टे क्रमेण युग्मपिता, नतः, रजकः, व्यङ्गः, अधनः, भूपतिश्च भवति ॥ २ ॥

भा०—सिंह में चन्द्रमा हो और उस पर बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि

मङ्गल की दृष्टि हो तो जातक क्रम से ज्योतिषी, धनवान्, राजा, नाई, राजा और भूपति होता है। कन्या में चन्द्रमा हो उस पर बुध, गुरु और शुक्र की दृष्टि से क्रम से राजा, मन्त्री और नैपुण (सब कार्य में सूक्ष्म बुद्धि) से युत होता है। शेष पापग्रह शनि, रवि और मङ्गल से दृष्ट हो तो स्त्री के आश्रित होकर जीनेवाला होता है। तुलस्थित चन्द्रमा पर शुभ-ग्रह बुध, गुरु और शुक्र की दृष्टि हो तो क्रम से राजा, सोनार और बनियाँ होता है। शेष पापग्रह की दृष्टि हो तो प्राणीघातक होता है। और वृश्चिकस्थ चन्द्र पर बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि, मङ्गल की दृष्टि हो तो दो सन्तान का पिता, नम्र, धोबी, अङ्गहीन, निर्धन और राजा होता है। ये फल प्रत्येक ग्रह के क्रम से समझना ॥२॥

धनु मकर, कुम्भ मीनस्थचन्द्र पर बुधादि ग्रहदृष्टिफल—

ज्ञात्युर्वीशजनाश्रयश्च तुरगे पापैः सदम्भः शठ-
श्चात्युर्वीशनरेन्द्रपण्डितधनो द्रव्योनभूपो मृगे।
भूपो भूपसमोऽन्यदारनिरतः शेषैश्च कुम्भस्थिते
हास्यज्ञो नृपतिर्बुधश्च झषगे पापाश्च पापेक्षिते ॥३॥

सं०—तुरगे धनुषि स्थिते चन्द्रे बुध-गुरु-शुक्रैर्दृष्टे जातः क्रमेण ज्ञात्युर्वीशजनाश्रयश्च (बुधदृष्टे ज्ञातीशः, गुरुदृष्टे उर्वीशः, शुक्रदृष्टे जनाश्रयो) भवतीति क्रमेण ज्ञेयम्। पापैः (शनिरविमङ्गलैर्दृष्टे) जातः सदम्भः शठश्च भवति। मृगे मकरस्थे चन्द्रे बुधाद्यैः षड्भिर्दृष्टे क्रमेण अत्युर्वीश-नरेन्द्र-पण्डित-धनी द्रव्योन-भूपो भवति। कुम्भस्थिते चन्द्रे बुधगुरुभ्यां दृष्टे क्रमेण भूपो भूपसमो भवति, शेषैः शुक्रशनिरविकुजैर्दृष्टेऽन्यदारनिरतश्च भवति। झषगे चन्द्रे बुधादिशुभत्रयदृष्टे क्रमेण हास्यज्ञो, नृपतिः, बुधः (पण्डितश्च) भवति, पापेक्षिते शनिरविमङ्गलदृष्टे जातकाः पापा भवन्ति ॥३॥

भा०—धनुराशिस्थ चन्द्र पर बुध गुरु और शुक्र की दृष्टि हो तो क्रम से स्वजनों का भरण पोषण करनेवाला, भूपति, और बहुत जनों का आश्रय

होता है। पापग्रहों (शनि-रवि-मङ्गल) की दृष्टि हो तो दम्भी (मिथ्या-धर्मध्वजी) तथा शठ होता है। मकर में चन्द्र पर बुध आदि ६ ग्रहों की दृष्टि से क्रम से राजाधिराज, राजा, पण्डित, धनवान्, निर्धन और राजा होता है। कुम्भस्थित चन्द्र पर बुध की दृष्टि से राजा, गुरु की दृष्टि से राजा के समान, शेष ग्रहों की दृष्टि से परस्त्रीगामी होता है। मीनस्थित चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि से हास्यप्रिय, गुरु की दृष्टि से राजा, शुक्र की दृष्टि से पण्डित और शेष पाप ग्रहों की दृष्टि से पापी होता है ॥३॥

अब होरा-द्रेष्काणाश्रित चन्द्र पर ग्रहदृष्टि फल कहते हैं—

होरेशर्क्षदलाश्रितैः शुभकरो दृष्टः शशी तद्गत-
स्त्र्यंशे तत्पतिभिः सुहृद्भवनगैर्वा वीक्षितः शस्यते ।
यत्प्रोक्तं प्रतिराशिवीक्षणफलं तद्द्वादशांशे स्मृतं
सूर्याद्यैरवलोकितेऽपि शशिनि ज्ञेयं नवांशेष्वतः ॥४॥

सं०—होरेशर्क्षदलाश्रितैः (राश्यर्धं होरा तदीशस्यर्क्षदलाश्रितैर्होरास्थितैर्ग्रहैः) तद्गतस्तद्धोरास्थितः शशी दृष्टश्चेत् तदा शुभकरः शुभफलदायको भवति। एतदुक्तं भवति चन्द्रो यदि सूर्यहोरायां स्थितस्तदा यत्र तत्र राशौ सूर्यहोरास्थितैरन्यग्रहैर्दृष्टः शुभकरो भवति, स्वहोरास्थश्चेत् तदा चन्द्रहोरास्थितैर्ग्रहैर्दृष्टः शुभकरो भवति । त्र्यंशे (.यस्मिन् द्रेष्काणे स्थितश्चन्द्रः) तत्पतिभिर्दृष्टः, अथवा सुहृद्भवनगैः स्वमित्रराशिगतैर्ग्रहैर्दृष्टश्चेत् तदा शस्यते (शुभप्रदो भवतीत्यर्थः) । अत्र "त्र्यंशे तत्पतिभि"रिति बहुवचननिर्देशात् नवांशद्वादशांशत्रिंशांशाधिपतयोऽपि गृह्यन्तेऽर्थाद्यत्र नवांशादौ स्थितस्तत्पतिभिर्दृष्टः शशी शस्यते । प्रतिराशि (राशौ राशौ) यद् वीक्षणफलं प्रोक्तं तत्फलं तद्द्वादशांशेऽपि स्मृतम् । अतोऽनन्तरं सूर्याद्यैरवलोकितेऽपि दृष्टेऽपि शशिनि चन्द्रे यत् फलं प्रोक्तं तन्नवांशेष्वपि ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

भा०—चन्द्रमा यदि सूर्य की होरा में हो तो सूर्य होरास्थित ग्रहों से दृष्ट होने से शुभदायक होता है। एवं चन्द्र अपनी होरा में हो तो चन्द्रहोरा-

स्थित ग्रहों से दृष्ट होने पर शुभ होता है। अन्यथा अशुभ होता है यह अर्थात् सिद्ध होता है। एवं जिस द्रेष्काण आदि में चन्द्रमा हो उनके स्वामी से दृष्ट हो अथवा स्वमित्रराशिस्थ ग्रहों से दृष्ट हो तो शुभदायक होता है। प्रति राशि में जो दृष्टि फल कहे गये हैं वे फल उस उस राशि के द्वादशांश में भी होते हैं। और चन्द्रमा के सूर्यादि ग्रहों से दृष्ट होने में जो जो फल कहे गये हैं वे नवांश में भी समझना चाहिये ॥ ४ ॥

वि०—यद्यपि होरादि स्वामियों से दृष्ट होरादिस्थित चन्द्र का शुभ फल कहा गया है, तथापि शुभस्वामी से पूर्ण शुभ और पाप या शत्रु होरादि स्वामी हो तो न्यून फल समझना चाहिये। यदि होरादि स्वामी पापग्रह और शत्रु भी हो तो शुभ फल नहीं हो सकता है, इत्यादि यहाँ अनुक्त भी समझना चाहिये। क्योंकि स्वयं आचार्य ने लघुजातक में कहा है। यथा—

"क्षेत्राधिपसंदृष्टे शशिनि नृपस्तत्सुहृद्भिरपि धनवान्।
द्रेष्काणांशकपैर्वा प्रायः सौम्यैः शुभं नान्यैः ॥" स्पष्टार्थ ॥४॥

मेषादि नवांशस्थित चन्द्र पर सूर्यादि ग्रह की दृष्टि के फल—

आरक्षिको वधरुचिः कुशलो नियुद्धे
भूपोऽर्थवान् कलहकृत् क्षितिजांशसंस्थे।
मूर्खोऽन्यदारनिरतः सुकविः सितांशे
सत्काव्यकृत्सुखपरोऽन्यकलत्रगश्च ॥ ५ ॥

सं०—क्षितिजांशसंस्थे (मेषनवांशस्थे वृश्चिकांशस्थे वा) शशिनि रवि-कुज-बुध-गुरु-शुक्र-शनिभिर्दृष्टे जातकः क्रमेण आरक्षिको, वधरुचिः नियुद्धे कुशलः, भूपः, अर्थवान्, कलहकृद् भवति। सितांशे (वृषतुलनवांशगे चन्द्रे) रव्यादिग्रहदृष्टे क्रमेण मूर्खः, अन्यदारनिरतः, सुकविः, सत्काव्यकृत्, सुखपरः अन्यकलत्रगश्च भवति ॥ ५ ॥

भा०—मेष या वृश्चिक के नवांशस्थचन्द्र पर रवि की दृष्टि से जातक नगरादिका रक्षक, मङ्गल की दृष्टि से वधिक (प्राणिघाती), बुध की दृष्टि

से युद्ध में कुशल, गुरु की दृष्टि से राजा, शुक्र की दृष्टि से धनवान् और शनि की दृष्टि से कलहकारक होता है। तथा वृष या तुला के नवांशगत चन्द्रमापर रवि की दृष्टि हो तो मूर्ख, मङ्गल की दृष्टि हो तो परस्त्रीगामी, बुध की दृष्टि हो तो कवि, गुरु की दृष्टि हो तो अच्छे काव्य बनानेवाला, शुक्र की दृष्टि हो तो सुखी और शनि की दृष्टि हो तो परस्त्रीगामी होता है ॥ ५ ॥

बौधे हि रङ्गचरचौरकवीन्द्रमन्त्री
गेयज्ञशिल्पनिपुणः शशिनि स्थितेंऽशे ।
स्वांशेऽल्पगात्रधनलुब्धतपस्विमुख्यः
स्त्रीपोष्यकृत्यनिरतश्च निरीक्ष्यमाणे ॥ ६ ॥

सं०—बौधे (बुधसम्बन्धिनवांशे मिथुनांशे, कन्यांशे वा स्थिते चन्द्रे) रव्यादिदृष्टे जातः—क्रमेण—रङ्गचर—चौर—कवीन्द्र—मन्त्री, गेयज्ञ—शिल्पनिपुणो भवति । स्वांशे (कर्कनवांशे) स्थिते शशिनि रव्यादिभिर्निरीक्ष्यमाणे जातकः क्रमेण—अल्पमात्र—धनलुब्ध—तपस्विमुख्यः, स्त्रीपोष्य—कृत्यनिरतश्च भवति ॥६॥

भा०—मिथुन या कन्या के नवांश में स्थित चन्द्रपर रवि की दृष्टि से नृत्य या मल्लयुद्ध करनेवाला, मङ्गल की दृष्टि से चोर, बुध की दृष्टि से कवि, गुरु की दृष्टि से राजमन्त्री, शुक्र की दृष्टि से सङ्गीतज्ञ और शनि की दृष्टि से शिल्प (चित्रादि) में निपुण होता है। कर्कनवांशस्थ चन्द्र पर रवि की दृष्टिसे जातक छोटे शरीरवाला, मङ्गल की दृष्टि से धन का लोभी, बुध की दृष्टि से तपस्वी, गुरु की दृष्टि से मुखिया (प्रधान), शुक्र की दृष्टि से स्त्रियों द्वारा जीनेवाला, और शनि की दृष्टि से सर्वदा कार्य करने में तत्पर रहता है ॥

सक्रोधो नरपतिसम्मतो निधीशः
सिंहांशे प्रभुरसुतोऽतिहिंस्रकर्म्मा ।
जीवांशे प्रथितबलो रणोपदेष्टा
हास्यज्ञः सचिव-विकामवृद्धशीलः ॥७॥

सं०—सिंहांशे स्थिते चन्द्रे रव्यादिग्रहदृष्टे जातः—क्रमेण सक्रोधः, नरपतिसम्मतः, निधीशः, प्रभुः, असुतः, अतिहिंस्रकर्मा भवति । जीवांशे (धनुर्मीनांशे स्थिते चन्द्रे) रव्यादिदृष्टे जातः—क्रमेण—प्रथितबलः, रणोपदेष्टा, हास्यशः, सचिव–विकाम–वृद्धशीलो भवति ॥ ७ ॥

भा०—सिंह नवांशगत चन्द्रपर रवि की दृष्टि से जातक क्रोधी, मङ्गल की दृष्टि से राजमान्य, बुध की दृष्टि से निधि (खान से उत्पन्न द्रव्य) का स्वामी, गुरु की दृष्टि से प्रभु (अप्रतिहताज्ञ), शुक्र की दृष्टि से पुत्रहीन और शनि की दृष्टि से अतिक्रूर (हिंसा) कर्म करनेवाला होता है । धनु या मीन नवांशगत चन्द्रपर रवि की दृष्टि हो तो विख्यात बलवान्, मङ्गल की दृष्टि से युद्ध विद्या सिखानेवाला, बुध की दृष्टि से हास्यप्रिय, गुरु की दृष्टि से राजमन्त्री, शुक्र की दृष्टि से कामरहित (नपुंसक) और शनि की दृष्टि से वृद्धस्वभाववाला होता है ॥ ७ ॥

अल्पापत्यो दुःखितः सत्यपि स्वे मानासक्तः कर्मणि स्वेऽनुरक्तः।
दुष्टस्त्रीष्टः कृपणश्चार्किभागे चन्द्रे भानौ तद्वदिन्द्वादिदृष्टे ॥८॥

सं०—आर्किभागे (शनिनवमांशे मकरांशे कुम्भांशे वा स्थिते) चन्द्रे रव्यादिग्रहदृष्टे जातकः क्रमेण–अल्पापत्यः, सत्यपि स्वे (धने) दुःखितः, मानासक्तः, स्वे कर्मणि अनुरक्तः, दुष्टस्त्रीष्टः, कृपणश्च भवति । एवं भानौ सूर्ये मेषादिनवांशगते इन्द्वादिग्रहदृष्टे सति तद्वत् (चन्द्रफलवत्) फलं वाच्यम् । एतदुक्तं भवति कुजादिदृष्टिफलं रवावपि चन्द्रतुल्यमेव, किन्तु चन्द्रोपरि सूर्यदृष्टिफलं यत् तदेव सूर्योपरि चन्द्रदृष्टिफलं ज्ञेयमिति ॥ ८ ॥

भा०—मकर या कुम्भ नवांशस्थ चन्द्रपर रवि की दृष्टि से जातक थोड़ी सन्तानवाला, मङ्गल की दृष्टि से धन रहते हुए भी दुःखी, बुध की दृष्टि से अहङ्कारी, गुरु की दृष्टि से अपने कार्य में आसक्त, शुक्र की दृष्टि से दुष्टास्त्री का पति और शनि की दृष्टि से कदर्य होता है । जिस प्रकार मेषादि नवांशगत चन्द्रपर रव्यादि ग्रह के दृष्टि फल कहे गये हैं, उसी प्रकार मेषादि नवांशगत सूर्य पर भी चन्द्रादि ग्रहों के दृष्टि फल होते हैं ॥ ८ ॥

वि०—विशेषता इतनी है कि मङ्गलादि ग्रहोंकी दृष्टि से चन्द्रमा और रवि दोनों के फल तुल्य ही होते हैं। परञ्च चन्द्र पर जो फल रवि की दृष्टि से कहे गये हैं वे ही फल रवि पर चन्द्रमा की दृष्टि से होते हैं ॥८॥

इस नवांशोक्त शुभ अशुभ फल में विशेषता कहते हैं—

वर्गोत्तमस्वपरगे ऽ तु शुभं यदुक्तं
तत्पुष्टमध्यलघुताऽशुभमुत्क्रमेण ।
वीर्यान्वितोंऽशकपतिर्निरुणद्धि पूर्वं
राशीक्षणस्य फलमंशफलं ददाति ॥९॥

सं० वर्गोत्तम-स्वपरगे (वर्गोत्तमांश-स्वनवांशान्यनवांशगते चन्द्रे सति) शुभं फलं यदुक्तं कथितं क्रमेण तत्पुष्टमध्यलघुता (तस्य फलस्य क्रमेण पुष्टता, मध्यता, लघुता च) ज्ञेया । तथाऽशुभं फलं यदुक्तं तदुत्क्रमेण वैपरीत्येन ज्ञेयम् (अर्थात् तस्याऽशुभफलस्य वर्गोत्तमस्वपरभागगे चन्द्रे क्रमेण लघुता, मध्यता, पुष्टता च ज्ञेया) । अंशकपतिः (नवांशस्वामी) यदि वीर्यान्वितः तदा राशीक्षणस्य फलं निरुणद्धि निवारयति, पूर्वमंशफलमेव ददाति । अर्थाद्यदि नवांशपतिर्बलवान् न भवति तदा राशीक्षणफलमपि ददाति ॥ ९ ॥

वि०—एवं चन्द्रेक्षणफलं यदुक्तं तत् सर्वं लग्नस्यापि चन्द्रवदेव ज्ञेयम् । सूर्यस्य तु केवलं नवांशकेक्षणफलमेव वक्तव्यम् , तस्य राशीक्षणफलकथनाभावात् ॥ ९ ॥

भा०—चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवांश में हो तो जितने शुभ फल कहे गये हैं वे पूर्णरूप से, और अपने नवांश में हो तो सब शुभफल मध्यममान से और अन्य नवांश में हो तो सब शुभफल अल्प परिमाण में होते हैं। और अशुभ फल इससे विपरीत—अर्थात् वर्गोत्तम नवांश में चन्द्रमा हो तो अशुभफल जो कहे गये हैं वे अल्प परिमाण में, अपने नवांश में हो तो अशुभफल मध्यममान से और अन्य नवांश में हो तो अशुभफल पूर्णरूप से

होते हैं। यदि नवांशपति बलयुक्त हो तो राशीक्षण फल को निवारण करके पहिले नवांश दृष्टि फल को ही देता है ॥ ६ ॥

वि०—तात्पर्य यह है कि—राशि की अपेक्षा नवांश सूक्ष्म है अतः नवांशपति के प्रबल होने से प्रथम नवांशफल ही होता है। इस प्रकार चन्द्रमा के जितने फल कहे गये हैं, वे लग्न के भी उसी प्रकार समझना चाहिये। और सूर्य के केवल नवांश फल ही चन्द्रवत् समझना। क्योंकि सूर्य के लिये राशि दृष्टिफल नहीं कहे गये हैं ॥ ६ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके दृष्टिफलाऽध्यायः ॥१६॥

अथ भावफलाऽध्यायः ॥ २० ॥

प्रथम और द्वितीय भावगत रविफल—

शूरः स्तब्धो विकलनयनो निर्घृणोऽर्के तनुस्थे
मेषे सस्वस्तिमिरनयनः सिंहसंस्थे निशान्धः।
जूकेऽन्धोऽस्वः शशिगृहगते बुद्बुदाक्षः पतङ्गे
भूरिद्रव्यो नृपहृतधनो वक्त्ररोगी द्वितीये ॥ १ ॥

सं०—अर्के सूर्ये तनुस्थे सति जातः शूरः स्तब्धः (चिरकार्यकृत्) विकलनयनः, निर्घृणश्च भवति। तत्र मेषे स्थिते सस्वः (स-धनः) किन्तु तिमिरनयनः (नेत्ररोगी) भवति। सिंहस्थेऽपि लग्नगतेऽर्के सस्वः किन्तु निशान्धो भवति। नीचे तुलास्थितेऽर्के तनुगते अन्धः, अस्वः (निर्धनश्च) भवति। शशिगृहगते कर्कटगे तनुस्थेऽर्के बुद्बुदाक्षो भवति। अथ पतङ्गे सूर्ये द्वितीये (द्वितीयभावगे) जातः—भूरिद्रव्योऽपि नृपहृतधनो, वक्त्ररोगी च भवति ॥ १ ॥

भा०—सूर्य लग्न में हो तो जातक संग्रामप्रिय, देर से काम करनेवाला (दीर्घसूत्री) निर्दय नेत्रबाधक और निर्दय होता है। यदि सूर्य मेषस्थ हो

कर लग्न में हो तो धनवान् होता है परन्तु नेत्ररोगी होता है। सिंह लग्न में हो तो धनवान् होता है परन्तु रात्रि में अन्धा होता है। तुला में हो तो अन्धा और निर्धन होता है। कर्क में हो तो आँख में फूलीवाला होता है। द्वितीयभाव में सूर्य हो तो अधिक धनवान् होता है परन्तु उसका धन समय-समय पर राजा ले लिया करता है और मुखरोग से युक्त होता है ॥ १ ॥

३, ४, ५, और ६ भाव गत सूर्य के फल—

मतिविक्रमवांस्तृतीयगेऽर्के विसुखः पीडितमानसश्चतुर्थे ।
असुतो धनवर्जितस्त्रिकोणे बलवाञ्छत्रुजितश्च शत्रुयाते ॥ २ ॥

सं०—अर्के तृतीयगे जातो मतिविक्रमवान् भवति । चतुर्थेऽर्के विसुखः, पीडितमानश्च भवति । त्रिकोणे (पञ्चमगे) असुतो धनवर्जितश्च भवति । शत्रुयाते षष्ठभावगते बलवान्, शत्रुजितश्च भवति ॥ २ ॥

भा०—तृतीय भाव में सूर्य हो तो बुद्धिमान् और पराक्रमी होता है। चतुर्थ भाव में हो तो सुखहीन और उद्विग्न हृदय होता है। पञ्चम भाव में हो तो पुत्रहीन और धनहीन होता है। षष्ठभाव में रवि हो तो बली और शत्रु को जीतनेवाला होता है ॥ २ ॥

७,८,९,१०,११ और १२ भावगत सूर्यफल—

स्त्रीभिर्गतः परिभवं मदगे पतङ्गे
स्वल्पात्मजो निधनगे विकलेक्षणश्च ।
धर्मे सुतार्थसुखभाक् सुखशौर्यभाक्खे
लाभे प्रभूतधनवान् पतितस्तु रिष्फे ॥ ३ ॥

सं०—पतङ्गे सूर्ये मदगे सप्तमभावगते जातः—स्त्रीभिः परिभवं गतो (अवमानितो) भवति । निधनगेऽष्टमभावगते स्वल्पात्मजो विकलेक्षणश्च भवति । नवमभावगते सुतार्थसुखभाक् भवति । खे दशमभावे सुखशौर्य-भाग् भवति । लाभे प्रभूतधनवान् भवति । रिष्फे द्वादशेऽर्के पतितः स्वकर्म-परिभ्रष्टो भवति ॥ ३ ॥

भा०—जन्म समय सप्तमभाव में सूर्य हो तो जातक स्त्री के द्वारा अपमानित होता है। अष्टम भाव में सूर्य हो तो अल्प पुत्रवान् और हीन-दृष्टि होता है। नवमभाव में हो तो पुत्र, धन और सुख का भागी होता है। दशम भाव में हो तो सुखी और पराक्रमी होता है। एकादश भाव में हो तो बहुत धनवान् होता है। और द्वादशभाव में हो तो अपने कर्म से च्युत होता है ॥ ३ ॥

लग्न, २,३,४,५ और ६ भावगत चन्द्रफल—

मूकोन्मत्तजडान्धहीनबधिरप्रेष्याः शशाङ्कोदये
स्वर्क्षाऽजोक्षगते धनी बहुसुतः सस्वः, कुटुम्बी धने।
हिंस्रो भ्रातृगते सुखे स-तनये तत्प्रोक्तभावान्वितो
नैकारिर्मृदुकायवह्निमदनस्तीक्ष्णोऽलसश्चारिगे ॥४॥

सं०—शशाङ्कोदये (लग्नगे चन्द्रे) जाताः—मूकोन्मत्तजडान्ध-हीन-बधिरप्रेष्या भवन्ति। किन्तु स्वर्क्षाऽजोक्षगते (कर्क-मेष-वृषगते) लग्नगे सति जातो धनी, बहुसुतः, सस्वश्च भवति। धने द्वितीयभावे चन्द्रे कुटुम्बी (पुत्रपौत्रादियुतो) भवति। भ्रातृगते तृतीयभावगे हिंस्रः। (क्रूरो) भवति। सतनये सपञ्चमे सुखे चतुर्थे भावे तत्प्रोक्तभावान्वितः, (सुखे सुखान्वितः, तनये तनयान्वितो) भवति। अरिगे षष्ठभावगते नैकारिः, मृदुकायवह्निमदनः, तीक्ष्णः अलसश्च भवति ॥ ४ ॥

भा०—चन्द्रमा यदि लग्न में हो तो जातक गूँगा, उन्मत्त (पागल), मूर्ख, अन्धा, नीचकर्मकर्ता, बधिर और भृत्य (सेवक) होता है। यदि कर्क में होकर लग्न में हो तो धनी, मेष लग्न में हो तो बहुत सन्तानवाला, और वृषलग्न में चन्द्रमा हो तो धनवान् होता है। द्वितीयभाव में चन्द्रमा हो तो अधिक परिवार वाला होता है। तृतीय भाव में हो तो क्रूर, चतुर्थ भाव में हो तो भाव फल (गृहसुख, मातृसुख आदि) से युक्त, पञ्चम भाव में हो तो भाव (बुद्धि, विद्या, पुत्रसुख आदि) से युक्त, यदि षष्ठ भाव में

चन्द्रमा हो तो बहुत शत्रुवाला, सुकुमारशरीर, मन्दाग्नि, अल्पवीर्य, उग्र-स्वभाव और आलसी होता है ॥ ४ ॥

७,८,९,१०,११ और १२ भावगत चन्द्रफल—

ईर्ष्युस्तीव्रमदो मदे बहुमतिर्व्याध्यर्दितश्चाऽष्टमे
सौभाग्यात्मजमित्रबन्धुधनभाग् धर्मे स्थिते शीतगौ ।
निष्पत्तिं समुपैति धर्म्मधनधीशौर्यैर्युतः कर्मगे
ख्यातो भावगुणान्वितो भवगते क्षुद्रोऽङ्गहीनो व्यये ॥५॥

सं०--शीतगौ चन्द्रे-मदगे जातः-ईर्ष्युः, तीव्रमदो भवति । अष्टमे चन्द्रे बहुमतिः, व्याध्यर्दितो भवति । धर्मस्थिते नवमभावगते चन्द्रे सौभाग्यात्मजमित्रबन्धुधनभाग् भवति । कर्मगे चन्द्रे निष्पत्तिं (सर्वकार्यसिद्धिं) समुपैति, धर्मधनधीशौर्यैर्युतो भवति । भवगते चन्द्रे ख्यातो भावगुणान्वितः (सदा लाभयुक्तः) भवति । व्यये स्थिते चन्द्रे क्षुद्रः, अङ्गहीनश्च जायते ॥

भा०—सप्तमभाव में चन्द्रमा हो तो जातक—ईर्ष्या (डाह) वाला, अतिकामी होता है । अष्टम भाव में हो तो अधिक बुद्धिमान् किन्तु रोग से पीड़ित होता है । नवमभाव में चन्द्रमा हो तो सौभाग्य, पुत्र, मित्र, बन्धु, धन और भाग्य से युक्त होता है । दशमभाव में चन्द्रमा हो तो सर्व कार्य में सिद्धि पाने वाला, धर्म, धन, बुद्धि और पराक्रम से युक्त होता है । एकादश भाव में हो तो विख्यात और लाभ से युक्त होता है । व्यय भाव में चन्द्रमा हो तो जातक क्षुद्र और अङ्गहीन होता है ॥ ५ ॥

लग्नादि द्वादशभावगत मङ्गल और बुध के फल—

लग्ने कुजे क्षततनुर्धनगे कदन्नो
धर्मेऽघवान् दिनकरप्रतिमोऽन्यसंस्थे ।
विद्वान् धनी प्रखलपण्डितमन्त्रिशत्रु-
र्धर्मज्ञविश्रुतगुणः परतोऽर्कवज्ज्ञे ॥६॥

सं०—कुजे लग्ने जातः- क्षततनुर्भवति, धनगे कदन्नः कुत्सितान्नभक्षकः, धर्मे कुजे अघवान् (पापी) भवति । अन्यसंस्थे (अन्यभावेषु स्थिते कुजे) दिनकरप्रतिमो (रवितुल्यफलप्रदो) ज्ञेयः । ज्ञे बुधे लग्नाद्यष्टमभावावधिस्थिते क्रमेण विद्वान्, धनी, प्रखल-पण्डित-मन्त्र्यशत्रुः, धर्मज्ञविश्रुतगुणो जातको भवति, परतो नवमभावादिषु स्थितो बुधोऽर्कवद् रवितुल्यफलप्रदो भवति॥६॥

भा०—मङ्गल लग्न में हो तो जातक–क्षत शरीर, (किसी अङ्ग में आघात वाला), धन भाव में हो तो कदन्नभोगी, नवमभाव में हो तो पापी होता है। शेष भावों में जैसे सूर्य के फल हैं वैसे ही मङ्गल के भी होते हैं। बुध यदि लग्न में हो तो जातक विद्वान्, द्वितीयभाव में हो तो धनवान्, तृतीय भाव में हो तो खल, चतुर्थभाव मे हो तो पण्डित, पञ्चम भाव में हो तो राजमन्त्री, षष्ठभाव में हो तो शत्रुरहित, सप्तम भाव में हो तो धर्मज्ञ, अष्टमभाव में हो तो विख्यात गुण वाला होता है। शेष ९, १०, ११, १२ भाव में बुध के फल सूर्य के फल सदृश होते है ॥६॥

लग्नादिद्वादश भावगत गुरुफल—

विद्वान् सुवाक्यः कृपणः सुखी च धीमानशत्रुःपितृतोऽधिकश्च।
नीचस्तपस्वी स-धनः स-लाभः खलश्च जीवे क्रमशो विलग्नात्॥

सं० –जीवे गुरौ विलग्नात् (लग्नमारभ्य द्वादशभावेषु स्थिते) जातकः क्रमशः विद्वान्, सुवाक्यः, कृपणः, सुखी, श्रीमान्, अशत्रुः, पितृतोऽधिकः, नीचः, तपस्वी, सधनः, सलाभः, खलश्च भवति ॥७॥

भा०—गुरु लग्न में हो तो विद्वान्, द्वितीय भाव में हो तो प्रियवक्ता, तृतीयभाव में हो तो कृपण, चतुर्थ में हो तो सुखी, पञ्चम में हो तो विद्वान्, षष्ठ में हो तो शत्रु रहित, सप्तम में हो तो अपने पिता से अधिक गुण युक्त, अष्टम में हो तो अनुचित कर्म करनेवाला, नवम में हो तो तपस्वी, दशम में हो तो धनी, एकादश में हो तो लाभ करनेवाला, द्वादश भाव में गुरु हो तो जातक खल होता है ॥७॥

लग्नादि द्वादश भावगत शुक्रफल--

स्मरनिपुणः सुखितश्च विलग्ने प्रियकलहोऽस्तगते सुरतेप्सुः।
तनयगते सुखितो भृगुपुत्रे गुरुवदतोऽन्यगृहे सधनोऽन्त्ये ॥

सं०---भृगुपुत्रे-शुक्रे विलग्ने स्थिते जातः स्मरनिपुणः (कामकुशलः) सुखितश्च भवति। अस्तगते सप्तमभावस्थे प्रियकलहः, सुरतेप्सुः (मैथुनाभिलाषी) भवति। तनयगते पञ्चमभावस्थे सुखितो भवति। अतोऽन्यगृहेऽन्यभावे (२,३,४,६,८,९,१०,११ एषु स्थिते) गुरुवत् गुरुफलसदृशं फलं ज्ञेयम्। अन्त्ये द्वादशे स्थिते शुक्रे सधनो भवति ॥८॥

भा०---शुक्र लग्न में हो तो जातक कामकला (सुरतक्रिया) में कुशल, और सुखी होता है। सप्तमभाव में हो तो कलह प्रिय और मैथुनाभिलाषी होता है। पञ्चमभाव में शुक्र हो तो सुखी होता है। और अन्यभाव (२,३,४,६,८,९,१०,११ इन) में गुरु के समान फल समझना। किन्तु द्वादश में शुक्र हो तो जातक धनवान् होता है ॥८॥

लग्नादि द्वादशभावगत शनिफल--

अदृष्टार्थो रोगी मदनवशगोऽत्यन्तमलिनः
शिशुत्वे पीडार्त्तः सवितृसुतलग्नेत्यलसवाक्।
गुरुस्वर्क्षोच्चस्थे नृपतिसदृशो ग्रामपुरपः
सुविद्वांश्चार्वङ्गो दिनकरसमोऽन्यत्र कथितः ॥ ९ ॥

सं० – सवितृसुतलग्ने (शनौ लग्नगते) जातकः अदृष्टार्थः (न दृष्टोऽर्थो येन सोऽधन इत्यर्थः) रोगी, मदनवशगः, अत्यन्तमलिनः, शिशुत्वे (बाल्ये) पीडार्त्तः, अलसवाक् (अस्फुटभाषी) भवति। किन्तु लग्नेऽपि गुरुस्वर्क्षोच्चस्थे (धन्व-मीन-मकर-कुम्भ-तुलगते शनौ सति) नृपतिसदृशः, ग्रामपुरपः, सुविद्वान्, चार्वङ्गो भवति। अन्यत्र द्वितीयादिभावेषु दिनकरसमः (सूर्यतुल्यफलः) कथितः ॥ ९ ॥

भा०—शनि यदि "धनु, मकर, कुम्भ, मीन और तुला से भिन्न राशि में" लग्नगत हो तो जातक निर्धन, रोगी, कामातुर, अतिमलिन, बाल्यावस्था में दुःखी और साफ न बोलनेवाला होता है। यदि लग्न में भी धनु, मीन, मकर, कुम्भ या तुला में हो तो जातक राजा के तुल्य, ग्राम या नगर का स्वामी, विद्वान् और सुन्दर शरीरवाला होता है। द्वितीय आदि भाव में जैसे सूर्य के फल कहे गये उन्हीं के समान शनि के भी फल समझना॥ ९ ॥

उक्त भावफलों में विशेषता—

सुहृदरिपरकीयस्वर्क्षतुङ्गस्थितानां
फलमनुपरिचिन्त्यं लग्नदेहादिभावैः ।
समुपचयविपत्ती सौम्यपापेषु सत्यः
कथयति विपरीतं रिष्फषष्ठाष्टमेषु ॥१०॥

सं०—लग्नदेहादिभावैः (लग्नं देहं, द्वितीयं धनमित्याद्यभिधानैर्द्वादश-भावैः) सुहृदरिपरकीयस्वर्क्षतुङ्गस्थितानां रव्यादिग्रहाणां फलं चानुपरिचिन्त्यं स्वबुद्ध्या विचार्यम्। अर्थाल्लग्नगतस्य यत् फलमुक्तं देहसुखदुःखादिकं तत् मित्रक्षेत्रस्थस्य पुष्टं, शत्रुक्षेत्रगतस्याल्पं, परस्योदासीनगृहगतस्य मध्यम्, स्वराशिगतस्याधिकं, स्वतुङ्गस्थस्य त्वत्यधिकमित्यनुक्तमपि ज्ञेयम्। तथा भावेषु सौम्यपापेषु स्थितेषु क्रमेण तत्तद्भावानां समुपचयविपत्ती उपचयाऽपचयौ, परञ्च रिष्फषष्ठाष्टमेषु भावेषु विपरीतमिति सत्यः (सत्याचार्यः) कथयति ॥१०॥

भा०—लग्न से आरम्भ कर तनु, धन आदि संज्ञा से जो द्वादशभाव हैं उन भावों में जो ग्रह मित्रराशि, शत्रुराशि, उदासीन राशि, अपनी राशि, अपने उच्च में स्थित हो तदनुसार भी उनके फल विचार करना चाहिये। जैसे जो ग्रह लग्न में देह सुखकारक कहा गया वह ग्रह यदि मित्र-राशि में हो तो देह सुख की पुष्टि, यदि शत्रुगृह में हो तो देह सुख की अल्पता, उदासीन राशि में हो तो देह सुख मध्यम, अपनी राशि में हो तो भी देह सुख पूर्ण, यदि उच्च में हो तो देह सुख अत्युत्तम कहना चाहिये।

और जिस भाव में शुभग्रह का योग हो उस भाव की पुष्टि, तथा जिसमें पापग्रह हो उस भाव की हानि होती है। परञ्च ६, ८, १२ भाव में विपरीत याने इन तीनों भाव में शुभग्रह हों तो भाव (शत्रु आदि) की हानि, पापग्रह हो तो भाव की वृद्धि होती है ॥१०॥

इसी विषय को उदाहरण रूप से कहते हैं--

उच्चत्रिकोणस्वसुहृच्छत्रुनीचगृहार्कगैः ।
शुभं सम्पूर्णपादोनदलपादाल्पनिष्फलम् ॥११॥

इति श्रीवराहमिहिरविरचिते बृहज्जातके भावाऽध्यायः ॥२०॥

सं०--उच्चत्रिकोणस्व-सुहृच्छत्रुनीचगृहार्कगैर्ग्रहैः शुभं भावफलं क्रमेण सम्पूर्ण-पादोन-दल-पादाऽल्पनिष्फलं ज्ञेयम्। अर्थादेवाऽशुभं फलं वैपरीत्येन ज्ञेयम् ॥ ११ ॥

भा०--पूर्व जो शुभ भावफल कहे गये हैं वे स्वोच्च में ग्रह हो तो सम्पूर्ण, मूलत्रिकोण में ३ चरण, अपने गृह में २ चरण, मित्रगृह में १ चरण, शत्रुगृह में अल्प और नीच वा अस्त हो तो फल का अभाव समझना चाहिये। इसी से सिद्ध होता है कि अशुभफल इससे विपरीत अर्थात् अस्त और नीच में ग्रह हो तो सम्पूर्ण, शत्रुगृह में ३ चरण, मित्रगृह में हो तो २ चरण, अपने घर में हो तो १ चरण, मूल त्रिकोण में हो तो अल्प, और उच्च में ग्रह हो तो अशुभ भावफल का अभाव होता है ॥११॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके भावफलाध्यायः ॥२०॥

अथ आश्रययोगाध्यायः ॥२१॥

एकादि स्वगृह, स्वमित्रगृहगत ग्रहों के फल—

कुलसमकुलमुख्यबन्धुपूज्या धनिसुखिभोगिनृपाः स्वभैकवृद्धया।
परविभवसुहृत्स्वबन्धुपोष्या गणपबलेशनृपाश्च मित्रभेषु ॥१॥

सं०—स्वभैकवृद्धया (स्वभेषु एकवृद्धया स्थितैर्ग्रहैः) क्रमेण जातकाः कुलसम-कुलमुख्य-बन्धुपूज्याः धनिसुखिभोगिनृपाश्च भवन्ति । तथा च मित्र-भेषु-एकवृद्धया स्थितैर्ग्रहैः जाताः क्रमेण परविभवसुहृत् स्वबन्धुपोष्या गणप-बलेशनृपाश्च भवन्ति ॥ १ ॥

भा०—जन्म समय में अपने गृह में एक ग्रह हो तो जातक अपने पिता के समान, २ ग्रह स्वगृह में हो तो कुल में मुख्य, ३ ग्रह स्वगृह के हों तो बन्धुओं में पूज्य, ४ ग्रह स्वगृह के हों तो धनी, ५ ग्रह हों तो सुखी, ६ ग्रह हों तो भोगी, सातों ग्रह स्वगृह के हों तो राजा होता है। एवं एक ग्रह मित्र राशि में हों तो दूसरे के धन से पोषित होता है। २ ग्रह मित्र गृह में हों तो मित्र द्वारा, ३ ग्रह हों तो स्वजाति द्वारा, ४ ग्रह मित्रराशि में हों तो बन्धु के द्वारा पालित होता है। ५ ग्रह मित्र राशि में हो तो बहुतों का नायक, ६ ग्रह हों तो सेनापति, सातों ग्रह मित्र राशि में हो तो राजा होता है ॥ १ ॥

उच्च-नीचगत ग्रह का फल—

जनयति नृपमेकोऽप्युच्चगो मित्रदृष्टः
प्रचुरधनसमेतं मित्रयोगाच्च सिद्धम् ।
विधनविसुखमूढव्याधितो बन्धतप्तो
वधदुरितसमेतः शत्रुनीचर्क्षगेषु ॥ २ ॥

सं०—एकोऽपि ग्रहः उच्चगतो मित्रदृष्टश्च प्रचुरधनसमेतं नृपं जनयति। मित्रयोगाच्च सिद्धं (सर्वत्र लब्धसम्मानं) जनं जनयति । तथा चैकवृद्धया

शत्रुनीचर्क्षगेषु ग्रहेषु क्रमेण विधन-विसुख-मूढ-व्याधितो बन्धतसो वधदुरित-समेतो जातको भवति ॥ २ ॥

भा०—अपने उच्च में एक भी ग्रह हो और अपने मित्र से दृष्ट हो तो जातक अत्यन्त धनसंयुक्त राजा होता है । यदि मित्र से युक्त हो तो धनवान् राजा होकर सर्वत्र सम्मान पानेवाला होता है । यदि २ या अधिक ग्रह उच्च में हो तो फिर कहना ही क्या है ? एवं एक ग्रह शत्रु या नीच राशि में हो तो धनहीन, २ ग्रह हों तो सुखहीन, ३ ग्रह हों तो मूढ, चार ग्रह हों तो व्याधियुक्त, ५ ग्रह नीच में हो तो बन्धन से दुःखी, और ६ ग्रह नीचगृह में तथा ६ या ७ शत्रु गृह में हो तो वध (मृत्यु) और दुरित (पाप) से युक्त होता है ॥ २ ॥

वि०—सातों ग्रह एक साथ नीच में नहीं हो सकते हैं । परन्तु ७ ग्रह शत्रुगृह में हो सकते हैं इसलिये ६, और सात ग्रह का फल समान ही 'वध-दुरित समेत' एकही कहा गया है ॥ २ ॥

कुम्भलग्न का फल—

न कुम्भलग्नं शुभमाह सत्यो न भागभेदाद्यवना वदन्ति ।
कस्यांशभेदो न तथाऽस्ति राशेरतिप्रसङ्गस्त्विति विष्णुगुप्तः॥

सं०—सत्यः (सत्याचार्यः) कुम्भलग्नं शुभन्नाह । भागभेदात् (द्वादशांशभेदात्) कुम्भं यवनाः शुभं न वदन्ति, यस्मिन् कस्मिन्नपि लग्ने कुम्भद्वादशांशो न शुभ" इति यवनाः कथयन्तीत्यर्थः । किन्तु-कस्य राशेस्तथा तादृशोऽशभेदो नास्ति ? अपि तु सर्वेषु राशिषु कुम्भद्वादशांशो विद्यत एव, अत एवेति 'अतिप्रसङ्गः' स्यादिति विष्णुगुप्त आह । अत एव कुम्भलग्नमेवाशुभं, न तु कुम्भद्वादशांश इति सत्याचार्यस्याशयः ॥ ३ ॥

भा०—"जन्म समय में कुम्भलग्न शुभ नहीं होता है" ऐसा सत्याचार्य कहते हैं । किन्तु किसी भी लग्न में कुम्भ का द्वादशांश अशुभ होता है ऐसा प्राचीन यवनाचार्यों का मत है । परन्तु विष्णुगुप्त कहते हैं कि—ऐसी कौन राशि है जिसमें कुम्भ का द्वादशांश नहीं है ? अर्थात् कुम्भ का द्वादशांश

तो सब राशि में है तब तो सब राशि लग्न में अशुभ हो जायँगे, इसलिये ऐसा मानना अतिप्रसक्त है। इसलिये कुम्भ लग्न ही जन्म में अशुभ है॥३॥

वि०—यथा सत्याचार्य का वचन--

"होरा च भवेदिष्टा द्विपदेष्विह कुम्भवर्ज्यं हि"

कुम्भविलग्ने जातो भवति नरो दुःखसन्तप्तः।" इति स्पष्टार्थं।

तथा प्राचीन यवन वाक्य--

"सर्वस्मिँल्लग्नगते कुम्भाद्द्वादशांशको यदा भवति।

राशौ, न तदा सुखिनः परान्नभोजी भवेत् पुरुषः॥" इति।

एवं विष्णुगुप्त का मत—

"कुम्भद्वादशभागो लग्नगतो न प्रशस्यते यवनैः।

यद्येवं ! सर्वेषां लग्नगतानामनिष्टफलता स्यात्॥

षट्योगाद्राशीनां न मतं तत्सर्वशास्त्रकाराणाम्।

तस्मात् कुम्भविलग्नं जन्मन्यशुभं, न तद्भागः॥" इति॥ ३॥

होरास्थित ग्रहों के फल—

यातेष्वसत्स्वसमभेषु दिनेशहोरां
ख्यातो महोद्यमबलार्थयुतोऽतितेजाः।
चान्द्रीं शुभेषु युजि मार्दवकान्तिसौख्य-
सौभाग्यधीमधुरवाक्ययुतः प्रजातः॥४॥

सं०—असत्सु (पापग्रहेषु) असमभेषु स्थितेषु दिनेशहोरां यातेषु (सूर्यहोरां गतेषु) जातकः ख्यातः, महोद्यमबलार्थयुतः, अतितेजाः (महातेजस्वी) भवति। तथा च शुभेषु (शुभग्रहेषु) युजि (समराशौ) स्थितेषु चान्द्रीं होरां यातेषु प्रजातो जनो मार्दवकान्तिसौख्यसौभाग्यधी मधुरवाक्ययुतो भवति॥४॥

भा० —यदि पापग्रह विषम राशि और सूर्य की होरा में हो तो जातक सर्वत्र विख्यात, महा उद्यम.बल और धनों से युक्त तथा परम तेजस्वी

होता है। एवं यदि शुभग्रह समराशि और चन्द्रमा की होरा में हो तो जातक कोमल कान्ति, सुख, सौभाग्य, बुद्धि से युत और प्रियभाषी होता है ॥

वि०—यदि पापग्रह विषम राशि और रवि की होरा में तथा शुभग्रह समराशि और चन्द्र होरा में हो तो ऊपर कहे हुए दोनों प्रकार के गुणों से युक्त होता है, इत्यादि अपनी बुद्धि से भी समझना चाहिये ॥४॥

फिर इसमें विशेषता कहते हैं—

तास्वेव होरास्वपरर्क्षगासु ज्ञेया नराः पूर्वगुणेषु मध्याः ।
व्यत्यस्तहोराभवनस्थितेषु मर्त्या भवन्त्युक्तगुणैर्विहीनाः ॥५॥

सं०—तासु (पूर्वकथितासु) होरासु स्थितेषु अपरर्क्षगेषु अर्थात् पापेषु सूर्यहोरास्थितेषु समर्क्षगेषु, शुभेषु च चन्द्रहोरास्थितेषु विषमर्क्षगेषु जाता नराः पूर्वगुणेषु मध्या ज्ञेयाः । तथा व्यत्यस्तहोराभवनस्थितेषु (अर्थात् पापग्रहेषु चन्द्रहोरासमराशिस्थितेषु, शुभग्रहेषु च रविहोराविषमराशिस्थितेषु) जाता नरा उक्तगुणैर्विहीना ज्ञेयाः ॥५॥

भा०—यदि पापग्रह सूर्य होरा में होते हुए भी यदि समराशि में हो, एवं शुभग्रह यदि चन्द्र होरा में होते हुए भी विषम राशि में हो तो जातक पूर्वकथित गुणों में मध्यम होता है। यदि बिल्कुल विपरीत (अर्थात् पापग्रह चन्द्र होरा और समराशि में हों और शुभग्रह रविहोरा और विषम राशि में) हों तो जातक ऊपर कहे हुए गुणों से हीन होता है ॥५॥

द्रेष्काणवश चन्द्रमा का फल—

कल्याणरूपगुणमात्मसुहृद्दृकाणे
चन्द्रोऽन्यगस्तदधिनाथगुणं करोति ।
व्यालोद्यतायुधचतुश्चरणाण्डजेषु
तीक्ष्णोतिहिंस्रगुरुतल्परतोऽटनश्च ॥६॥

सं०—चन्द्रः आत्मसुहृद्दृकाणे स्थितः जातकं कल्याणरूपगुणं (प्रशस्तस्वरूपं, प्रशस्तगुणयुक्तं च) करोति । अन्यगः (अन्यस्योदासीनस्य,

शत्रोर्वा द्रेष्काणे स्थितस्तदा) तदधिनाथगुणं जातकं करोति, अर्थात् समद्रेष्काणगतश्चन्द्रो जातकं रूपगुणैर्मध्यमं, शत्रुद्रेष्काणगतश्चन्द्रो जातकं रूपगुणैर्हीनं करोति । तथा व्यालोद्यतायुधचतुश्चरणाण्डजेषु (सर्पसायुध-चतुष्पद-पक्षिद्रेष्काणेषु) स्थिते चन्द्रे क्रमेण जातः तीक्ष्णः, अतिहिंस्रो गुरुतल्परतः, अटनश्च भवति ॥ ६ ॥

भा०—चन्द्रमा यदि अपने या अपने मित्र के द्रेष्काण में हो तो जातक उत्तम रूप और उत्तम गुणों से युक्त होता है। अन्य द्रेष्काण में हो तो तदनुसार ही गुण और रूप होता है। अर्थात् सम के द्रेष्काण में हो तो रूप और गुण सम होते हैं। यदि शत्रु के द्रेष्काण में हो तो रूप और गुण निकृष्ट (अधम) होते हैं। यदि चन्द्रमा सर्प द्रेष्काण में हो तो जातक उग्र (क्रूर) स्वभाववाला, यदि उद्यतायुध द्रेष्काण में चन्द्रमा हो तो अतिहिंसक, चतुष्पद द्रेष्काण में हो तो जातक गुरुपत्नीगामी, और पक्षी द्रेष्काण में चन्द्रमा के रहने से जातक भ्रमणशील होता है ॥ ६ ॥

वि०—यदि सर्पादि द्रेष्काण चन्द्रमा का अपना या मित्र का हो तो दोनों प्रकार के फल होते हैं।

सर्प द्रेष्काण—कर्क में दूसरा, तीसरा, वृश्चिक में प्रथम, द्वितीय, मीन में तृतीय।

उद्यतायुध द्रेष्काण—मेष में प्रथम और तृतीय, मिथुन में द्वितीय और तृतीय, सिंह में द्वितीय और तृतीय, कन्या में द्वितीय, तुला में तृतीय, मकर में तृतीय।

चतुष्पद द्रेष्काण—मेष का द्वितीय, वृष का द्वितीय, तृतीय, कर्क का प्रथम, सिंह का प्रथम, द्वितीय, तृतीय, तुला का तृतीय, वृश्चिक का तृतीय, धनु का प्रथम, मकर का प्रथम।

पक्षी द्रेष्काण—मिथुन का द्वितीय, सिंह का प्रथम, तुला का द्वितीय, कुम्भ का प्रथम।

आगे द्रेष्काणाध्याय देखिये। यहाँ भी जिस द्रेष्काण में दो रूप हैं उसमें दोनों फल समझना चाहिये ॥ ६ ॥

लग्न में वर्गोत्तम से भिन्न (अन्य राशिगत) मेषादि नवांश के और द्वादशांश के फल—

स्तेनो भोक्ता पण्डिताढ्यो नरेन्द्रः क्लीबः शूरो विष्टिकृद्दासवृत्तिः।
पापो हिंस्रोऽभीश्च वर्गोत्तमांशेष्वेषामीशा राशिवद् द्वादशांशैः॥

सं०—वर्गोत्तमवर्ज्ये मेषादिनवमांशे लग्नगते जातकः क्रमेण स्तेनो, भोक्ता, पण्डितः, आढ्यः, नरेन्द्रः, क्लीबः, शूरः, विष्टिकृद् (भारजीवी), दासवृत्तिः, पापः, हिंस्रः, अभीश्च भवति। वर्गोत्तमांशेषु तु एषां (स्तेनादीनां) ईशाः (स्वामिनः) भवन्ति। द्वादशांशैः राशिवत् फलं ज्ञेयम्॥ ७॥

भा०—वर्गोत्तम छोड़कर लग्न में मेष का नवांश हो तो जातक स्तेन (चोर) होता है। वृष का नवांश हो तो भोगी, मिथुन का नवांश हो तो पण्डित, कर्क का नवांश हो तो धनवान्, सिंह का नवांश हो तो राजा, कन्या का नवांश हो तो नपुंसक, तुला का नवांश हो तो संग्रामप्रिय, वृश्चिक का नवांश हो तो भार ढोने वाला, धनु का नवांश हो तो भृत्य, मकर का नवांश हो तो पापी, कुम्भ का नवांश हो तो हिंसक और मीन का नवांश हो तो निर्भय होता है। परञ्च यदि वर्गोत्तम नवांश हो तो इन सबों का अधिपति होता है। तथा मेषादि द्वादशांश के फल राशि फल के समान ही होते हैं॥ ७॥

वि०—जो राशि लग्न हो उसी का नवांश वर्गोत्तम कहलाता है। जैसे मेष लग्न में मेष का ही नवांश हो तो चोरों का राजा, वृष लग्न में वृष का ही नवांश हो तो भोगियों में श्रेष्ठ, मिथुन लग्न में मिथुन का ही नवांश हो तो जातक पण्डितों में श्रेष्ठ इत्यादि अन्य लग्न में भी समझना॥ ७॥

स्वस्वत्रिंशांशगत मङ्गल और शनि के फल—

जायान्वितो बलविभूषणसत्त्वयुक्त-
स्तेजोतिसाहसयुतश्च कुजे स्वभागे।
रोगी मृतस्वयुवतिर्विषमन्यदारो

दुःखी परिच्छदयुतो मलिनोऽर्कपुत्रे ॥ ८ ॥

सं०—कुजे स्वभागे (स्वत्रिंशांशस्थे) स्थिते जातः-जायान्वितो बलविभूषणसत्त्वयुक्तः, तेजोऽतिसाहसयुतश्च भवति। अर्कपुत्रे (शनौ) स्वत्रिंशांशे स्थिते जातः-रोगी, मृतस्वयुवतिः, विषमः (क्रूरः), अन्यदारः, दुःखी, परिच्छदयुतः (भवनवस्त्रादिसहितः) मलिनश्च भवति ॥८॥

भा०—यदि मङ्गल अपने त्रिंशांश में हो तो जातक—स्त्री सहित, बल, भूषण, उदारतादि गुणों से युक्त, अत्यन्त तेजस्वी और साहसी होता है। यदि शनि अपने त्रिंशांश में हो तो जातक रोगी, मृतभार्य, कुटिल, परस्त्री को रखने वाला, दुःखी और गृहवस्त्रादि से युक्त होता है ॥८॥

स्वत्रिंशांशगत बृहस्पति और बुध के फल—

स्वांशे गुरौ धनयशःसुखबुद्धियुक्ता-
स्तेजस्विपूज्यनिरुगुद्यमभोगवन्तः ।
मेधाकलाकपटकाव्य-विवादशिल्प-
शास्त्रार्थसाहसयुताः शशिजेऽतिमान्याः ॥९॥

सं०—गुरौ स्वांशे (स्वत्रिंशांशस्थे) जातका-धनयशः सुखबुद्धियुक्ताः, तेजस्विपूज्यनिरुगुद्यमभोगवन्तो भवन्ति। शशिजे बुधे स्वत्रिंशांशगते जाताः—मेधाकलाकपटकाव्यविवादशिल्पशास्त्रार्थसाहसयुता अतिमान्याश्च भवन्ति ॥९॥

भा०—गुरु अपने त्रिंशांश में हो तो जातक-धन, यश, सुख, बुद्धि से युक्त, तेजस्वी, जनमान्य, रोगरहित, उद्यमी और भोगी होता है। यदि बुध अपने त्रिंशांश में हो तो जातक—मेधावी, कला जाननेवाला, कपटी, काव्य करनेवाला, शास्त्रार्थ जानने वाला, साहसी और लोक में आदरणीय होता है ॥ ९ ॥

स्वत्रिंशांशगत शुक्रफल और कुजादि त्रिंशांशगत रविचन्द्र के फल—

स्वे त्रिंशांशे बहुसुतसुखारोग्यभाग्यार्थरूपः
शुक्रे तीक्ष्णः सुललितवपुः सुप्रकीर्णेन्द्रियश्च ।

शूर-स्तब्धौ विषमवधकौ सद्गुणाढ्यौ सुखिज्ञौ
चार्वङ्गेष्टौ रविशशियुतेष्वारपूर्वांशकेषु ॥१०॥

इति श्रीवराहमिहिरविरचिते बृहज्जातके आश्रय-
योगाऽध्याय, एकविंशः ॥२१॥

सं०—शुक्रे स्वे त्रिशांशे जातः—बहुसुतसुखारोग्यभाग्यार्थरूपः, तीक्ष्णः, सुललितवपुः, सुप्रकीर्णेन्द्रियश्च भवति । तथा आरपूर्वांशकेषु (कुजादित्रिंशांशेषु)•रविशशियुतेषु जातौ नरौ क्रमेण शूरस्तब्धो, विषमवधको, सद्गुणाढ्यौ, सुखिज्ञौ चार्वङ्गेष्टौ भवतः ॥१०॥

भा०—शुक्र अपने त्रिंशांश में हो तो जातक—अधिक पुत्र, सुख, आरोग्य, भाग्य, धन, रूप से युक्त, क्रूर, सुन्दर शरीर, बहुस्त्री गमनशील होता है । यदि मङ्गल के त्रिंशांश में रवि हो तो स्तब्ध (धीरे कार्य करने वाला), बुध के त्रिंशांश में रवि हो तो कुटिल, चन्द्रमा हो तो हिंसक होता है । गुरु के त्रिंशांश में रवि हो तो गुणवान् और चन्द्रमा हो तो धनवान् होता है । शुक्र के त्रिंशांश में रवि हो तो सुखी, चन्द्रमा हो तो पण्डित होता है । शनि के त्रिंशांश में रवि हो तो सुन्दर शरीर और चन्द्रमा हो तो सर्वजनप्रिय होता है ॥ १० ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके-आश्रययोगाध्यायः ॥२१॥

—०❀०—

अथ प्रकीर्णकाध्यायः ॥२२॥

कारक ग्रहों का लक्षण—

स्वर्क्षतुङ्गमूलत्रिकोणगाः कण्टकेषु यावन्त आश्रिताः ।
सर्व एव तेऽन्योन्यकारकाः कर्मगस्तु तेषां विशेषतः ॥१॥

सं०—यावन्तो ग्रहाः स्वर्क्षतुङ्गमूलत्रिकोणगाः सन्तः कण्टकेषु केन्द्रेषु

आश्रितास्ते सर्वे एवाऽन्योन्यकारका भवन्ति। तेषां मध्ये कर्मगो दशमस्थानस्थो विशेषतः कारकसंज्ञो भवति ॥ १ ॥

भा०—जितने ग्रह अपने गृह-उच्च या मूलत्रिकोण में होकर परस्पर केन्द्र में हों वे सब ग्रह परस्पर कारक कहलाते है। उन में भी जिस से जो दशमस्थान में रहता है वह विशेषरूप से कारक होता है ॥ १ ॥

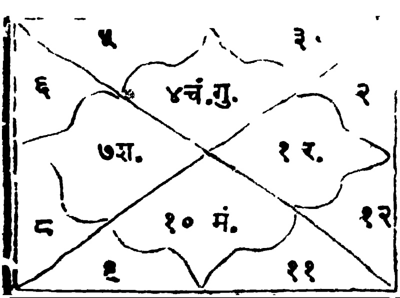
इसी का उदाहरण—

कर्कटोदयगते यथोडुपे स्वोच्चगाः कुजयमार्कसूरयः।
कारका निगदिताः परस्परं लग्नगस्य सकलोऽम्बराम्बुगः॥ २॥

सं०—यथा उडुपे (चन्द्रे) कर्कटोदयगते, कुजयमार्कसूरयः (भौम-शनि, रवि, गुरवः) स्वोच्चगाः (स्वस्वोच्चस्थिताः) तदैते सर्वे परस्परं कारका निगदिताः। लग्नगस्य ग्रहस्य अम्बराम्बुगः (दशमचतुर्थगतः) सकलोऽपि ग्रहः कारको भवति ॥ २ ॥

भा०—जैसे कर्क लग्न में चन्द्रमा हो और मकर में मङ्गल, तुला में शनि, मेष में रवि, कर्क में ही गुरु हो तो स्वराशि और उच्चगत होकर परस्पर केन्द्र में पड़ने के कारण ये चारों ग्रह परस्पर कारक हुए। लग्नगतग्रह के चतुर्थ और दशम में जो उच्चादिस्थित हो वे सब विशेष कारक होते हैं ॥

लग्नकुण्डली



जैसे इसी उदाहरण में शनि से १० दशमस्थानमें स्वराशि और स्वोच्चगत चन्द्रमा और गुरु ये दोनों विशेष कारक हुए। एवं मङ्गल से दशम स्थान में शनि स्वोच्चगत होने से विशेष कारक है। जातक को राज्यादिसुखदायक ग्रह कारक कहलाते है। कारक ग्रह परस्पर केन्द्र में पड़ने से परस्पर शुभ फल देने में सहायक होते है। ये परस्पर दशाअन्तर्दशा में शुभप्रद होते है ॥ २ ॥

लग्न से भिन्न केन्द्र में कारक कहते हैं—

स्वत्रिकोणोच्चगो हेतुरन्योन्यं यदि कर्मगः ।
सुहृत्तद्गुणसंम्पन्नः कारकश्चापि स स्मृतः ॥३॥

सं०—स्वत्रिकोणोच्चगो ग्रह एव कारकत्वे हेतु कारणं भवति, न लग्न-केन्द्रग एव । अत एव लग्नाऽन्यत्रापि कस्माचिदपि स्वोच्चादिस्थितात् कश्चिद् ग्रहो यदि कर्मगो भवति स यदि सुहृत्तद्गुणसम्पन्नश्च स्यात् तदा सोऽपि ग्रहः कारकः स्मृतः ॥ ३ ॥

भा०—स्वोच्च, स्वगृह स्वमूलत्रिकोण गत ग्रह ही कारकत्व में हेतु है । न कि लग्नसे ही केन्द्रगत । अत एव अन्यत्र भी स्वोच्चादि स्थित ग्रह से कोई ग्रह दशम में स्वोच्चादि-स्थान स्थित हो और वह नैसर्गिक मित्र हो तो वह भी कारक होता है ॥ ३ ॥

वि०—दशम चतुर्थ में विशेषण इसलिये है कि परस्पर दशम चतुर्थ में होने से तत्कालिक मैत्री होती है । और उन दोनों में नैसर्गिक मैत्री भी हो तो अभिमित्र हो जाने से विशेष कारकत्व होता है ॥ ३ ॥

इसका प्रयोजन कहते हैं—

शुभं वर्गोत्तमे जन्म वेशिस्थाने च सद्ग्रहे ।
अशून्येषु च केन्द्रेषु कारकाख्यग्रहेषु च ॥ ४ ॥

सं०—वर्गोत्तमे (वर्गोत्तमनवांशगते) लग्ने चन्द्रे वा जन्म शुभं भवति । वेशिस्थाने (सूर्याद् द्वितीयभावे) च सद्ग्रहे शुभग्रहे सति जन्म शुभं भवति । केन्द्रेषु चाशून्येषु च (ग्रहयुक्तेषु लग्नात् कस्मिन्नपि केन्द्रे ग्रहे सति) जन्म शुभं भवति । तथा कारकाख्यग्रहेषु च विद्यमानेषु जन्म शुभं भवति ॥ ४ ॥

भा०—लग्न वा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवांश में हो तो जन्म शुभ होता है । अथवा सूर्य से द्वितीय स्थान में शुभ ग्रह हो तो भी जन्म शुभ होता है । अथवा लग्न से केन्द्र-स्थान शून्य न हो अर्थात् किसी भी केन्द्र में ग्रह

हो तो जन्म शुभ होता है। एवं जन्मलग्नकुण्डली में कारक ग्रह हो तो भी जन्म शुभ होता है। अर्थात् ऐसे लग्न में जन्म लेनेवाला यशस्वी और सुखी होता है ॥ ४ ॥

ग्रहों के शुभाशुभ फल देने का समय—

मध्ये वयसः सुखप्रदाः केन्द्रस्था गुरुजन्मलग्नपाः।
पृष्ठोभयकोदयर्क्षगास्त्वन्तेऽन्तः प्रथमेषु पाकदाः ॥ ५ ॥

सं०—गुरुजन्मलग्नपाः (गुरुश्च जन्मराशीशश्च जन्मलग्नपतिश्चैते) केन्द्रस्थाश्चेत्तदा वयसो मध्ये (यौवने) सुखप्रदा भवन्ति। पृष्ठोभयकोदयर्क्षगाः (पृष्ठोदयोभयोदयमस्तकोदयराशिगता ग्रहाः) क्रमेण अन्तेऽन्तःप्रथमेषु (स्वस्वदशादि-मध्य-प्रान्तसमयेषु) पाकदाः (स्वस्वदशाफलदाः) भवन्ति ॥५॥

भा०—गुरु, जन्मराशिस्वामी और जन्मलग्नस्वामी ये केन्द्र में हो तो वयस के बीच (युवावस्था) में सुखप्रद होते हैं। जो ग्रह पृष्ठोदय (मेष, वृष, कर्क, धनुपूर्वार्ध, मकर), राशि में हो वह दशा के अन्त में, जो उभयोदय (मीन) में हो वह दशा के मध्य में और जो शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, धन का उत्तरार्ध, वृश्चिक कुम्भ) में हो वह दशा के आदि में ही अपने दशाफल को देता है ॥ ५ ॥

चारवश ग्रहों के गोचर फल का समय—

दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्ययातौ।
रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ शशितनयः फलदस्तु सर्वकालम् ॥६

इति श्रीवराहमिहिरकृते बृहज्जातके प्रकीर्णकाऽध्यायो द्वाविंशतितमः ॥२२॥

सं०—दिनकररुधिरौ (रविकुजौ) भवनस्य राशेः प्रवेशकाले फलदौ, गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्ययातौ स्वस्वफलदौ, रविसुतशशिनौ (शनि-चन्द्रौ) विनिर्गमस्थौ (राश्यन्तस्थितौ) फलदौ भवतः। शशितनयः (बुधस्तु) सर्वकालं (आदिमध्यान्तसमयेषु) फलदो भवति ॥ ६ ॥

भा०—रवि और मङ्गल ये दोनों राशि में प्रवेश के समय में ही अष्टवर्गानुसार अपने अपने फल को देते हैं। गुरु और शुक्र राशिके मध्यमें और शनि चन्द्रमा राशिके अन्त में और बुध सर्वदा अपने फल को देते हैं॥

वि०—एक राशि में ३० अंश होते हैं। अतः १० अंश तक राशिका आदि, और उसके बाद २० अंश तक मध्य, उसके बाद ३० अंश तक अन्त समझना चाहिये ॥ ६ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके प्रकीर्णकाध्यायः ॥२२॥

अथाऽनिष्टाध्यायः ॥२३॥

पुत्र और जायाभाव विचार—

लग्नात् पुत्रकलत्रभे शुभपतिप्राप्तेऽथवाऽऽलोकिते
चन्द्राद्वा यदि सम्पदस्ति हि तयोर्ज्ञेयोऽन्यथाऽसम्भवः।
पाथोनोदयगे रवौ रविसुतो मीनस्थितो दारहा
पुत्रस्थानगतश्च पुत्रमरणं पुत्रोऽवनेर्यच्छति ॥ १ ॥

सं०—लग्नात् चन्द्राद्वा पुत्रकलत्रभे (पञ्चमसप्तमस्थाने) यदि शुभपतिप्राप्ते शुभग्रहैः स्वस्वस्वामिभिर्युते अवलोकिते वा तदा तयोः (पुत्रकलत्रयोः) सम्पदस्ति इति वक्तव्यम् अन्यथा ('शुभस्वामियुतिदृष्ट्यभावे क्रूरयुतदृष्टे) तयोरसम्भवो ज्ञेयः। पाथोनोदयगे कन्यालग्ने रवौ, रविसुतो यदि मीनस्थितस्तदा दारहा भवति । तथाऽस्मिन् योगे-(रवौ पाथोनोदयगे सति) अवनेः पुत्रो मङ्गलो यदि पुत्रस्थानगतस्तदा पुत्रमरणं यच्छति ददाति ॥ १ ॥

भा०—लग्न या चन्द्रमा से ५वाँ भाव शुभग्रह और अपने स्वामी से युत वा दृष्ट हो तो उसको पुत्र सम्पत्ति (अधिक सुपुत्र) होते हैं। एवं सप्तम भाव यदि शुभ और स्वामी से युत दृष्ट हो तो उसे स्त्री सम्पत्ति (अधिक स्त्री या स्त्री से पूर्ण सुख) समझना। अन्यथा (यदि शुभ स्वामी की योग-दृष्टि नहीं हो, और पापग्रहों का योग और दृष्टि हो तो) पुत्र और स्त्री का

अभाव समझना चाहिये। यदि कन्यालग्न में रवि हो और लग्न से सप्तम मीन में शनि हो तो उस पुरुष की स्त्री मर जाती है। और यदि कन्या लग्न में रवि और पञ्चम भाव में मङ्गल हो तो पुत्र का मरणकारक होता है ॥१॥

स्त्री मरण योग—

उग्रग्रहैः सितचतुरस्रसंस्थितैर्मध्यस्थिते भृगुतनयेऽथवोग्रयोः ।
सौम्यग्रहैरसहितसंनिरीक्षिते जायावधो दहननिपातपाशजः ॥

सं०—उग्रग्रहैः पापग्रहैः सितचतुरस्रसंस्थितैः (शुक्रात् चतुरष्टमगैः) अथवा भृगुतनये (शुक्रे) उग्रयोः पापयोर्मध्यस्थिते सौम्यग्रहैरसहितसंनिरीक्षिते क्रमेण, जातस्य दहननिपातपाशजो जायावधः (स्त्रीमरणं) भवति ॥२॥

भा०--शुक्र से ४, ८ स्थान में पापग्रह (शनि रवि मङ्गल) हो अथवा दो पापग्रहों के मध्य में शुक्र हो, शुक्र यदि शुभग्रह से युत दृष्ट नहीं हो तो तीनों योग में क्रम से जातक की स्त्री, अग्नि में जलकर, ऊँचे स्थान से गिरकर और गले में फाँसी लगाकर मर जाती है ॥ २ ॥

पत्नी सहित एकाक्षयोग और विकलभार्यायोग—

लग्नाद्व्ययारिगतयोः शशितिग्मरश्म्योः
पत्न्या सहैकनयनस्य वदन्ति जन्म ।
द्यूनस्थयोर्नवम-पञ्चमसंस्थयोर्वा
शुक्रार्कयोर्विकलदारमुशन्ति जातम् ॥ ३ ॥

सं०—शशितिग्मरश्म्योः (चन्द्रार्कयोः) लग्नाद्व्ययारिगतयोः (द्वादशषष्ठभावस्थयोः) पत्न्या सहैकनयनस्य जन्म आचार्याः प्रवदन्ति । शुक्रार्कयोर्द्यूनस्थयोर्वा नवमपञ्चमस्थयोर्जातं विकलदारं (हीनाङ्गभार्यम्) उशन्ति कथयन्ति ॥ ३ ॥

भा०—चन्द्रमा और रवि यदि लग्न से १२।६ भाव में हो तो स्त्री सहित एक आँखवाले का जन्म होता है। यदि लग्न से सप्तम स्थान अथवा नवम पञ्चम स्थान में शुक्र और मङ्गल हो तो जातक की स्त्री अङ्गहीन होती है ॥

अमुतकलत्रजन्म योग—

कोणोदये भृगुतनयेऽस्तचक्रसन्धौ
वन्ध्यापतिर्यदि न सुतर्क्षमिष्टयुक्तम् ।
पापग्रहैर्व्ययमदलग्नराशिसंस्थैः
क्षीणे शशिन्यसुतकलत्रजन्म धीस्थे ॥ ४ ॥

सं०—कोणोदये (शनौ लग्नगते) भृगुतनयेऽस्तचक्रसन्धौ (अस्ते सप्तमभावे चक्रसन्धौ कर्क-वृश्चिकमीनानामन्तिमांशे च) स्थिते यदि सुतर्क्षं (पञ्चमस्थानं) इष्टयुक्तं (शुभस्वामिसहितं) न तदा जातको वन्ध्यापति-र्भवति । पापग्रहैर्व्ययमदलग्नराशिसंस्थैः, क्षीणे शशिनि धीस्थे (पञ्चमभावगे) सति, असुतकलत्र-जन्म भवति ॥ ४ ॥

भा०—शनि लग्न में हो, शुक्र राशिसन्धि (कर्क, वृश्चिक या मीन के अन्तिम अंश) में होकर सप्तम भाव में हो और यदि पञ्चम भाव शुभग्रह और पञ्चमेश से युक्त नहीं हो तो जातक वन्ध्या स्त्री का पति होता है। यदि पापग्रह १२, ७ और लग्न में हो और क्षीण चन्द्रमा यदि पञ्चम भाव में हो तो पुत्र स्त्री से रहित व्यक्ति का जन्म होता है ॥ ४ ॥

सस्त्रीक पुंश्चल योग—

असितकुजयोर्वर्गेऽस्तस्थे सिते तदवेक्षिते
परयुवतिगस्तौ चेत् सेन्दू स्त्रिया सह पुंश्चलः ।
भृगुजशशिनोरस्तेऽभार्यो नरो विसुतोऽपि वा
परिणततनू नृस्त्र्योर्दृष्टौ शुभैः प्रमदापती ॥ ५ ॥

सं०—सिते शुक्रे-असितकुजयोर्वर्गेऽस्तस्थे सप्तमभावगे तदवेक्षिते (ताभ्यां) शनिकुजाभ्यामवेक्षिते दृष्टे जातः परयुवतिगः स्यात् । तौ शनिकुजौ चेत् सेन्दू चन्द्रसहितौ सप्तमे स्थितौ तथाऽसितकुजवर्गस्थेन सितेनेक्षितौ तदा जातः स्त्रिया सह पुंश्चलो भवति (स परस्त्रीगामी, तत्स्त्री च परपुरुषरता

भवतीत्यर्थः)। एकराशिस्थयोर्भृगुजशशिनोरस्ते सप्तमे तावसितकुजौ स्यातां तदा जातः अभार्यो विसुतो वा भवति। यदि नृस्त्र्योः पुरुषस्त्रीसंज्ञकग्रहयोरेकराशिस्थयोरस्ते शनि-कुजौ भवतस्तौ च यदि शुभैर्दृष्टौ तदा प्रमदापती परिणततनू परिणता वृद्धत्वं गता तनुर्ययोस्तौ तादृशौ भवतः ॥५॥

भा०—शनि मङ्गल के वर्ग (गृह॰नवांशादि) में होकर शुक्र यदि सप्तम भाव में हो और शनि मंगल से देखा जाता हो तो जातक पर-स्त्री-गामी होता है। यदि शनि और मङ्गल दोनों सप्तम भाव में हो, शनि मङ्गल के वर्ग गत शुक्र से दृष्ट हो तो वह पुरुष पर-स्त्री-गामी और उसकी स्त्री पर-पुरुष-गामिनी होती है। यदि शुक्र और चन्द्रमा एक राशि में हो उससे सप्तम में शनि मङ्गल हो तो जातक स्त्री रहित वा पुत्ररहित होता है। यदि पुरुष-स्त्री संज्ञक कोई दो ग्रह एक राशि में हो उससे सप्तम में शनि मङ्गल हो तथा उसपर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो जातक स्त्री सहित वृद्धत्व को प्राप्त करता है ॥५॥

अन्य अनिष्टयोग—

वंशच्छेत्ता खमदसुखगैश्चन्द्रदैत्येज्यपापैः
शिल्पी त्र्यंशे शशिसुतयुते केन्द्रसंस्थार्किदृष्टे।
दास्यां जातो दितिसुतगुरौ रिष्फगे सौरभागे
नीचोऽर्केन्द्वोर्मदनगतयोर्दृष्टयोः सूर्यजेन ॥६॥

सं०—चन्द्रदैत्येज्य-पापैः क्रमेण खमदसुखगैः (दशम-सप्तम-चतुर्थस्थैः) जातो वंशच्छेत्ता वंशघातको दुर्योधन इव भवति। शशिसुतयुते त्र्यंशे द्रेष्काणे केन्द्रसंस्थार्किदृष्टे सति जातकः शिल्पी भवति। दितिसुतगुरौ रिष्फगे सौरभागे (शनिनवांशे) स्थिते दास्यां जातो भवति। मदनगतयोरर्केन्द्वोः सूर्यजेन शनिना दृष्टयोः जातो नीचो भवति ॥ ६ ॥

भा—दशमभाव में चन्द्रमा, सप्तम में शुक्र, और चतुर्थ भाव में पाप ग्रह हो तो जातक वंश को नाश करने वाला होता है। जिस द्रेष्काण में

बुध हो उस पर केन्द्र स्थित शनि की दृष्टि हो तो जातक चित्रकार होता है। यदि शुक्र शनि के नवांश में होकर द्वादश भाव में हो तो दासी का पुत्र होता है। सप्तम भाव में रवि और चन्द्रमा दोनों हो उन पर शनि की दृष्टि हो तो जातक नीच (निन्द्य कर्म करने वाला) होता है ॥६॥

बाह्य और गुह्य रोग—

पापालोकितयोः सितावनिजयोरस्तस्थयोर्बाह्यरुक्
केन्द्रे कर्कटवृश्चिकांशकगते पापैर्युते गुह्यरुक् ।
श्वित्री रिष्फधनस्थयोरशुभयोश्चन्द्रोदयेऽस्ते रवौ
चन्द्रे खेऽवनिजेऽस्तगे च विकलो यद्यर्कजो वेशिगः ॥७॥

सं०—पापालोकितयोरस्तस्थयोः सितावनिजयोः जातको बाह्यरुक् (प्रसिद्धरोगेण युक्तो) भवति। पापैर्युते चन्द्रे कर्कटवृश्चिकांशकगते सति जातो गुह्यरुक् (गुप्तरोगी) भवति। अशुभयोः रिष्फधनस्थयोः, चन्द्रोदये रवौ चास्ते सप्तमे जातः श्वित्री (श्वेतकुष्ठी) भवति। चन्द्रे खे (दशमे) अवनिगे चास्तगे यद्यर्कजः शनिर्वेशिगः (सूर्याद् द्वितीयस्थः) तदा जातो विकलो भवति ॥ ७ ॥

भा० - शुक्र और मङ्गल सप्तम भाव में यदि पाप ग्रहों से दृष्ट हों तो जातक बाह्यरोगी (प्रत्यक्ष दृश्य रोग से युत) होता है। और चन्द्रमा यदि पाप ग्रह से युत होकर कर्क या वृश्चिक के नवांश में हो तो जातक गुप्तरोगी (जिस रोग का ठीक पता न चलता वह गुह्यरोग है उससे युक्त) होता है। १२, २ भाव में पाप ग्रह हो, चन्द्रमा लग्न में और रवि सप्तम भाव में हो तो श्वेतकुष्ठी होता है। चन्द्रमा दशमभाव में, मङ्गल सप्तम में और सूर्य से द्वितीय स्थान में शनि हो तो जातक विकल (अङ्गहीन) होता है ॥

अन्तःशशिन्यशुभयोर्मृगगे पतङ्गे
श्वासक्षयप्लिहकविद्रधिगुल्मभाजः ।

शोषी परस्परगृहांशगयो रवीन्द्वोः
क्षेत्रेऽथ वा युगपदेकगयोः कृशो वा ॥ ८ ॥

सं०—शशिनि चन्द्रे अशुभयोरन्तःस्थिते (पापयोर्मध्यगते) पतङ्गे मृगगे (मकरस्थे) जाताः—श्वासक्षयप्लिहकविद्रधिगुल्मभाजो भवन्ति । रवीन्द्वोः परस्परगृहांशगयोः (मिथो राशिस्थयोर्नवांशस्थयोर्वा) अथ वा क्षेत्रे (कर्कटे, सिंहे वा) युगपदेकगयोः (कर्कस्थयोर्वा सिंहस्थयोः) जातः शोषी (शोषरोगयुतः) वा कृशो भवति ॥ ८ ॥

भा०—यदि चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के बीच में हो और मकर में सूर्य हो तो जातक श्वास क्षय-प्लीही विद्रधि-गुल्म रोग से पीडित होता है । यदि रवि कर्क में और चन्द्रमा सिंह में, वा रवि कर्कनवांश में और चन्द्रमा सिंह-नवांश में हो, अथवा दोनों कर्क वा सिंह किसी एक ही में दोनों साथ हो तो जातक शोषरोगी, या दुर्बल देह होता है ॥ ८ ॥

चन्द्रेऽश्विमध्यझषकर्किमृगाजभागे
कुष्ठी समन्दरुधिरे तदवेक्षिते वा ।
यातैस्त्रिकोणमलिकर्किवृषैणकैश्च
कुष्ठी च पापसहितैरवलोकितैर्वा ॥ ९ ॥

सं०—चन्द्रे अश्विमध्य-झष-कर्किमृगाजभागे समन्दरुधिरे (शनिकुज-सहिते), तदवेक्षिते वा सति जातः कुष्ठी भवति । अथवा अलिकर्किवृषैणकैः पापसहितैस्त्रिकोणं यातैः (पञ्चमनवमभावगतैश्च) जातः कुष्ठी भवति ॥९॥

भा०—चन्द्रमा यदि धनुराशि के मध्य (पञ्चमनवांश) में हो वा किसी भी राशि में मीन, कर्क, मकर, मेष के नवांश में हो और शनि मङ्गल से युत या दृष्ट हो तो जातक कुष्ठी होता है । अथवा वृश्चिक, कर्क, वृष या मकर पापग्रह से युत या दृष्ट होकर लग्न से त्रिकोण (५।९) में हो तो भी जातक कुष्ठी होता है ॥ ९ ॥

निधनारिधनव्ययस्थिता रविचन्द्रारयमा यथा तथा ।
बलवद्ग्रहदोषकारणैर्मनुजानां जनयन्त्यनेत्रताम् ॥१०॥

सं०—रविचन्द्रारयमाः—यथा तथा (येन केनापि प्रकारेण) निधनारिधनव्ययस्थिता बलवद्ग्रहदोषकारणैर्मनुजानां (एतद्योगोत्पन्नजनानाम्) अनेत्रतां जनयन्ति ॥ १० ॥

भा०—रवि, चन्द्रमा, मङ्गल, और शनि ये चारों किसी रीति से यदि ८, ६, २, १२ इन स्थान में हों तो इन चारों में जो बली ग्रह हों उसके दोष (कफ, वात या पित्त प्रकोप) से जातक का नेत्र नष्ट होता है ॥१०॥

नवमायतृतीयधीयुता न च सौम्यैरशुभा निरीक्षिताः ।
नियमाच्छ्रवणोपघातदा रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे ॥११॥

सं०—अशुभाः (पापग्रहाः) नवमायतृतीयधीयुताः, सौम्यैश्च यदि न निरीक्षितास्तदा नियमात् श्रवणोपघातदा भवन्ति । यदि च तेऽशुभाः सप्तमे स्थिताः—शुभैरदृष्टास्तदा रदवैकृत्यकरा दन्तोपघातकरा भवन्ति ॥११॥

भा०—अशुभ ग्रह यदि ९।११।३ या ५ भाव में हो, उन पर शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तो निश्चित रूप से कर्णरोग कारक होते हैं। यदि पापग्रह सप्तम भाव में शुभग्रह से अदृष्ट हों तो जातक के दाँतों में विकार उत्पन्न करनेवाले होते हैं ॥ ११ ॥

उदयत्युडुपेऽसुरास्यगे सपिशाचोऽशुभयोस्त्रिकोणयोः ।
सोपप्लवमण्डले रवावुदयस्थे नयनापवर्जितः ॥१२॥

सं०—असुरास्यगे (राहुग्रस्ते) उडुपे (चन्द्रे) उदयति लग्नगते अशुभयोः पापग्रहयोस्त्रिकोणयोः (नवमपञ्चमस्थयोः) जातः सपिशाचः (पिशाचाधिष्ठितो) भवति । एवं सोपप्लवमण्डले (राहुग्रस्ते) रवावुदयस्थे लग्नगते सति जातो नयनापवर्जितोऽन्धो भवति ॥ १२ ॥

भा०—राहु से ग्रस्त चन्द्रमा लग्न में हो और उससे नवम पञ्चम में पापग्रह (शनि कुज) हों तो जातक पिशाच युक्त होता है। यदि राहुग्रस्त

रवि लग्न में हो और उससे त्रिकोण में शनि और मङ्गल हो तो जातक अन्धा होता है ॥ १२ ॥

संस्पृष्टः पवनेन मन्दगयुते द्यूने विलग्ने गुरौ
सोन्मादोऽवनिजे स्थितेऽस्तभवने जीवे विलग्नाश्रिते ।
तद्वत्सूर्यसुतोदयेऽवनिसुते धर्मात्मजद्यूनगे
जातो वा ससहस्ररश्मितनये क्षीणे व्यये शीतगौ ॥१३॥

सं०—शनिसहिते द्यूने सप्तमे, मन्दगयुते गुरौ विलग्ने स्थिते सति जातः पवनेन संस्पृष्टः (वातव्याधिना युक्तः) भवति । अवनिजेऽस्तभवने स्थिते, जीवे च विलग्नाश्रिते जातः सोन्मादः (उन्मादसहितः) भवति । सूर्यसुतोदये (शनौ लग्ने) अवनिसुते धर्मात्मजद्यूनगे सति जातस्तद्वत् (सोन्मादो) भवति । अथवा स-सहस्ररश्मितनये (शनिसहिते) क्षीणे शीतगौ व्यये स्थिते जातस्तद्वत् सोन्मादो भवति ॥ १३ ॥

भा०—सप्तम में शनि और लग्न में गुरु हो तो जातक वातव्याधि युक्त होता है । यदि मङ्गल सप्तमभाव में और लग्न में गुरु हो तो उन्मादी (पागल) होता है । यदि शनि लग्न में और मङ्गल ९।५।७ भाव में हो तो भी जातक उन्मादी होता है । यदि क्षीण चन्द्रमा शनि के साथ होकर व्यय भाव में हो तो भी जातक पागल होता है ॥ १३ ॥

दासत्वयोग—

राश्यंशपोष्णकरशीतकरामरेज्यै-
र्नीचाधिपांशकगतैररिभागगैर्वा ।
एभ्योऽल्पमध्यबहुभिः क्रमशः प्रसूता
ज्ञेयाः स्वरभ्युपगमक्रयगर्भदासाः ॥१४॥

सं०—राश्यंशपोष्णकरशीतकरामरेज्यैः ([illegible] उष्णकरो रविः, शीतकर[illegible] गुरुरेभिः) [illegible]

एभ्यः (चतुर्भ्यः) अल्पमध्यबहुभिः (एकेन, द्वाभ्यां, तदधिकैः) क्रमशः प्रसूता उत्पन्नाः अभ्युपगमक्रयगर्भदासाः ज्ञेयाः ॥ १४ ॥

भा०—जन्मराशि के नवांशपति, रवि, चन्द्रमा और गुरु इनमें कोई एक, यदि नीच या शत्रु के नवांश में हो तो जातक अभ्युपगमदास (स्वयं किसी के यहाँ जाकर नौकर) होता है। यदि २ ग्रह नीच या शत्रु राशि के नवांश में हो तो क्रयदास (दूसरे के द्वारा जीवन पर्यन्त के लिये खरीदा हुआ नौकर) होता है। यदि ३ या ४ चारो ग्रह नीच या शत्रुराशि के नवांश में हो तो गर्भदास (गर्भ से ही दास अर्थात् दास का पुत्र जिसे गृहदास कहते हैं) होता है ॥ १४ ॥

अन्य अनिष्टयोग—

विकृतदशनः पापैर्दृष्टे वृषाऽजहयोदये
खलतिरशुभक्षेत्रे लग्ने हये वृषगेऽपि वा।
नवमसुतगे पापैर्दृष्टे रवावदृढेक्षणो
दिनकरसुते नैकव्याधिः कुजे विकलः पुमान् ॥१५॥

सं०—वृषाजहयोदये पापैर्दृष्टे जातो विकृतदशनो (विरूपदन्तो) भवति। अशुभक्षेत्रे (शनिरविकुजराशौ) हये (धनुषि) अपि वा वृषे लग्ने जातः खलतिः (खल्वाटो) भवति। रवौ नवमसुतगे पापैर्दृष्टे जातोऽदृढेक्षणो भवति। दिनकरसुते नवमपञ्चमगे पापैर्दृष्टे नैकव्याधिः (बहुरोगः) भवति। कुजे नवमपञ्चगे पापदृष्टे जातः पुमान् विकलो भवति ॥

भा०—वृष, मेष या धनु लग्न यदि पापग्रह से दृष्ट हो तो जातक विरूप दाँतवाला होता है। पापराशि (मेष, वृश्चिक, सिंह, मकर, कुम्भ), धनु, वा वृष लग्न में जातक खल्वाट (चँदुआ) होता है। रवि नवम पञ्चमभाव में पाप ग्रह से दृष्ट हो तो अल्प दृष्टिवाला, यदि नवम पञ्चम में मङ्गल पाप से दृष्ट हो तो अनेक रोग से युक्त, यदि पापदृष्ट शनि नवम, पञ्चमभाव में हो तो जातक अङ्गहीन होता है ॥ १५ ॥

व्ययसुतधनधर्मगैरसौम्यैर्भवनसमाननिबन्धनं विकल्प्यम्।
भुजगनिगडपाशभृद्दृकाणैर्बलवदसौम्यनिरीक्षितैश्च तद्वत्॥१६॥

सं०—असौम्यैः (पापग्रहैः) व्ययसुतधनधर्मगैः, 'जातकस्य' भवन-समाननिबन्धनं (व्ययादिभावगतराशिर्येन प्रकारेण बध्यते तादृशं बन्धनम्) विकल्प्यम् (ग्रहबलतारतम्येन ज्ञेयम्) भुजगा-निगडपाशभृद्दृकाणैर्लग्नगतैः, बलवदसौम्यनिरीक्षितैश्च तद्वत् (तथैवाऽर्थात् लग्नगतो द्रेष्काणो यस्य राशेर्भवति तत्समानप्राणी यथा बध्यते तथैव) स जातको बध्यते इत्यर्थः ॥१६॥

भा०—लग्न से १२, ५, २, ९ में पापग्रह हो तो इन भावों में जिसमें बलवान् पापग्रह हो उस राशि के समान ही उस जातक का बन्धन समझना चाहिये। यदि लग्न में सर्पयुक्त, निगडयुक्त द्रेष्काण हो उस परब लवान् पापग्रह की दृष्टि हो तो उसी प्रकार (जिस राशि का द्रेष्काण हो वह जिस प्रकार के बन्धन से बाँधा जाता है उसी तरह) उस जातक का बन्धन होता है ॥ १६ ॥

वि०—भावार्थ यह है कि उपरि कथित दोनों योग में जातक को बन्धन होता है। राशि समान बन्धन का अभिप्राय यह है कि—चतुष्पद राशि भाव में, वा लग्न गत द्रेष्काण राशि यदि चतुष्पद हो तो उस जातक को रस्सी से बन्धन होता है। द्विपदराशि हो तो बेड़ी से बन्धन होता है। जलचर राशि हो तो बिना निबन्ध का बन्द रक्खा जाता है। यदि वृश्चिक राशि हो तो कन्दरा आदि में बन्द रक्खा जाता है।

सर्प द्रेष्काण—कर्क में द्वितीय और तृतीय। वृश्चिक में प्रथम द्वितीय। मीन में तृतीय। निगडद्रेष्काण-मकर का प्रथम। द्रेष्काणाध्याय देखिये॥१६॥

फणिबचनोऽपस्मारार्तः क्षयी च निशाकरे
सरवितनये वक्रालोकं गते परिवेषगे।
रवियमकुजैः सौम्यादृष्टैर्नभस्थलमाश्रिते-

भृतकमनुजः पूर्वोद्दिष्टैर्वरश्च समोऽधमः ॥१७॥

इति श्रीवराहमिहिरविरचिते बृहज्जातकेऽनिष्टा-
ऽध्यायस्त्रयोविंशः ॥ २३ ॥

सं०—सरवितनये शनिसहिते निशापतौ चन्द्रे वक्रालोकं गते (कुजदृष्टे), परिवेषगे च सति जातः परुषवचनः, अपस्मारार्तः, क्षयी च भवति । रवि-यम-कुजैर्नभःस्थलं (दशमभावं) आश्रितैः सौम्यादृष्टैर्भृतकमनुजो भवति । पूर्वोद्दिष्टैर्ग्रहैः (एकेन, द्वाभ्यां, त्रिभिः) क्रमेण जातको वरः, समः, अधमश्च भवति ॥ १७ ॥

भा०—चन्द्रमा यदि शनि से युक्त, मङ्गल से दृष्ट और परिवेष (मण्डल) युत हो तो जातक कठोरभाषी, अपस्मार (मृगीरोग) से पीड़ित, और क्षय रोगी होता है । तथा रवि, शनि और मङ्गल इनमें एक दशमभाव में हो तो उत्तम श्रेणी का नौकरी करनेवाला, यदि २ ग्रह दशमभाव में हो तो मध्यम श्रेणी की नौकरी करनेवाला, यदि तीनों ग्रह दशमभाव में हों तो अधम श्रेणी की नौकरी करनेवाला होता है ॥ १७ ॥

वि०—चन्द्रमा शनि से युक्त, मङ्गल से दृष्ट और परिवेष सहित, इनमें एक योग हो तो कटुभाषी, २ योग हो तो मृगी रोगवाला, तीनों योग हो तो क्षयी होता है ॥ १७ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातकेऽनिष्टाध्यायः ॥ २३ ॥

अथ स्त्रीजातकाध्यायः ॥ २४ ॥

जातक फल—तीन प्रकार के हैं—यथा—कुछ फल ऐसे हैं जो पुरुष को प्राप्त होते हैं, कुछ फल केवल स्त्री को ही प्राप्त हो सकते हैं तथा कुछ फल ऐसे भी हैं जो दोनों को प्राप्त हो सकते हैं । इसी विषय को स्पष्ट करने के लिये स्त्रीजातकाध्याय पृथक् लिखते हैं । उसमें प्रथम स्त्रियों के लिये विशेषता कहते हैं—

यद्यत्फलं नरभवेऽक्षममङ्गनानां
तत्तद्वदेत् पतिषु वा सकलं विधेयम् ।
तासां तु भर्तृमरणं निधने वपुस्तु
लग्नेन्दुगं शुभगताऽस्तमये पतिश्च ॥१॥

सं०—नरभवे पुरुषजन्मनि यद्यत् फलं (आकार-गुण-सुखदुःखलाभादिकं पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं वा) अङ्गनानां (स्त्रीणां) अक्षमं (असम्भाव्यं) तत्तत्–पतिषु तत्स्वामिषु वदेत् । अपि वा सकलं फलं पतिषु वदेत् । तासां स्त्रीणां भर्तृमरणं तु निधने (लग्नादष्टमे) वक्तव्यम् । वपुः–(शरीरं) तु लग्नेन्दुगं वक्तव्यम् । तासां शुभगता (सौभाग्यं) पतिश्चास्तमये सप्तमभावे विचार्यः ॥१॥

भा०—पूर्व पुरुष जातक के जो जो फल कहे गये हैं, उनमें जो फल स्त्री जातक में असम्भव हों वे फल स्त्रियों के स्वामी में समझना । अर्थात् जो फल स्त्री में भी सम्भव हों वे फल स्त्री के भी पुरुष के समान ही कहना । अथवा पूर्वोक्त सब फल स्त्री के लग्नानुसार उसके स्वामी में कहना चाहिये । स्त्री के स्वामी का मरण अष्टमभाव से और शरीर सम्बन्धी फल लग्न और चन्द्रमा पर से और सौभाग्य सप्तम से कहना चाहिये ॥१॥

उसी विशेषता को कहते हैं—

युग्मेषु लग्नशशिनोः प्रकृतिस्थिता स्त्री
सच्छीलभूषणयुता शुभदृष्टयोश्च ।
ओजस्थयोश्च मनुजाकृतिशीलयुक्ता
पापा च पापयुतवीक्षितयोर्गुणोना ॥२॥

सं०—लग्नशशिनोर्युग्मेषु समराशिषु स्थितयोः समुत्पन्ना स्त्री प्रकृतिस्थिता (स्त्रीस्वभावसहिता) भवति । तयोर्लग्नशशिनोः शुभदृष्टयोः सच्छीलभूषणयुता च भवति । तयोर्लग्नशशिनोरोजस्थयोः (विषमराशिगयोः) मनु-

आकृतिशीलयुक्ता (पुरुषाकारस्वभावसहिता) भवति । तयोर्लग्नशशिनोः पापयुतवीक्षितयोः पापा गुणोना च भवति ॥२॥

भा०—लग्न और चन्द्रमा दोनों यदि सम राशि में हो तो स्त्री प्रकृति (कोमल कान्ति-लज्जा-प्रिय वाक्य आदि) से युक्ता होती है। यदि लग्न और चन्द्रमा पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो उत्तम स्वभाव और वस्त्र विभूषण से सहिता होती है। यदि लग्न और चन्द्रमा दोनों विषमराशि में हों तो वह कन्या-पुरुष सदृश आकृति और स्वभाववाली होती है। उन (लग्न चन्द्रमा) पर यदि पापग्रह की दृष्टि या योग हो तो पाप करनेवाली तथा गुणहीना होती है॥

वि०—इससे यह सिद्ध होता है कि लग्न और चन्द्रमा इन दोनों में एक विषम, एक सम में हों और पाप शुभ दोनों से दृष्टयुत हों तो मिश्र स्वभाव वाली होती है ॥२॥

मेष वृश्चिकस्थ चन्द्र या लग्नमें कुजादि के त्रिशांशफल—

कन्यैव दुष्टा व्रजतीह दास्यं साध्वी समाया कुचरित्रयुक्ता।
भूम्यात्मजर्क्षे क्रमशोऽशकेषु वक्रार्किजीवेन्दुजभार्गवानाम्॥३॥

सं०—भूम्यात्मजर्क्षे (मेषे वृश्चिके वा) लग्ने, चन्द्रे वा वक्रार्किजीवेन्दुजभार्गवानां अंशेषु (त्रिंशांशेषु) जाता क्रमशः—कन्यैव (अनूढैव) दुष्टा, दास्यं व्रजति, साध्वी, स-माया, कुचरित्रयुक्ता भवति ॥३॥

भा०—मेष या वृश्चिक में लग्न या चन्द्रमा हो और मङ्गल का त्रिंशांश हो तो जन्म लेनेवाली कन्या कुमारी अवस्था में ही दोषयुक्ता अन्यपुरुष से संयोग करनेवाली होती है। यदि शनि का त्रिंशांश हो तो दासी होती है। गुरु का त्रिंशांश हो तो पतिव्रता और सुशीला होती है। बुध का त्रिंशांश हो तो माया जानने वाली होती है। और शुक्र का त्रिंशांश हो तो दुश्चरित्रा होती है ॥ ३ ॥

वृष, तुला मिथुन कन्या लग्न या चन्द्रमें कुजादित्रिंशांशफल—

दुष्टा पुनर्भूः सगुणा कलाज्ञा ख्याता गुणैश्चासुरपूजितर्क्षे।

स्यात् कापटी क्लीबसमा सती च बौधे गुणाढ्या प्रविकीर्णकामा॥

सं०—असुरपूजितर्क्षे (शुक्रराशौ लग्ने चन्द्रे वा) कुजादित्रिंशांशकेषु जाता क्रमशः-दुष्टा, पुनर्भूः, सगुणा, कलाज्ञा, गुणैः ख्याता (विख्यात-गुणा) भवति। बौधे (बुधराशौ) कुजादित्रिंशांशकेषु जाता कापटी, क्लीब-समा, सती, गुणाढ्या प्रविकीर्णकामा च भवति॥ ४॥

भा०—लग्न चन्द्रगत वृष या तुला राशि में मङ्गल का त्रिंशांश हो तो जन्म लेनेवाली दुष्ट स्वभाव वाली, शनि का त्रिंशांश हो तो पुनर्भू (एक पति को छोड़ कर दूसरा पति करने वाली), गुरु का त्रिशांश हो तो गुणोंसे युक्ता, बुध का त्रिशांश हो तो कलाओं को जानने वाली और शुक्र का त्रिंशांश हो तो गुणों से विख्यात होती है। मिथुन या कन्या राशि में मङ्गल का त्रिंशांश हो तो कपट युक्ता, शनि का त्रिंशांश हो तो हिजड़िन (नपुंसक तुल्य), गुरु का त्रिंशांश हो तो सती, बुध का त्रिंशांश हो तो गुणों से युक्ता और शुक्र का त्रिंशांश हो तो कामातुरा होती है॥ ४॥

चन्द्र, रवि, गुरु और शनि की राशि में कुजादित्रिंशांशफल—

स्वच्छन्दा पतिघातिनी बहुगुणा शिल्पिन्यसाध्वीन्दुभे
त्राचारा कुलटार्कभे नृपवधूः पुंश्चेष्टिताऽगम्यगा।
जैवे नैकगुणाऽल्परत्यतिगुणा विज्ञानयुक्ताऽसती
दासी नीचरताऽऽर्किभे पतिरता दुष्टाऽप्रजा स्वांशकैः॥ ५॥

सं०—इन्दुभे (कर्के) लग्नगते चन्द्रगते वा कुजादित्रिंशांशकेषु जाता क्रमशः-स्वच्छन्दा, पतिघातिनी, बहुगुणा, शिल्पिनी, असाध्वी भवति। अर्कभे (सिंहे) कुजादित्रिंशांशकेषु जाता क्रमशः-त्राचारा (पुरुषस्वभावा), कुलटा, नृपवधूः, पुंश्चेष्टिता, अगम्यगा भवति। जैवे (जीवराशौ) वक्रादि-त्रिंशांशकेषु जाता क्रमशः—नैकगुणाऽल्परत्यतिगुणा विज्ञानयुक्तासती भवति। आर्किभे (शनिराशौ) स्वांशकैः (वक्रार्क्यादित्रिंशांशैः) जाता क्रमशः—दासी, नीचरता, पतिरता, दुष्टा, अप्रजा भवति॥ ५॥

भा०—कर्कराशि गतलग्न या चन्द्र में यदि मङ्गल का त्रिंशांश हो तो स्वच्छन्दा (स्वतन्त्र स्वभाववाली), शनि का त्रिंशांश हो तो पति को मारने वाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो बहुत गुणों से युक्ता, बुध का त्रिंशांश हो तो शिल्प कर्मनिपुणा, शुक्र का त्रिंशांश हो तो दुराचारिणी होती है । सिंह राशि में मङ्गल का त्रिंशांश हो तो पुरुष के स्वभाववाली, शनि का त्रिंशांश हो तो कुलटा, गुरु का त्रिंशांश हो तो राजपत्नी, बुध का त्रिंशांश हो तो पुरुष के समान आचरण वाली, शुक्र का त्रिंशांश हो तो नीच पुरुष से सङ्ग करने वाली होती है । गुरु राशि (धनु-मीन) में मङ्गल का त्रिंशांश हो तो अनेक गुणयुक्ता, शनि का त्रिंशांश हो तो थोड़ी रति (पति सम्भोग) करने वाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो अत्यधिक गुणवाली, बुध का त्रिंशांश हो तो विज्ञान जानने वाली और शुक्र का त्रिंशांश हो तो असती (व्यभिचारिणी) होती है । शनि राशि (मकर, कुम्भ) में मङ्गल का त्रिंशांश हो तो दासी, शनि का त्रिंशांश हो तो नीच पुरुषों के साथ रहने वाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो पतिव्रता, बुध का त्रिंशांश हो तो दुष्ट स्वभाव वाली और शुक्र का त्रिंशांश हो तो वन्ध्या होती है ॥ ५ ॥

शशिलग्नसमायुक्तैः फलं त्रिंशांशकैरिदम् ।
बलाबलविकल्पेन तयोरुक्तं विचिन्तयेत् ॥ ६ ॥

सं०—इदं पूर्वोक्तं फलं शशिलग्नसमायुक्तैस्त्रिंशांशकैर्वक्तव्यम् । तयोः शशिलग्नयोर्बलाबलविकल्पेनोक्तं फलं विचिन्तयेत् ॥ ६ ॥

भा०—ये जो फल कहे गये हैं वे चन्द्रमा और लग्नगत त्रिंशांशों से समझना चाहिये । लग्न और चन्द्रमा इन दोनों में जो बली हो उसके त्रिंशांश का ही फल विशेष रूप से कहना । यदि दोनों बली हों तो दोनों के त्रिंशांश सम्बन्धी फल स्त्रियों में समझना चाहिये ॥ ६ ॥

स्त्रियों के द्वारा स्त्रियों की कामाग्निशान्ति कराने का योग—

दकसंस्थावसितसितौ परस्परांशे
शौक्रे वा यदि घटराशिसम्भवोऽशः ।

स्त्रीभिः स्त्रीमदनविषानलं प्रदीप्तं
संशान्ति नयति नराकृतिस्थिताभिः ॥ ७ ॥

सं०—असितसितौ (शनिशुक्रौ) यदि परस्परांशे स्थितौ परस्परं दृक्संस्थौ भवतः, अथवा शौक्रे (शुक्रराशौ वृषे तुलायां वा) यदि घटराशिसम्भवोंऽशः (कुम्भनवांशः) भवति तदाऽस्मिन् योगद्वये जाता स्त्री नराकृतिस्थिताभिः स्त्रीभिः प्रदीप्तं मदनविषानलं संशान्ति नयति ॥७॥

भा०—शनि के नवांश में शुक्र और शुक्र के नवांश में शनि हों तथा दोनों में परस्पर दृष्टि हो अथवा वृष या तुला राशि में कुम्भ का नवांश हो तो इन दोनों योग में उत्पन्न स्त्री पुरुष के आकार बनाई हुई दूसरी स्त्री के द्वारा अपने प्रज्वलित कामानल को शान्ति कराती है ॥७॥

वि०—भावार्थ यह है-ऐसे योग में उत्पन्न स्त्री कामातुरा होती है। और उसे पति का वियोग होता है। इसलिये वह रबर (चर्म) निर्मित लिङ्ग धारिणी अपनी सहेलियों के द्वारा मैथुन क्रिया से कामाग्नि को शमन कराती है ॥ ७ ॥

कुपति-क्लीबपति आदि योग—

शून्ये कापुरुषोऽबलेऽस्तभवने सौम्यग्रहावीक्षिते
क्लीबोऽस्ते बुधमन्दयोश्चरगृहे नित्यं प्रवासान्वितः ।
उत्सृष्टा तरणौ कुजे च विधवा बाल्येऽस्तराशिस्थिते
कन्यैवाऽशुभवीक्षितेऽर्कतनये द्यूने जराङ्गच्छति ॥८॥

सं०—अस्तभवने (लग्नाच्चन्द्राद्वा सप्तमभावे) शून्ये (ग्रहरहिते) अबले, सौम्यग्रहावीक्षिते (शुभदृष्टिरहिते) जातायाः पतिः कापुरुषः (अधमः) भवति । अस्ते (लग्नशशिनोः सप्तमे) बुधमन्दयोः स्थितयोः, जातायाः पतिः क्लीबः (नपुंसकः) भवति । सप्तमे चरगृहे (चरराशौ सति) जातायाः पतिर्नित्यं प्रवासान्वितो भवति । तरणौ (रवौ) सप्तमे स्थिते उत्सृष्टा (स्वामिना त्यक्ता) भवति । कुजे पापग्रहवीक्षिते बाल्ये

विधवा भवति । अर्कतनये (शनौ) द्यूने (सप्तमे) स्थिते जाता कन्यैव जरां गच्छति (कुमार्येव वृद्धतां प्राप्नोति ॥८॥

भा०—लग्न और चन्द्रमा से सप्तमभाव यदि ग्रह रहित हो, निर्बल हो और शुभग्रह से अदृष्ट हो तो इस योग में उत्पन्न कन्या का पति नीच पुरुष (अनुद्योगी) होता है । यदि सप्तमभाव में बुध और शनि हो तो उस कन्या का पति नपुंसक होता है । सप्तमभाव में चर राशि हो तो कन्या का पति परदेशी होता है । सप्तमभाव में रवि हो तो अपने पति से छोड़ दी जाती है । सप्तमभाव में मङ्गल हो तो बालविधवा होती है । शनि सप्तमभाव में हो तो वह कुमारी में ही वृद्धावस्था को प्राप्त होती है ॥८॥

वि०—सप्तमभाव में चर राशि से पति परदेशी होता है । इससे सिद्ध होता है कि-सप्तम में स्थिर राशि हो तो उसका पति सर्वदा उसके साथ (घर में) ही रहे । और द्विस्वभाव हो तो कभी घर और कभी परदेश में भी रहे ॥ ८ ॥

इस प्रकार सप्तम में पृथक् पृथक् पापग्रह के फल कह कर अब अधिक पाप या शुभ ग्रह के साथ पाप ग्रह सप्तम में हो तो उसका फल और अन्य योग फल भी कहते हैं—

आग्नेयैर्विधवाऽस्तराशिसहितैर्मिश्रैः पुनर्भूर्भवेत्
क्रूरे हीनबलेऽस्तगे स्वपतिना सौम्येक्षिते प्रोज्झिता ।
अन्योन्यांशगयोः सितावनिजयोरन्यप्रसक्ताऽङ्गना
द्यूने वा यदि शीतरश्मिसहितौ भर्तुस्तदाऽनुज्ञया ॥९॥

सं०—आग्नेयैः (क्रूरग्रहैः) अस्तराशिसहितैर्विधवा भवति । मिश्रैः (पापशुभैः) सप्तमस्थैः पुनर्भूः भवेत् (एकं पतिं त्यक्त्वा पुनरन्यपतिं करोति) । हीनबले क्रूरेऽस्तगे सौम्येक्षिते जाता—स्वपतिना प्रोज्झिता भवति । सितावनिजयोः (शुक्र-कुजयोः) अन्योन्यांशगयोः—जाताऽङ्गना

अन्यप्रसक्ता परपुरुषरता भवति । तौ सितावनिजौ (यदि शीतरश्मिसहितौ द्यूने स्थितौ भवतस्तदा भर्तुरनुज्ञयाऽन्यप्रसक्ता भवति ॥९॥

भा०—यदि तीनों पापग्रह सप्तमभाव में हो तो वह स्त्री विधवा होती है। यदि पाप और शुभग्रह दोनों सप्तमभाव में हो तो पुनर्भू (एक पति को छोड़ कर दूसरा पति करने वाली) होती है। यदि निर्बल पापग्रह सप्तम में हो उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो वह पति से परित्यक्ता होती है। शुक्र और मङ्गल यदि परस्पर नवांश में हो तो वह स्त्री परपुरुष में आसक्ता होती है। यदि चन्द्रमा सहित शुक्र और मङ्गल सप्तमभाव में हो तो वह अपने पति की आज्ञा से अन्य पुरुष से सङ्ग करने वाली होती है ॥ ९ ॥

अन्य अशुभ और शुभ योग—

सौरारर्क्षे लग्नगे सेन्दुशुक्रे मात्रा सार्द्धं बन्धकी पापदृष्टे ।
कौजेऽस्तांशे सौरिणा व्याधियोनिश्चारुश्रोणीवल्लभा सद्ग्रहांशे॥

सं०—सौरारर्क्षे (शनिकुजभे) लग्नगे सेन्दुशुक्रे (चन्द्रशुक्रसहिते) पापदृष्टे सति जाता मात्रा सार्धं बन्धकी पुंश्चली भवति । अस्ते सप्तमभावे कौजेंऽशे (कुजनवमांशे) सौरिणा शनिना दृष्टे जाता व्याधियोनिर्भवति । सप्तमे सद्ग्रहांशे जाता चारुश्रोणी वल्लभा (पतिप्रिया) च भवति ॥१०॥

भा०—लग्न में शनि मङ्गल की राशि हो उसमें शुक्र और चन्द्रमा पापग्रह से दृष्ट हों तो ऐसे लग्न में उत्पन्न स्त्री माता सहित व्यभिचारिणी होती है। यदि सप्तम भाव में मङ्गल का नवांश हो उस पर शनि की दृष्टि हो तो वह स्त्री रोगसहित योनिवाली होती है। यदि सप्तम भाव में शुभग्रह के नवांश हो तो वह स्त्री सुभगा सुन्दरी और पति की प्रिया होती है ॥१०॥

पति के स्वरूप और गुण—

वृद्धो मूर्खः सूर्यजर्क्षेऽथवांशे स्त्रीलोलः स्यात् क्रोधनश्चावनेये ।
शौक्रे कान्तोऽतीवसौभाग्ययुक्तो विद्वान् भर्ता नैपुणज्ञश्च बौधे ॥

सं०—सप्तमभावे सूर्यजर्क्षेऽशके वा सति जातायाः पतिः, वृद्धो मूर्खश्च भवति। सप्तमे भावे—आवनेये (कुजर्क्षे कुजांशे वा) जातायाः पतिः स्त्रीलोलः क्रोधनश्च भवति। शौक्रे (शुक्रर्क्षे शुक्रांशे वा सप्तमे) जातायाः पतिः कान्तोऽतीवसौभाग्ययुक्तो भवति। बौधे (बुधर्क्षांशे सप्तमे) जातया भर्ता विद्वान् नैपुणश्च भवति॥ ११॥

भा०—सप्तम भाव में शनि की राशि या नवांश हो तो उस कन्या का पति वृद्ध और मूर्ख होता है। मङ्गल की राशि या नवांश हो तो उसका पति स्त्रीलम्पट और क्रोधी होता है। शुक्र की राशि या नवांश हो तो उसका पति अत्यन्त सुन्दर और भाग्यवान् होता है। बुध की राशि या नवांश हो तो उसका स्वामी विद्वान् और निपुण (सूक्ष्मदृष्टि) होता है॥ ११॥

मदनवशगतो मृदुश्च चान्द्रे त्रिदशगुरोर्गुणवान् जितेन्द्रियश्च।
अतिमृदुरतिकर्मकृच्च सौर्ये भवति गृहेऽस्तमयस्थितेऽशके वा॥

सं०—अस्तमयस्थिते (सप्तमभावगते) चान्द्रे गृहेंऽशके वा जातायाः पतिर्मदनवशगो मृदुश्च (कोमलहृदयश्च) भवति। त्रिदशगुरोर्गृहेंऽशके वा जातायाः पतिर्गुणवान् जितेन्द्रियश्च भवति। सौर्ये (सूर्यस्येदं सौर्यं तस्मिन्) गेहेंऽशके वाऽस्तमयस्थिते जातायाः पतिरतिमृदुः, अतिकर्मकृच्च भवति।

भा०—जन्म समय में सप्तम भाव में चन्द्रमा की राशि (कर्क) या नवांश हो तो उस स्त्री का स्वामी कामातुर और कोमल हृदय वाला होता है। गुरु की राशि या नवांश हो तो उसका स्वामी गुणवान् और जितेन्द्रिय होता है। सूर्य की राशि या नवांश हो तो अत्यन्त मृदु स्वभाव और अधिक कार्य करने वाला पति होता है॥१२॥

वि०—सप्तम भाव में राशि और नवांश दोनों एक ही ग्रह के हों तो उक्त फल समझना। यदि भिन्न ग्रह के हों तो जिसके स्वामी बली हों उसके अनुसार फल कहना। यदि राशि नवांश पति दोनों तुल्य बल हो तो दोनों के फल समझना चाहिये॥ १२॥

लग्नगत शुभग्रहों से स्त्री का गुण—

ईर्ष्यान्विता सुखपरा शशिशुक्रलग्ने
ज्ञेन्द्वोः कलासु निपुणा सुखिता गुणाढ्या ।
शुक्रज्ञयोस्तु रुचिरा सुभगा कलाज्ञा
त्रिष्वप्यनेकवसुसौख्यगुणा शुभेषु ॥१३॥

सं०—शशिशुक्रलग्ने (चन्द्रशुक्रयुतलग्ने) जाता स्त्री ईर्ष्यान्विता सुखपरा च भवति । ज्ञेन्द्वोः (चन्द्रबुधयोर्लग्नगयोः) कलासु निपुणा सुखिता गुणाढ्या च भवति । शुक्रज्ञयोर्लग्नगतयोस्तु जाता–रुचिरा (मनोहरकान्तिः), सुभगा, कलाज्ञा च भवति । एषु (बुधगुरुसितेषु) त्रिष्वपि लग्नगतेषु अनेकवसुसौख्यगुणा भवति ॥ १३ ॥

भा०—जन्म लग्न में चन्द्रमा और शुक्र हो तो स्त्री ईर्ष्या वाली और सुख से युक्ता होती है । बुध और चन्द्रमा हो तो कलाओं को जानने वाली, सुख और गुणों से युत होती है । बुध और शुक्र जन्म लग्न में हो तो लावण्यवती, सौभाग्यवती और कला को जानने वाली होती है । यदि तीनों शुभग्रह (बुध, गुरु और शुक्र) जन्म लग्न में हो तो अनेक प्रकार के धन, सुख और गुणवाली होती है ॥ १३ ॥

पति मरण तथा स्त्री के मरण समय का ज्ञान—

क्रूरेऽष्टमे विधवता निधनेश्वरोंऽशे
यस्य स्थितो वयसि तस्य समे प्रदिष्टा ।
सत्स्वर्थगेषु मरणं स्वयमेव तस्याः
कन्याऽलिगोहरिषु चाल्पसुतत्वमिन्दौ ॥१४॥

सं०—क्रूरेऽष्टमे जाताया विधवता (वैधव्यं) भवति । 'कस्मिन् समये वैधव्यं भवतीत्याह'–निधनेश्वरोऽष्टमेशो यस्य ग्रहस्यांशे स्थितस्तस्य समे वयसि (दशान्तर्दशासमये) तस्या विधवता प्रदिष्टा कथिता । 'सत्सु

(शुभग्रहेषु) अर्थगेषु द्वितीयभावस्थितेषु तस्या जातायाः स्त्रियाः स्वयमेव मरणं (पत्युः पुरस्तान्निधनं) भवति । इन्दौ चन्द्रे कन्यालिगो-हरिषु स्थिते जाताया अल्पसुतत्वं ज्ञेयम् ॥१४॥

भा०—जन्म समय में लग्न से अष्टमभाव में पापग्रह हों तो विधवा होती है। वैधव्य योग में—अष्टमेश जिस ग्रह के नवांश में हो उस ग्रह की अवस्था (बाल्य-युव-वृद्धावस्था) या दशा अन्तर्दशा समय में वह स्त्री विधवा होती है। यदि शुभग्रह द्वितीय भाव में हो तो उस स्त्री का ही मरण स्वामी के समक्ष में होता है। जिसके जन्म समय में कन्या, वृश्चिक, वृष या सिंह में चन्द्रमा हो उस स्त्री को थोड़ी सन्तति होती है ॥१४॥

पुरुषिणी और ब्रह्मवादिनी योग—

सौरे मध्यबले बलेन रहितैः शीतांशुशुक्रेन्दुजैः
शेषैर्वीर्यसमन्वितैः पुरुषिणी यद्योजराश्युद्गमः ।
जीवारास्फुजिदैन्दवेषु बलिषु प्राग्लग्नराशौ समे
विख्याता भुवि नैकशास्त्रनिपुणा स्त्री ब्रह्मवादिन्यपि॥१५॥

सं०—जन्मसमये-सौरे (शनैश्चरे) मध्यबले शीतांशुशुक्रेन्दुजैर्बलेन रहितैः, शेषैः (रविकुजगुरुभिः) वीर्यसमन्वितैः यदि ओजराश्युद्गमस्तदा जाता पुरुषिणी (बहुपुरुषवती पुरुषस्वभावा च) भवति । प्राग्राशिलग्ने (प्रथमलग्ने) समे (समसंख्ये वृषकर्कादिके) सति, जीवारास्फुजिदैन्दवेषु बलिषु बलयुक्तेषु जाता स्त्री भुवि विख्याता नैकशास्त्रनिपुणा ब्रह्मवादिनी (वेदान्तशास्त्रनिपुणाऽपि) भवति ॥ १५ ॥

भा०—जिस स्त्री के जन्म समय में शनैश्चर मध्यबली हो, चन्द्रमा, शुक्र और बुध निर्बल हो, रवि, मङ्गल, गुरु ये बलयुक्त हों और विषम राशि (मेष, मिथुन आदि) लग्न हो तो वह स्त्री पुरुषिणी (बहुत पुरुष को रखने वाली—या पुरुष समूह में रहने वाली) होती है। यदि सम (वृष, कर्क आदि) राशि लग्न हो तथा गुरु मङ्गल, शुक्र, बुध ये बलयुक्त हों तो वह स्त्री संसार

में विख्याता, अनेक शास्त्र में निपुण और ब्रह्मविद्या को जानने वाली होती है ॥ १५ ॥

स्त्री को प्रव्रज्यायोग—

पापेऽस्ते नवमगतग्रहस्य तुल्यां प्रव्रज्यां युवतिरुपैत्यसंशयेन ।
उद्वाहे वरणविधौ प्रदानकाले चिन्तायामपि सकलं विधेयमेतत्॥

इति श्रीवराहमिहिरविरचिते बृहज्जातके स्त्रीजातकाध्यायश्चतुर्विंशतितमः ॥२४॥

सं०—पापेऽस्ते सप्तमभावस्थे सति जाता युवतिः स्त्री नवमगतग्रहस्य तुल्यां प्रव्रज्यां (शाक्याजीविकेत्यादिना कथितां) असंशयेन निश्चयेनोपैति (प्राप्नोति), नवमे ग्रहाभावे प्रव्रज्या न भवतीत्यर्थादेव ज्ञायते । एतत् (अत्राध्याये यदुक्तं तत्) सकलं जाताया उद्वाहे, वरणसमये, प्रदानकाले (दानसमये), चिन्तायां (प्रश्नकाले) च विधेयम् (विचार्यम्) ॥१६॥

भा०—जिस स्त्री के जन्म समय सप्तमभाव में पापग्रह और नवम में कोई ग्रह हो तो उस नवम गतग्रह के समान पूर्वोक्त शाक्याजीविक इत्यादि प्रव्रज्या को वह स्त्री प्राप्त करती है । नवम में ग्रह नहीं हो तो प्रव्रज्या नहीं होती है । इस अध्याय में जो कुछ फल कहे गये हैं वे सब विवाह लग्न, कन्या वरण (तिलक), कन्यादान लग्न और प्रश्नलग्न से भी विचार कर समझना चाहिये । अर्थात् जो शुभ लग्न कहे गये हैं उन्हीं में विवाहादि करना चाहिये । अशुभ में नहीं ॥ १६ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके स्त्रीजातकाध्यायः ॥२४॥

अथ नैर्याणिकाध्यायः ॥२५॥

अष्टमस्थान पर ग्रह दृष्टिवश मरणका हेतु—

मृत्युर्मृत्युगृहेक्षणेन बलिभिस्तद्धातुकोपोद्भव-
स्तत्संयुक्तभगात्रजो बहुभवो वीर्यान्वितैर्भूरिभिः ।
अग्न्यम्ब्वायुधजो ज्वरामयकृतस्तृट्क्षुत्कृतश्चाऽष्टमे
सूर्याद्यैर्निधने चरादिषु परस्वाऽध्वप्रदेशेष्विति ॥ १ ॥

सं०—बलिभिर्ग्रहैर्मृत्युगृहेक्षणेन तद्धातुकोपोद्भवो मृत्युर्भवति स चापि (मृत्युः) तत्संयुक्तभगात्रजः (तेनाऽष्टमस्थानराशिना संयुक्तं यद्भगात्रं कालपुरुषाङ्गं तत्सम्भवो) भवति । भूरिभिः (बहुभिः) वीर्यान्वितैर्ग्रहैर्मृत्युगृहेक्षणेन बहुभवो बहुग्रहधातुकोपोद्भवो मृत्युर्भवति । अष्टमे सूर्याद्यैः स्थितैः क्रमेण–अग्न्यम्ब्वायुधजो ज्वरामयकृतः तृट्-क्षुत्कृतश्च मृत्युर्भवति । तथा निधने चरादिषु राशिषु स्थितेषु पर-स्वाध्वप्रदेशेषु क्रमेण मृत्युर्भवतीति ॥

भा०—अष्टम स्थान में ग्रह नहीं हो तो जो ग्रह बलवान् होकर अष्टम भाव को देखता हो उस ग्रह के धातु (कफ-वात या पित्त) के प्रकोप से उस जातक का मरण होता है । अष्टम स्थान की राशि कालपुरुष के जिस अङ्ग में हो उस अङ्ग में ही उस धातु का प्रकोप होकर मरण होता है यदि अष्टमभाव पर बहुत बलवान् ग्रह की दृष्टि हो तो उन सब ग्रहों के धातु दोष से मरण होता है । अष्टम स्थान में सूर्य हो तो अग्नि से, चन्द्रमा हो तो जल से, मङ्गल हो तो अस्त्र से, बुध हो तो ज्वर से, गुरु हो तो अज्ञात रोग से, शुक्र हो तो तृषा से, शनि हो तो क्षुधा हेतु से मरण होता है । और अष्टम स्थान में चर राशि हो तो परदेश में, स्थिर राशि हो तो स्वदेश में, द्विस्वभाव हो तो मार्ग में मरण होता है ॥ १ ॥

वि०—ग्रहों के धातु पूर्वोक्त इस प्रकार हैं—रवि का पित्त, चन्द्रमा के वात, कफ, मङ्गल का पित्त, बुध के कफ-वात, पित्त, गुरु का कफ, शुक्र के कफ वात और शनि का वात है ॥ १ ॥

अन्य अपमृत्युयोग—

शैलाग्राभिहतस्य सूर्यकुजयोर्मृत्युः खबन्धुस्थयोः
कूपे मन्दशशाङ्कभूमितनयैर्बन्ध्वस्तकर्मस्थितैः ।
कन्यायां स्वजनाद्धिमोष्णकरयोः पापग्रहैर्दृष्टयोः
स्यातां यद्युभयोदयेऽर्कशशिनौ तोये तदा मज्जतः ॥ २ ॥

सं०—सूर्यकुजयोः खबन्धुस्थयोः (दशमचतुर्थगतयोः) जातस्य शैलाग्राभिहतस्य मृत्युर्भवति । मन्दशशाङ्कभूमितनयैः क्रमेण बन्ध्वस्तकर्मस्थितैर्जातः कूपे पतितो म्रियते । हिमोष्णकरयोः (चन्द्रार्कयोः) कन्यायां स्थितयोः पापग्रहैर्दृष्टयोर्जातः स्वजनात् मृत्युमाप्नोति । यदि—उभयोदये (मीने) अर्कशशिनौ स्यातां तदा जातस्य तोये (जले) मज्जतो मृत्युर्भवति ॥ २ ॥

भा०—जन्म समय में रवि मङ्गल दोनों चतुर्थ या दशमभाव में हो तो पत्थर की चोट से जातक की मृत्यु होती है । यदि शनि, चतुर्थ में, चन्द्रमा सप्तम में और मङ्गल दशमभाव में हो तो कूप में गिरकर मरता है । यदि रवि और चन्द्रमा दोनों कन्या राशि में हो और पापग्रह से दृष्ट हो तो अपने कुटुम्बों (गोतियों) के द्वारा जातक का मरण होता है । यदि रवि और चन्द्रमा मीन राशि में हो तो जल में डूब कर मरण होता है ॥ २ ॥

वि०—यहाँ 'उभयोदय' से कितने टीकाकार द्विस्वभाव राशि ग्रहण किये हैं ।

मन्दे कर्कटगे जलोदरकृतो मृत्युर्मृगाङ्के मृगे
शस्त्राग्निप्रभवः शशिन्यशुभयोर्मध्ये कुजर्क्षे स्थिते ।
कन्यायां रुधिरोत्थशोषजनितस्तद्वत् स्थिते शीतगौ
सौरर्क्षे यदि तद्वदेव हिमगौ रज्ज्वग्निपातैः कृतः ॥ ३ ॥

सं०—मन्दे (शनौ) कर्कटगे; मृगाङ्के चन्द्रे मृगे मकरे स्थिते च जातस्य जलोदरकृतो मृत्युर्भवति । शशिनि (चन्द्रे) अशुभयोर्मध्ये कुजर्क्षे (मेषे, वृश्चिके वा) स्थिते सति जातस्य शस्त्राग्निप्रभवो मृत्युर्भवति । शीतगौ

चन्द्रे तद्वत् (अशुभयोर्मध्ये) कन्यायां स्थिते रुधिरोत्थशोषजनितो मृत्यु-र्भवति । यदि हिमगौ चन्द्रे तद्वत् (अशुभयोर्मध्ये) सौरर्क्षे (मकरे, कुम्भे वा) स्थिते जातस्य रज्ज्वग्निपातैः कृतो मृत्युर्भवति ॥ ३ ॥

भा०—शनि कर्क में और चन्द्रमा मकर में हो तो जातक का मरण जलोदर रोग से होता है। यदि चन्द्रमा दो पापग्रहों के मध्य में होकर मङ्गल की राशि (मेष, या वृश्चिक) में हो तो शस्त्र या अग्नि से जातक की मृत्यु होती है। यदि चन्द्रमा दो पापग्रहों के बीच में होकर कन्या में हो तो रक्त (शोणित) दोष से वा शोष रोग से मरण होता है। यदि दो पाप के बीच में होकर चन्द्रमा शनि की राशि (मकर या कुम्भ) में हो तो फाँसी, अग्नि, या गिरकर मरण होता है ॥ ३ ॥

बन्धाद्धीनवमस्थयोरशुभयोः सौम्यग्रहादृष्टयो-
र्द्रेष्काणैश्च ससर्पपाशनिगडैश्छिद्रस्थितैर्बन्धतः ।
कन्यायामशुभान्वितेऽस्तमयगे चन्द्रे सिते मेषगे
सूर्ये लग्नगते च विद्धि मरणं स्त्रीहेतुकं मन्दिरे ॥ ४ ॥

सं०—अशुभयोः (पापग्रहयोः) धीनवमस्थयोः सौम्यग्रहादृष्टयोर्जातस्य बन्धात् मरणं भवति । छिद्रस्थितैः (अष्टमभावगतैः) स-सर्पपाशनिगडै-र्द्रेष्काणैश्च बन्धतो मरणं भवति । अशुभान्विते चन्द्रे कन्यायामस्तमयगे सप्त-मस्थे, पापयुते सिते शुक्रे च मेषगे, सूर्ये च लग्नगते सति स्त्रीहेतुकं मन्दिरे (स्वगेहे) मरणं विद्धि जानीहि ॥ ४ ॥

भा०—जन्म समय में यदि दो पापग्रह पञ्चम और नवमभाव में हो उन पर शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तो जातक का मरण बन्धन से होता है। अष्टम भाव में यदि पाश, सर्प या निगड द्रेष्काण हो तो भी जातक का बन्धन से मरण होता है। पाप सहित चन्द्रमा कन्या में होकर सप्तम भाव में हो और पाप सहित शुक्र मेष में हो तथा सूर्य लग्न में हो तो अपने घर में स्त्री के हेतु से जातक का मरण होता है ॥ ४ ॥

शूलोद्भिन्नतनुः सुखेऽवनिसुते सूर्येऽपि वा खे यमे
सप्रक्षीणहिमांशुभिश्च युगपत् पापैस्त्रिकोणाद्यगैः ।
बन्धुस्थे च रवौ वियत्यवनिजे क्षीणेन्दुसंवीक्षिते
काष्ठेनाऽभिहतः प्रयाति मरणं सूर्यात्मजेनेक्षिते ॥ ५ ॥

सं०—अवनिसुते कुजेऽपि वा सूर्ये सुखे (चतुर्थभावे), यमे शनैश्चरे खे (दशमे) जातः शूलोद्भिन्नतनुः सन् मरणं प्रयाति । सप्रक्षीणहिमांशुभिः पापैर्युगपत् त्रिकोणाद्यगैः (लग्नपञ्चमनवमगतैश्च) शूलोद्भिन्नतनुर्म्रियते । रवौ बन्धुस्थे, अवनिजे वियति दशमे स्थिते क्षीणेन्दुसंवीक्षिते सति च जातः शूलोद्भिन्नतनुर्म्रियते । सूर्यात्मजेनेक्षिते–(बन्धुस्थे रवौ दशमेऽवनिजे शनिना दृष्टे) जातः काष्ठेनाभिहतो मरणं प्रयाति ॥ ५ ॥

भा०—मङ्गल या सूर्य चतुर्थ भाव में और शनि दशम भाव में हो तो जातक शूल के आघात से मरता है । अथवा क्षीण चन्द्र और शनि, रवि, मङ्गल ये चारो लग्न ५।९ इन्हीं तीनों स्थान में हो तो भी शूल के आघात से जातक का मरण होता है । अथवा चतुर्थ रवि और दशम भाव में मङ्गल हो इन दोनों पर शनि की दृष्टि हो तो भी शूल के आघात से जातक की मृत्यु होती है । यदि इसी योग में (चतुर्थ रवि, दशम मङ्गल पर) शनि की दृष्टि हो तो काष्ठ के आघात से जातक की मृत्यु होती है ॥ ५ ॥

रन्ध्रास्पदाङ्गहिबुकैर्लगुडाहताङ्गः
प्रक्षीणचन्द्ररुधिरार्किदिनेशयुक्तैः ।
तद्वत् कर्मनवमोदयपुत्रसंस्थै-
र्धूमाग्निबन्धनशरीरनिकुट्टनान्तः ॥ ६ ॥

सं०—रन्ध्रास्पदाङ्गहिबुकैः (अष्टम-दशम-लग्न-चतुर्थैः) क्रमेण प्रक्षीण-चन्द्र-रुधिरार्कि-दिनेशयुक्तैः जातो लगुडहताङ्गो म्रियते । तैरेव प्रक्षीण-चन्द्र-रुधिरार्किदिनेशैः क्रमेण कर्मनवमोदय-पुत्रसंस्थैर्जातोऽपि धूमाग्निबन्धन-

शरीरनिकुट्टनान्तो (धूमेन, अग्निना, बन्धनेन, शरीरनिकुट्टनेनान्तो मरणं यस्य तथाभूतो) भवति ॥ ६ ॥

भा०—८, १०, १ और ४ इन भावों में क्रम से क्षीण चन्द्र, मङ्गल, शनि और रवि हो तो लाठी के आघात से जातक का मरण होता है। यदि वे (क्षीण चन्द्र, मङ्गल, शनि और रवि) क्रम से १०, ९, १ और ५ भाव में हो तो धूम, अग्नि, बन्धन अथवा काष्ठादि के आघात से शरीर कूटे जानेपर मरण होता है ॥ ६ ॥

बन्ध्वस्तकर्मसहितैः कुजसूर्यमन्दै-
र्निर्याणमायुधशिखिक्षितिपालकोपैः ।
सौरेन्दुभूमितनयैः स्वसुखास्पदस्थै-
र्ज्ञेयः क्रिमिक्षतकृतश्च शरीरघातः ॥ ७ ॥

सं०—कुजसूर्यमन्दैः क्रमेण बन्ध्वस्तकर्मसहितैर्जातस्यायुधशिखिक्षितिपालकोपैर्निर्याणं (मरणं) भवति । सौरेन्दुभूमितनयैः स्वसुखाऽऽस्पदस्थैर्जातस्य क्रिमिक्षतकृतश्च शरीरघातो ज्ञेयः ॥ ७ ॥

भा०—मङ्गल, रवि, शनि ये क्रम से ४, ७, १० भाव में हो तो क्रम से शस्त्र, अग्नि और राजा के कोप से जातक का मरण होता है। यदि शनि, चन्द्र और मङ्गल ये २, ४, १० भाव में हो तो घाव में कीड़े पड़ने से मरण होता है ॥ ७ ॥

अस्तेऽर्केऽवनिजे रसातलगते यानप्रपाताद्वधो
यन्त्रोत्पीडनजः कुजेऽस्तमयगे सौरेन्दिनेशूद्गमे ।
विण्मध्ये रुधिरार्किशीतकिरणैर्जूकाजसौरर्क्षगै-
र्यातैर्वा गलितेन्दुसूर्यरुधिरैर्व्योमास्तबन्ध्वाह्वयान् ॥ ८ ॥

सं०—अर्के अस्ते, अवनिजे रसातलगते सति जातस्य यानप्रपाताद्वधो मरणं भवति । कुजेऽस्तमयगे (सप्तमभावस्थे) सौरेन्दिनेषु उद्गमे

क्ले स्थितेषु यन्त्रोत्पीडनजो मृत्युर्भवति । रुधिरार्किशीतकिरणेजूकाजगौर-क्षगैः, अथवा गलितेन्दुसूर्यरुधिरैः क्रमेण व्योमास्तबन्ध्वाश्रयान् (दशम-सप्तम-चतुर्थभावान्) यातैर्जातस्य विण्मध्ये मरणं भवति ॥ ८ ॥

भा०—दशम भाव में रवि, चतुर्थ में मङ्गल हो तो जातक सवारी पर से गिर कर मरता है। सप्तम भाव में मङ्गल और लग्न में शनि, चन्द्र हों तो यन्त्र (कल) से पिसे जाने पर मरण होता है । यदि मङ्गल, शनि और चन्द्रमा तुला, मेष, मकर और कुम्भ में हों अथवा क्षीण चन्द्र, रवि और मङ्गल ये तीनों क्रम से १०,७,४ इन भाव में हों तो इन दोनों योग में विष्ठा के बीच जातक का मरण होता है ॥ ८ ॥

वीर्यान्वितवक्रवीक्षिते क्षीणेन्दौ निधनस्थितेऽर्कजे ।
गुह्योद्भवरोगपीडया मृत्युः स्यात् कृमिशस्त्रदाहजः ॥९॥

सं०—क्षीणेन्दौ निधनस्थिते वीर्यान्वितवक्रवीक्षिते (बलवत्कुजदृष्टे) सति गुह्योद्भवरोगपीडया जातस्य मृत्युर्भवति। तथाऽर्कजे निधनस्थिते वीर्या-न्वितवक्रवीक्षिते सति जातस्य कृमिशस्त्रदाहजो मृत्युः स्यात् ॥९॥

भा०—क्षीण चन्द्रमा अष्टम भाव में, बलवान् मङ्गल से दृष्ट हो तो गुह्य (बवासीर आदि) रोग की पीड़ा से जातक का मरण होता है। यदि बलवान् कुज से दृष्ट शनि अष्टम भाव में हो तो कीड़े अग्नि और शस्त्र के घात से मरण होता है ॥९॥

वि०—कितने ही टीकाकार इन दो योग को एक ही मानते हैं ॥९॥

अस्ते रवौ सरुधिरे निधनेऽर्कपुत्रे
क्षीणे रसातलगते हिमगौ खगान्तः ।
लग्नास्मजाष्टमतपःस्थितभौममन्द-
चन्द्रैस्तु शैलशिखराशनिकुड्यपातैः ॥१०॥

सं०—सरुधिरे रवौ अस्ते (सप्तमे), अर्कपुत्रे निधने, क्षीणे हिमगौ

रसातलगते जातस्य खगान्तः (खगेन पक्षिणाऽन्तो मृत्युः) भवति । इन-भौमसन्दचन्द्रैः क्रमेण लग्नात्मनाष्टमतपस्सु स्थितैस्तु जातस्य शैलशिखराशनि-कुड्यपातैर्मरणं भवति ॥१०॥

भा०—रवि और मङ्गल सप्तम भाव में, शनि अष्टम भाव में, और क्षीण चन्द्रमा चतुर्थ भाव में हो तो पक्षी के द्वारा जातक का मरण होता है। यदि रवि, मङ्गल, शनि, चन्द्र ये क्रम से लग्न ५, ८, ९ इन भाव में हों तो पर्वत शिखर पर से गिरकर, वज्रपात से अथवा भित्ति कोठे के छत आदि पर से गिरने से मरण होता है ॥१०॥

जिसके जन्म समय में पूर्वोक्त योग नहीं हो उसके मरण का हेतु—

द्वाविंशः कथितस्तु कारणं द्रेष्काणो निधनस्य सूरिभिः ।
तस्याधिपतिर्भपोऽपि वा निर्याणं स्वगुणैः प्रयच्छति ॥११॥

सं०—यस्य जातस्याष्टमस्थानं केनचिदपि ग्रहेण न दृष्टं न वा युतं तस्य निधनस्य मरणस्य कारणं हेतुः—सूरिभिर्द्वाविंशो द्रेष्काणः (जन्मलग्ने यो द्रेष्काणो वर्तमानस्तस्माद्यो द्वाविंशो द्रेष्काणोऽर्थादेवाष्टमभावगतो द्रेष्काणः सः) कथितः । तस्य द्रेष्काणस्याधिपतिर्वा तस्य भपः (यस्मिन्राशौ द्वाविंशो द्रेष्काणस्तस्य भस्य पतिर्वा) स्वगुणैः ("अनलाम्बायुधज" इत्यादिना कथितैः) निर्याणं निधनं प्रयच्छति ॥११॥

भा०—जिसके जन्म लग्न से अष्टम भाव पर ग्रह की दृष्टि या योग के अभाव हो उसके लग्न में जो द्रेष्काण वर्तमान हो उससे २२ वाँ द्रेष्काण मरण का हेतु होता है, ऐसा पण्डितों ने कहा है। २२ वाँ द्रेष्काण का स्वामी अथवा अष्टम भाव में जो राशि हो उसका स्वामी अपने पूर्वकथित (अग्नि, जल, आयुध इत्यादि प्रथम श्लोकोक्त) गुणों से जातक के मरण का हेतु होता है ॥ ११ ॥

वि०—लग्न और अष्टम भाव के बीच में ७ राशि रहते हैं तथा एक एक राशि में ३ द्रेष्काण होते हैं, इसलिये लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण होगा तो २२ वाँ द्रेष्काण अष्टम भाव का प्रथम द्रेष्काण होगा, यदि लग्न के

द्वितीय द्रेष्काण हो तो अष्टम का द्वितीय, लग्न में तृतीय द्रेष्काण हो तो अष्टम का तृतीय द्रेष्काण २२ वाँ द्रेष्काण होता है ॥११॥

मरण स्थान और मरण समय में मोह का समय—

होरानवांशकपयुक्तसमानभूमौ
योगेक्षणादिभिरतः परिकल्प्यमेतत् ।
मोहस्तु मृत्युसमयेऽनुदितांशतुल्यः
स्वेशेक्षिते द्विगुणतस्त्रिगुणः शुभैश्च ॥१२॥

सं०—होरानवांशकपयुक्तसमानभूमौ मरणं वक्तव्यम् । अतः परं योगेक्षणादिभिः (होरानवांशकपतिर्येन ग्रहेण युक्तो येन दृष्टो वा भवति, तथादिशब्देन सोऽपि ग्रहो यस्मिन् नवांशे स्थितस्तस्यापि वा योग्या भूमिरित्यादिभिः) एतत् (मरणस्थानं) परिकल्प्यम् । लग्नस्यानुदितांशतुल्यः (अनुदितांशानां भोग्यभागानां यः कालस्तत्तुल्यो) मृत्युसमये मोहो वक्तव्यः, लग्ने स्वेशेक्षिते (स्वस्वामिना दृष्टे सति) स कालो द्विगुणितो वक्तव्यः । शुभैश्चेक्षिते त्रिगुणः कालो वक्तव्यः, अर्थादेव—स्वेशेन शुभैश्चेत्युभयवीक्षिते लग्ने षड्गुणः कालो वक्तव्यः ॥१२॥

भा०—लग्न में जो नवांश हो उसका स्वामी जिस राशि में हो उस राशि के समान भूमि ('स्वचराश्च सर्वे' इत्यादि में कथित स्थान) में मरण कहना चाहिये । तथा नवांशपति को जिस ग्रह से योग हो या जो ग्रह देखता हो उस ग्रह के समान भूमि ('देवाम्ब्वग्नि' इत्यादि कथित ग्रह स्थान) में मरण स्थान की कल्पना (विचार) करे । जन्मकाल में लग्न के जितने भोग्यांश हों उसके काल के तुल्यकाल पर्यन्त मरण समय में मोह कहना चाहिये । यदि लग्न अपने स्वामी से दृष्ट हो तो उस काल के द्विगुणित काल तुल्य, तथा शुभग्रह से दृष्ट हो तो भोग्यांश काल के त्रिगुण तुल्य काल मोह कहना । यदि शुभग्रह और स्वामी दोनों लग्न को देखते हों तो षड्गुण काल समझे, यह अर्थात् सिद्ध होता है ॥ १२ ॥

वि०—भाव यह है कि—लग्न नवांशपति जिस ग्रह के साथ हो उस ग्रह की जो भूमि कही गयी है उस भूमि में मरण कहना। यदि बहुत ग्रह का योग हो तो उनमें जो बली हो उसकी भूमि सदृश भूमि में। यदि ग्रह-योग नहीं हो तो उस पर जिसकी दृष्टि हो, बहुत ग्रहों की दृष्टि हो तो उनमें बली ग्रह जो हो उसकी भूमि के सदृश स्थान में, यदि किसी ग्रह की योग या दृष्टि नहीं हो तब नवांशपति जिस राशि में हो उसके समान भूमि में मरण विचार कर कहना चाहिये।

काल का ज्ञान इस प्रकार है कि ३० अंश में लग्न राशि के उदयकाल तो लग्न के भोग्यांश में क्या ? इस प्रकार भोग्यांश को उदयमान से गुना कर ३० के भाग देकर लब्धि तुल्य काल समझना ॥ १२ ॥

मृतशरीरपरिणाम—

दहनजलविमिश्रैर्भस्मसंक्लेदशोषै-
र्निधनभवनसंस्थैर्व्यालवर्गैर्विडम्बः ।
इति शवपरिणामश्चिन्तनीयो यथोक्तः
पृथुविरचितशास्त्राद् गत्यनूकादि चिन्त्यम् ॥ १३ ॥

सं०—निधनभवनसंस्थैः (अष्टमभावगतैः) दहन-जल-विमिश्रैः (पाप-शुभ-मिश्रद्रेष्काणैः) क्रमेण भस्म-संक्लेदशोषैः शवपरिणामः (मृत-शरीरस्य विकारो) ज्ञेयः। अर्थात् पापद्रेष्काणश्चेत् तदा दह्यते, शुभद्रेष्काणश्चेत् तदा संक्लिद्यते जले क्षिप्यते, मिश्रद्रेष्काणः (पापद्रेष्काणः शुभयुतो वा शुभ-द्रेष्काणः पापयुत इति) चेत् तदा शुष्यते (नाग्निना दह्यते, न च जले क्षिप्यते)। तथाष्टमभावगतैर्व्यालवर्गैः सर्पद्रेष्काणैर्विडम्बो भवति (मृत-शरीरं श्वसृगालादिभिर्भुज्यते)। इत्येवं यथोक्तः शवपरिणामश्चिन्तनीयः। पृथुविरचितशास्त्रात् (विस्तीर्णशास्त्रात्—अथवा पृथुना यवनेश्वरेण रचित-ग्रन्थात्) गत्यनूकादि (गतिः परलोकगमनं, अनूको गतजन्मेत्यादिकं) चिन्त्यम् (विचार्यम्) ॥ १३ ॥

भा०—अष्टमभाव में अग्नि (पापग्रह का) द्रेष्काण हो तो मृतक का शरीर अग्नि में जलाया जाता है। यदि जल (सौम्य) द्रेष्काण हो तो जल में फेंका जाता है। यदि मिश्र द्रेष्काण (शुभग्रह का द्रेष्काण-पापयुत, या पापग्रह का द्रेष्काण शुभ युत) हो तो मृत शरीर की विडम्बना (कुत्ते-कौवे आदि के द्वारा खाये जाने पर दुर्गति) होती है। इस प्रकार मृत शरीर का परिणाम विचार कर समझना चाहिये। तथा मरने के बाद की गति और पूर्व जन्म के वृत्तान्त आदि पृथुरचित शास्त्र से समझना चाहिये।

वि०—'पृथुरचित का अभिप्राय है, कि यहाँ मैं संक्षेप में कहा हूँ। और विशेष विचार करना हो तो पूर्व रचित बृहद्ग्रन्थों को देखना। तथा—'पृथुयशा' नामक वराहमिहिर के पुत्र थे उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों से भी विचार करना। यह भी सूचित किया गया है नामैकदेश से नाम का ग्रहण होता है ॥ १३ ॥

उसी अनूक (पूर्वजन्म स्थिति) को कहते हैं—

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः।
दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितत्र्यंशनाथाः
प्रवरसमनिकृष्टास्तुङ्गह्रासादनूके ॥ १४ ॥

सं०—गुरुः, उडुपतिशुक्रौ, सूर्यभौमौ, यमज्ञौ, एते प्रतिपदोक्ताः क्रमेण दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितत्र्यंशनाथाः (रविचन्द्रयोर्यो वीर्यवान् तदाश्रितद्रेष्काणस्वामिनः सन्तः) विबुध-पितृ-तिरश्चः नारकीयांश्च जातान् कुर्युः, उक्तद्रेष्काणपतिर्गुरुश्चेत् तदा विबुधान् (देवलोकादागतान्), चन्द्रशुक्रयोरन्यतरश्चेत् तदा पितॄन् (चन्द्रलोकादागतान्), सूर्यभौमयोरन्यतरश्चेत् तदा तिरश्चः (तिर्यग्लोकात् मर्त्यलोकादागतान्), यमज्ञयोरन्यतरो द्रेष्काणपतिश्चेत् तदा नारकीयान् (नरकादागतान्) जातान् करोतीत्यर्थः।

तत्राप्यनूके (पूर्वजन्मनि)—तुङ्गह्रासात् (द्रेष्काणपतेरुच्चनीचस्थिति-वशात्) क्रमेण प्रवरसमनिकृष्टा ज्ञेयाः ॥ १४ ॥

भा०—रवि और चन्द्रमा में जो अधिक बली हो वह जिस द्रेष्काण में हो उस द्रेष्काण का स्वामी गुरु हो तो देवलोक से जातक आया है ऐसा समझना। यदि चन्द्रमा या शुक्र द्रेष्काण पति हो तो पितृलोक से, यदि रवि या मङ्गल द्रेष्काण पति हो तो तिर्यग् (मर्त्य) लोक से, यदि शनि या बुध द्रेष्काण पति हो तो नरक से आया है, ऐसा समझना। पूर्व जन्म में भी जातक किस प्रकार का था उसका ज्ञान कहते हैं कि उक्त द्रेष्काणपति अपने उच्च के समीप हो तो पूर्व जन्म में देवादिलोक में भी श्रेष्ठ था, उच्च नीच के मध्य में हो तो देवादिलोक में भी मध्यम श्रेणी का था, तथा नीच के समीप में हो तो देवादिलोक में अधम श्रेणी का था ऐसा समझना ॥१४॥

मरणानन्तर गतिस्थानज्ञान—

गतिरपि रिपुरन्ध्रत्र्यंशपोऽस्तस्थितो वा
गुरुरथ रिपुकेन्द्रच्छिद्रगः स्वोच्चसंस्थः।
उदयति भवनेऽन्त्ये सौम्यभागे च मोक्षो
भवति यदि बलेन प्रोज्झितास्तत्र शेषाः ॥१५॥

इति श्रीवराहमिहिरविरचिते बृहज्जातके नैर्याणिका-
ऽध्यायः पञ्चविंशतितमः ॥ २५ ॥

सं०—रिपुरन्ध्रस्थितोऽस्तस्थितो वा ग्रहो गतिर्भवति। षष्ठाष्टमसप्तमस्थानेषु यो ग्रहो बलवान् भवति तस्य यो लोकस्तत्र मरणानन्तरं जातकस्य गमनं भवतीत्यर्थः। यदि षष्ठाष्टमसप्तमेषु ग्रहाभावस्तदा रिपुरन्ध्रत्र्यंशपः (षष्ठाष्टम-भावगतद्रेष्काणाधिपयोर्मध्ये यो बलवान् सोऽपि) गतिर्भवति तस्य यो लोकस्तत्र गमनं भवति। अथ स्वोच्चसंस्थः (कर्कगतः गुरुर्यदि रिपुकेन्द्रच्छिद्र-

द्रगः, (अथवा अन्त्ये भवने मीने) सौम्यभागे शुभनवांशे उदयति तत्र यदि शेषाः सर्वे ग्रहा बलेन प्रोज्झितास्तदा जातस्य मोक्षो भवति ॥१५॥

भा०—जन्म लग्न से ६।८।७ स्थान में जो ग्रह बलवान् हो उसका जो लोक (पूर्वश्लोक कथित) है उस लोक में मरने के बाद जाता है। यदि ६।७।८ इन स्थानों में ग्रह नहीं हो तो षष्ठ और अष्टम भाव गत द्रेष्काण के स्वामियों में जो बली हो उसका भी लोक कहा गया है उस लोक में जाता है। अब मोक्ष योग कहते हैं - कर्क स्थित बृहस्पति यदि लग्न से ६।१।४।७।१०।८ इनमें किसी स्थान में हो अथवा मीन लग्न में शुभ ग्रह का नवांश हो इन दोनों योग में अन्य ग्रह सब निर्बल हो तो उस जातक को मोक्ष लाभ होता है ॥१५॥

वि०—यहाँ 'अस्तस्थितो वा' इस प्रकार विकल्प शब्द से ६।८ स्थान स्थित ग्रह का भी बोध होता है। यथा लघुजातक में स्वयं आचार्य का वचन है—

"रिपुरन्ध्रत्र्यंशकपा नयन्ति चास्तारिनिधनस्थाः।" स्पष्टार्थं।

तथा–जिस प्रकार जन्मलग्न से गति का ज्ञान कहा गया है, उसी प्रकार मरण कालिक लग्न से भी समझना चाहिये। यथा लघुजातक में—

"षष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुर्भवति मीनलग्ने वा।
शेषैरबलैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः ॥" स्पष्टार्थः॥१५॥

इति तत्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके नैर्याणिकाध्यायः ॥२५॥

जिसका जन्म समय ज्ञात हो उसके लिये जन्म लग्न के अनुसार पूर्वोक्त फल कहे गये हैं। जिसका जन्म समय ज्ञात नहीं हो, उसका यदि गर्भा-धान समय मालूम हो तो उस पर से—"तत्काल इन्दुसहितो द्विरसांशको यः॥" इत्यादि विधिसे जन्मकाल का ज्ञान कहा गया है। किन्तु जिसका जन्मकाल और आधान काल दोनों अज्ञात हो उसके फल किस प्रकार कहे जायँगे ? इस उद्देश्य से अब 'नष्टजातकाध्याय" कहते हैं—

अथ नष्टजातकाध्यायः ॥२६॥

प्रश्न लग्न से अज्ञात जन्म-अयनज्ञान—

आधानजन्मापरिबोधकाले सम्पृच्छतो जन्म वदेद्विलग्नात्।
पूर्वापरार्द्धे भवनस्य विन्द्याद्भानावुदग्दक्षिणगे प्रसूतिम् ॥१॥

सं०—आधानजन्मापरिबोधकाले सति सम्पृच्छतः प्रष्टुर्विलग्नात् जन्म प्रवदेत् (अज्ञातजन्मसंवत्सरायनर्तुमासतिथीष्टसमयादिकं कथयेत्) यथा भवनस्य प्रश्नलग्नस्य पूर्वापरार्धे 'क्रमेण' उदग्दक्षिणगे भानौ प्रसूतिं विन्द्यात्। प्रश्नलग्ने राशिपूर्वार्धे चेत् तदा सौम्यायने, उत्तरार्धे चेत् तदा याम्यायने जन्म जानीयात् ॥ १ ॥

भा०—जिसका गर्भाधान या जन्म समय ज्ञात नहीं हो ऐसे मनुष्य के प्रश्नलग्न से जन्मसमय समझना चाहिये। जैसे प्रश्न लग्न राशि के १५ अंश के भीतर (याने प्रथम होरा में) हो तो उत्तरायण (मकर से ६ राशि के सूर्य) में, यदि लग्न १५ अंश से ऊपर (याने द्वितीय होरा में) हो तो दक्षिणायन (कर्क से ६ राशिस्थ सूर्य) में जन्म समझना ॥ १ ॥

उदाहरण - मानों काशी में संवत् २००१ वैशाखमास शुक्ल पक्ष ७ तिथि शनिवार सूर्योदय से ११।१० इष्ट घटीपल पर किसी ने अपने अज्ञात जन्म समय होने के कारण नष्ट जन्माङ्कपत्र बनाने के लिये प्रश्न किया तो

एवं ऋतु सर्वदा सौरमान से ही ग्रहण करना चाहिये। जैसे वसन्तऋतु हो तो—मीन और मेष राशिस्थित सूर्य समझना। चान्द्रमान से चैत्र, वैशाख नहीं।

तथा—लग्न में ग्रह हो तो जो बली हो उस ग्रह की ऋतु, यदि ग्रह नहीं हो तो जिस ग्रह का द्रेष्काण लग्न में हो उस की ऋतु, समझनी चाहिये॥

उत्तर अयन में शिशिर, वसन्त, और ग्रीष्म ऋतु होती है। दक्षिण अयन में वर्षा, शरद् और हेमन्त ये तीन ऋतु होती है। इसे ध्यान में रखना चाहिये।

उदा०—प्रश्नकालिक मिथुन लग्न में तृतीय द्रेष्काण है इस लिये मिथुन से नवम कुम्भ राशि में जन्मकालिक गुरु हुआ। अतः कुम्भ से वर्तमान गुरु राशि कर्क तक ६ संख्या हुई, इसलिये वर्तमाम संवत्सर से ६ वर्ष, १८ वर्ष, ३० वर्ष, ४२ वर्ष पूर्व गुरु की स्थिति कुम्भ में हो सकती है। अब प्रश्नकर्ता की आकृति के अनुमान से १५ और २१ के बीच वयस है तो उस के समीप की १८ संख्या को वर्तमान सं० २००१ में घटाने से जन्म संवत् १९८३ हुआ। अब ऋतु ज्ञान के लिये लग्न में शनि और मङ्गल दो ग्रह हैं इन में शनि बली है इसलिये शिशिर ऋतु हुई। परन्तु प्रथम दक्षिण अयन सिद्ध हुआ है, और ऋतु उत्तर अयन की होने के कारण अगले श्लोक के अनुसार शनि के स्थान में गुरु की ऋतु हेमन्त जन्म की ऋतु हुई।

विशेष ध्येय–अनुमान सिद्ध प्रश्नकर्ता की वयस वर्ष संख्या को प्रश्नसंवत्सर में घटाने से जो जन्मसंवत्सर हो उसमें यदि ठीक गुरु पूर्वसिद्ध जन्म-राशि का हो तो वही जन्म संवत्सर होता है। कदाचित् १ वर्ष के अन्तर हो जाता है इसलिये उस संवत्सर के पञ्चाङ्ग और उसके १ वर्ष आगे या पीछे के पञ्चाङ्ग देखना जिसमें सिद्ध जन्मराशि का गुरु मिले वही जन्म संवत् जानना।

जैसे इस उदाहरण में अनुमितवयस १८ को प्रश्न संवत् में घटाने से

जन्म संवत् १९८१ हुआ। और उस संवत् के पञ्चाङ्ग में सिद्ध जन्मराशि कुम्भ का गुरु भी है, इसलिये वही जन्म संवत्सर हुआ ॥ २ ॥

अयनऋतु की भिन्नता में परिवर्तन और सौरमास से सूर्यांश का ज्ञान—

चन्द्रज्ञजीवाः परिवर्त्तनीयाः शुक्रारमन्दैरयने विलोमे ।
द्रेष्काणभागे प्रथमे तु पूर्वो मासोऽनुपाताच्च तिथिर्विकल्प्यः ॥

सं०—अयने विलोमे ऋतुतो भिन्ने सति, चन्द्रज्ञजीवाः शुक्रारमन्दैः परिवर्तनीयाः (चन्द्रस्थाने शुक्रः, बुधस्थाने कुजः, गुरुस्थाने शनिर्ग्राह्यः) इत्येवं शुक्रारमन्दाः—क्रमेण चन्द्रज्ञजीवैः परिवर्तनीया इत्यर्थादेव सिद्ध्यति। तथा लग्नगते प्रथमे द्रेष्काणभागे ऋतोः पूर्वो मासः, द्वितीये द्वितीयो मासस्तत्र च तिथिः (सूर्यांशादिः) अनुपातात् विकल्प्यः ॥ ३ ॥

भा०—यदि अयन और ऋतु में भिन्नता हो तो चन्द्रमा को शुक्र से, बुध को मङ्गल से और गुरु को शनि से परस्पर परिवर्तन करके ऋतु समझे। इस प्रकार अयन और ऋतु में एकता होती है। मास ज्ञान के लिये—लग्नगत द्रेष्काण के पूर्वार्ध (५ अंश के भीतर) हो तो ऋतु का पहिला सौर मास, यदि द्रेष्काण के उत्तरार्ध हो तो दूसरा मास समझना। उसमें द्रेष्काण के भुक्त अंशों से अनुपात द्वारा तिथि (सूर्य के भुक्तांश) समझना चाहिये ॥ ३ ॥

वि०—अनुपात इस प्रकार है कि ५ अंश की कला (३००) में ३० तिथि तो द्रेष्काण के पूर्वार्ध वा परार्ध के भुक्त कला में क्या ? $\frac{३० \times भु.कला}{३००}$

$= \frac{भुक्तकला}{१०}$ । अथवा $\frac{३० \times भुक्तअंशादि}{५} = ६ \times भुअंशादि$ । इससे सिद्ध होता है कि द्रेष्काण भुक्तकलादि को १० से भाग देकर लब्धि सूर्य के भुक्तांशादि अथवा द्रेष्काणार्धभुक्तांशादि को ही ६ से गुनाकर देने से सूर्य के भुक्तांशादि होते हैं ॥ ३ ॥

उदा०—पूर्व लग्न के उत्तरार्ध होने से दक्षिण अयन, और लग्न में शनि के होने के कारण शिशिर ऋतु (उत्तर अयन) की हुई, इसलिये शनि के स्थान में गुरु की ऋतु हेमन्त लेने से अयन और ऋतु में एकता हुई। अब हेमन्त ऋतु में वृश्चिक और धनु दो सौर मास होते हैं, उनमें कौन मास है ? यह जानने के लिये लग्न १।२३।१५।१७ के तृतीय द्रेष्काण के भुक्तांश ३।१५।१७ पूर्वार्ध (५ अंश के भीतर है) अतः प्रथम सौर मास (वृश्चिकार्क) हुआ। उसमें अनुपात से अथवा भुक्तांश ३।१५।५७ को ६ से गुना करके सौर तिथि (सूर्य के भुक्तवृश्चिकांशादि) १९।३५। ४२ अतः जन्मकालिक स्पष्टसूर्य ७।१९।३५।४२ राश्यादि हुआ। इस पर से इष्टकाल साधन कर जन्मेष्टकाल समझना। फिर उस समय स्पष्ट ग्रह लग्नादि भाव साधन द्वारा जो जन्म पत्र होगा वही "नष्टजन्मपत्र" समझना। और उस पर से ही अज्ञात जन्म जातक (प्रश्नकर्ता) को फलादेश वास्तव जन्मपत्रवत् कहना चाहिये।

यहाँ कितने लोग यह समझते हैं कि—"प्रश्न पर से वास्तव ही जन्म समय आ जाता है।" परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। जन्मकालिक जो विषय अज्ञात हो, केवल उसी के लिए प्रश्न करने का आदेश है। वह अनेक प्रकार से अनेक प्रकार के सिद्ध होते हैं। जो आचार्य स्वयं भी कहते हैं।

प्रसङ्गवश-सूर्य जानकर इष्टकाल जानने का प्रकार—

"इष्टार्कस्य तदासन्नपङ्क्त्यर्केण सहान्तरम्।
कलीकृत्याऽर्कगत्याप्तदिनाद्येन युतोनितम्॥
तत्पंक्तिस्थं च वाराद्यमिष्टार्केऽधिकहीनके।
दिनाद्य इष्टकालोऽसौ ज्ञेयो ज्ञातार्कतो बुधैः॥"

अभीष्ट सूर्य के आसन्न जिस पंक्ति का सूर्य हो उस पंक्ति के सूर्य और अपने इष्ट सूर्य के अन्तर करके उसकी कला बनाना—उसमें पंक्तिस्थ सूर्य की गति कला से भाग देकर लब्धि दिनादि (दिन, घटी, पल) को पंक्ति

दिनादि में जोड़ने या घटाने से इष्टकाल होता है। यदि पंक्ति के सूर्य से इष्ट सूर्य अधिक हो तो पंक्ति में लब्धि को जोड़ना, अन्यथा घटाना चाहिये।

जैसे सं० १९८३ जन्मकालिक सूर्य ७ । १९ । ३५ । ४२ इसके आसन्न मार्ग कृष्ण अमावस्या रविवार मिश्रमान काल घड़ी ४४ पल ३६ का सूर्य ७ । १९ । ५२ । ३९ इसमें इष्टसूर्य को घटाने से राश्यादि ० । ० । १६ । ५७ इसमें पंक्तिस्थ सूर्य की गति कला ६१ । ६ के एक जातीय बनाकर भाग देने से लब्धि दिनादि ० । १६ । ४० को 'इष्टसूर्य अल्प होने के कारण' पंक्ति के वारादि १।४४।३६ में घटाने से दिनादि १।२७।५६ यह जन्म का इष्टकाल हुआ। अर्थात् मार्ग कृष्ण अमावस्या रविवार सूर्योदय से इष्ट घटीपल २७।५६ जन्म समय हुआ। इस इष्ट पर से जन्मपत्र बनाने से नष्ट जन्माङ्ग पत्र कहलाता है ॥ ३ ॥

तिथि ज्ञान में मतान्तर, तथा प्रकारान्तर से इष्टकाल का ज्ञान—

अत्रापि होरापटवो द्विजेन्द्राः सूर्य्यांशतुल्यां तिथिमुद्दिशन्ति ।
रात्रिद्युसंज्ञेषु विलोमजन्म भागैश्च वेलाः क्रमशो विकल्प्याः ॥

सं०—अत्रापि (मासे ज्ञाते तिथिज्ञाने) होरापटवो द्विजेन्द्रा आचार्याः सूर्यांशतुल्यां तिथिमुद्दिशन्ति । प्रश्नकाले सूर्यस्य यावन्तोंऽशा भुक्तास्तावत्यो गततिथ्यः, याश्च कलाविकलास्तत्तुल्यानि वर्तमानतिथेर्घटीपलानीति कथयन्ति । अथ प्रकारान्तरेण जन्मेष्टकालं कथयति-रात्रिद्युसंज्ञेषु लग्नेषु विलोमजन्म वाच्यम् (दिवाबली राशिः प्रश्नलग्नं चेत् तदा रात्रौ, रात्रिबलीराशिर्लग्नं चेत्तदा दिवा जन्म वक्तव्यमिति) । भागैः (लग्नगतांशैश्च) क्रमशो वेला विकल्प्या अनुपातेन ज्ञातव्याः ॥ ४ ॥

भा०—पूर्व प्रकार से मास के ज्ञान होने पर कितने होराशास्त्रज्ञ आचार्य प्रश्नकालि सूर्य के अंशतुल्य चन्द्र तिथि कहते हैं। अर्थात् सूर्य के भुक्तांश तुल्य गततिथि और कला विकला तुल्य वर्तमान तिथि की गत घटी पल मानते हैं। अब प्रकारान्तर से इष्टकाल का ज्ञान प्रकार कहते हैं कि—प्रश्न लग्न दिन बली राशि हो तो रात्रि में, और रात्रि बली राशि हो

तो दिन में जन्म समझना। तथा लग्न के भुक्तांश के द्वारा अनुपात से दिनगत या रात्रिगत इष्ट काल का ज्ञान कर लेना चाहिये ॥ ४ ॥

उदाहरण—जैसे हेमन्त ऋतु के प्रथम मास (मार्गशीर्ष) का ज्ञान हुआ तो, प्रश्नकालिक सूर्य के भुक्तांशादि १५।४३।२८ एतत् तुल्य तिथि अर्थात् मार्गशीर्ष १५ पूर्णिमा व्यतीत होकर पौष कृष्ण प्रतिपदा के ४३।२८ घड़ी पल बीतने पर जन्म हुआ। फिर पञ्चाङ्ग देख कर तिथि भोग के अनुसार इष्टकाल का ज्ञान कर लेना चाहिये ॥

प्रकारान्तर से इष्टकाल का उदाहरण—प्रश्नलग्न मिथुन दिन बली है; इस लिये रात्रि में जन्म निश्चित हुआ। अतः प्रश्नकालिक रात्रिमान २७।४० को लग्न के भुक्तांश २३ सम्बन्धी काशी के उदय मान से भुक्त पल २३३ इस के द्वारा अनुपात किया कि—मिथुन के उदयमान ३०४ में रात्रिमान २७।४० तो लग्न के भुक्तपल में क्या ? अर्थात् रात्रिमान को भुक्तपल से गुना कर ६४४६।२० में उदयमान ३०४ के भाग देने से लब्धि रात्रिगत घटीपल = २१।१२ इस में दिनमान ३२।२० जोड़ने से सूर्योदय से इष्टकाल ५३।३२ हुआ ॥ ४ ॥

वि०—राशि का उदयमान जहां प्रश्न हो वहाँ का ग्रहण करना चाहिये ॥ ४ ॥

प्रकारान्तर से केवल चान्द्रमासज्ञान और राशिज्ञान—

केचिच्छशाङ्काध्युषिताभवांशाच्छुक्लान्तसंज्ञं कथयन्ति मासम् ।
लग्नत्रिकोणोत्तमवीर्ययुक्तं भं प्रोच्यतेऽङ्गालभनादिभिर्वा ॥

सं०—केचिदाचार्याः—शशाङ्काऽध्युषिताभवांशात् (नक्षत्रचरणात्) शुक्लान्तसंज्ञं (शुक्लान्तं पूर्णिमा चैत्री, वैशाखीत्यादिनाम्नी, तदाख्यं) मासं कथयन्ति। प्रश्नकाले यस्मिन्नक्षत्रे तात्कालिकश्चन्द्रस्तत्पादसम्बन्धी शुक्लान्त-चान्द्रमासो जन्ममासो ज्ञेय इत्यर्थः। तथा लग्नत्रिकोणोत्तमवीर्ययुक्तं (लग्न-त्रिकोणेषु मेषु यत्सबलं तत्) भं (जन्मराशिः) प्रोच्यते। अथवा अङ्गाल-

मनादिभिर्मे प्रोच्यते । प्रष्टा यदङ्गं स्पृशन् पृच्छति तस्मिन् कालपुरुषाङ्गे यो. राशिः स एव प्रष्टुर्जन्मराशिरित्यर्थः ॥ ५ ॥

भा०—कितने आचार्य का मत है कि-प्रश्नकाल में चन्द्रमा जिस नवांश (नक्षत्र चरण) में हो उस नाम से प्रसिद्ध 'शुक्लान्त्य चान्द्रमास' जन्ममास समझना । तथा लग्न, पञ्चम, नवम इन तीनों में जो अधिक बली हो वह जन्मराशि होती है । अथवा प्रष्टा अपने जिस अङ्ग को स्पर्श करके प्रश्न करै उस अङ्ग में "कालाङ्गानि" इत्यादि प्रकार से जो राशि वही राशि जन्मराशि होती है ॥ ५ ॥

नक्षत्र से मास की संज्ञा जानने का प्रकार सूर्यसिद्धान्तादि में देखिये । यथा—

"नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः ।
कार्तिक्यादिषु संयोगे कृत्तिकादिद्वयं द्वयम् ॥
अन्त्योपान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम् ॥"

स्पष्टार्थ चक्र—

का.	मार्ग	पौ.	मा.	फा.	चै.	वै.	ज्ये.	आ.	श्रा.	भा.	आ.	मास
कृ. रो.	मृ. आ.	पु. पु.	श्ले. म.	पू.फा. उ. ह.	चि. स्वा.	वि. अनु.	ज्ये. मू.	पू. उ.षा.	श्र. ध.	श. पू. उ.	रे. अ. भ.	नक्षत्र

इसका उदाहरण—प्रश्नकाल में चन्द्रमा पुनर्वसु के चतुर्थ चरण में है इस लिये शुक्लान्त्य पौष मास जन्म मास हुआ । चान्द्रमास २ प्रकार के माने जाते हैं एक कृष्णान्त्य, दूसरा शुक्लान्त्य अर्थात् कृष्ण प्रतिपदादि से शुक्ल पूर्णिमान्त पर्यन्त । यहाँ इस प्रकार में शुक्लान्त्य मास ग्रहण करके तिथि का ज्ञान करना चाहिये ।

दूसरा—और तीसरा उदाहरण स्पष्ट ही है ॥ ५ ॥

प्रकारान्तर से राशिज्ञान—

यावान् गतः शीतकरो विलग्नाच्चन्द्राद्वदेत्तावति जन्मराशिः ।

मीनोदये मीनयुगं प्रदिष्टं भक्ष्याहृताकाररुतैश्च चिन्त्यम् ॥६॥

सं०—विलग्नात् प्रश्नलग्नात्-शीतकरश्चन्द्रो यावान् गतो यावत्संख्य-राशौ गतः, चन्द्रात् तावति (तावत्संख्यस्थाने) यो राशिः स जन्मराशि-रिति वदेत् । परञ्च मीनोदये (मीने प्रश्नलग्ने) मीनयुगम् (मीनराशिरेव जन्मभं) प्रदिष्टम् । अथवा प्रश्नसमये-भक्ष्याहृताकाररुतैश्च जन्मभं चिन्त्यं (विशेयम्) । प्रश्नकाले यस्य राशेर्भक्ष्यं केनचिदानीतं, यद्राश्याकारो जन्तु-स्तत्रागच्छेत्, यद्राशिशब्दो वा 'तत्र' श्रुतिगोचरो भवेत् तदेव जन्मभं ज्ञेय-मित्यर्थः ॥ ६ ॥

भा०—प्रश्नलग्न से जितने संख्य स्थान में चन्द्रमा हो, उससे उतने ही स्थान आगे जो राशि हो वही प्रष्टा की जन्मराशि समझे । परञ्च यदि मीन प्रश्नलग्न हो तो मीन ही जन्मराशि समझना । अथवा प्रश्नकाल में जिस राशि के भक्ष्य जिस राशि सदृश आकार का प्राणी, जिस राशि सदृश शब्द अचानक देखने या सुनने में आवे वहीं जन्मराशि समझे ॥६॥

वि०—इसका आशय यह है कि अनेक प्रकार से राशि ज्ञान कहा गया है, वहाँ कौन प्रकार से राशि ग्रहण करना चाहिये ? यथा—एक प्रकार से वृष आया और दूसरे प्रकार से मिथुन तो यहाँ कौन सा ग्रहण करे ? इस विकल्प में उस स्थान पर यदि अचानक कोई घास (बैल का खाद्य) लावे या गाय अथवा बैल आजाए, या उसका शब्द सुनने में आवे तो वृष राशि ही समझे । यदि मनुष्य का भक्ष्य या दूसरा मनुष्य या उसका शब्द सुनने में आवे तो मिथुन (द्विपद) राशि समझना चाहिये ॥

उदाहरण—जन्म लग्न से द्वितीय स्थान (कर्क) में चन्द्रमा है अतः उस (कर्क) से द्वितीय सिंह, जन्म राशि हुई ॥ ६ ॥

वास्तवरीति तो यह है कि—स्पष्ट राश्यादि चन्द्रमा में स्पष्ट लग्न-राश्यादि घटा कर शेष को स्पष्ट चन्द्रमा में जोड़ने से अर्थात् द्विगुणित स्पष्ट चन्द्रमा में स्पष्ट लग्न को घटाने से जो शेष बचे वह जन्मकालिक राश्यादि

स्पष्ट चन्द्रमा होता है। चन्द्रमा जिस राशि में रहता है वही जन्म राशि कहलाता है।

जैसे—स्पष्ट चन्द्रमा ३।३।०।२६ दूना करने से ६।६।०।५२ इस में लग्न २।२३।१५।५७ को घटाने से ३।१२।४४।५५ यह जन्मराशि अर्थात् जन्मकालिक स्पष्ट चन्द्रमा हुआ। इस लिए वास्तव जन्मराशि कर्क ही हुई। क्योंकि मूलपद्य के अनुसार लग्न से चन्द्रमा के अन्तर को चन्द्रमा में जोड़ने से ही स्पष्टमान हो सकता है ॥ ६ ॥

प्रश्नलग्न से जन्मलग्नज्ञान प्रकार—

होरानवांशप्रतिमं विलग्नं लग्नाद्रविर्यावति वा दृकाणे।
तस्माद्वदेत्तावति वा विलग्नं प्रष्टुः प्रसूताविति शास्त्रमाह ॥७॥

सं०—होरानवांशप्रतिमं (प्रश्नलग्ननवांशसमं) विलग्नं जन्मलग्नं वदेत्। अथवा लग्नात्—यावति द्रेष्काणे रविस्तिष्ठति तस्मात् (रवेः) तावति तावत्संख्यद्रेष्काणे प्रष्टुः प्रसूतौ विलग्नं वदेदिति शास्त्रमाह ॥ ७ ॥

भा०—प्रश्नलग्न में जिस राशि का नवांश हो वही जन्मलग्न समझना। अथवा लग्न से जितने द्रेष्काण आगे रवि हो उतने ही रवि से आगे जो राशि हो वही प्रश्नकर्त्ता का जन्मलग्न समझना, यह शास्त्र का आदेश है।

इसकी स्पष्ट रीति यह है कि लग्न से रवि तक की द्रेष्काण संख्या को स्पष्ट रवि में जोड़कर १२ से अधिक हो तो उसमें १२ के भाग देकर जो शेष बचे वही जन्मलग्न समझना ॥ ७ ॥

उदाहरण—(१) जैसे लग्न (२।२३।१५।५७) में मेष का नवांश है तो मेष ही जन्मलग्न हुआ। दूसरा प्रकार लग्न से रवि तक की द्रेष्काण संख्या जानने के लिये रवि ०।१५।४३।२८ में लग्न (२।२३।१५। ५७) को घटाने से ९।२२।२७।३१ इसके अंश बनाकर २९२।२६।३१ इसमें १० के भाग देने से गत २९ वर्तमान ३० वाँ द्रेष्काण हुआ इसलिये रवि में ३० जोड़कर ३०।१५।४३।२८ इसमें १२ के भाग देकर शेष राश्यादि ६।१५।४३।२८ यह जन्म लग्न हुआ ॥ ७ ॥

पुनः प्रकारान्तर से जन्म लग्नज्ञान—

जन्मादिशेल्लग्नगवीर्य्यगे वा छायाङ्गुलघ्नेऽर्कहृतेऽवशिष्टम् ।
आसीनसुप्तोत्थितिष्ठता भं जायासुखाज्ञोदयगं प्रदिष्टम् ॥८॥

सं०—अथवा लग्नगवीर्यगे ग्रहे छायाङ्गुलघ्ने (प्रश्नकालिकद्वादशाङ्गुल-शङ्कुच्छायया गुणिते) अर्कहृतेऽवशिष्टं जन्मलग्नं आदिशेत् कथयेत् । अथवा —आसीनसुप्तोत्थिततिष्ठता सता प्रश्नकर्त्रा-क्रमेण जायासुखाज्ञोदयगं भं जन्मलग्नं प्रदिष्टम् । अर्थात्-प्रष्टा-आसीनः पृच्छति तदा सप्तमभावगतराशिः, सुप्तः पृच्छति तदा चतुर्थभावगतराशिः, उत्थितः पृच्छति तदा दशमभावगो राशिः, तिष्ठन् पृच्छति तदा प्रश्नलग्नराशिरेव जन्मलग्नं ज्ञेयम् ॥ ८ ॥

भा०—प्रश्नलग्न में ग्रह हों तो उनमें जो बली हो उसको तात्कालिक द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छाया से गुनाकर गुणन फल में १२ के भाग देकर शेष जन्मलग्न कहना चाहिये । अथवा प्रश्नकर्ता यदि बैठकर प्रश्न करे तो लग्न से सप्तम राशि जन्मलग्न समझना, यदि पृथ्वी पर लेट कर प्रश्न करे तो प्रश्नलग्न से चतुर्थ राशि, यदि पहिले से बैठा हो और उठकर प्रश्न करे तो प्रश्नलग्न से १० वीं राशि, यदि खड़े खड़े आकर प्रश्न करे तो प्रश्नलग्न ही प्रष्टा का जन्म लग्न समझना ॥ ८ ॥

वि०—ग्रह को अङ्गुलादि छाया से गुना करने में इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि–राश्यादि ग्रह को कलात्मक बनाकर अङ्गुलादि छाया से गुना करके गुणन फल कलादि को फिर राश्यादि बनाकर १२ से तष्टित करे ॥ ८ ॥

उदाहरण—जैसे पूर्वोक्त प्रश्नलग्न में शनि और मङ्गल है इनमें शनि बली है इसलिये शनि (१।२६।१।४९) को कलात्मक बनाकर ३३६१'। ४९" इसको तात्कालिक अङ्गुलादि छाया (६।२०) से गुनाकर कलादि गुणनफल २१२९१।३०।२० इसको राश्यादि बनाने से ११।२४।५१।३० यह १२ से अल्प है अतः यही जन्मलग्न हुआ । दूसरा उदाहरण स्पष्ट ही है ॥

यहाँ इष्टकाल में द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छाया नाप लेना चाहिये । अथवा

इष्टकाल पर से "नवघ्नित्रिगुणितमिष्टमुन्नतं" इत्यादि ग्रहलाघव आदि करण ग्रन्थ द्वारा, अथवा मकरन्दसारिणी द्वारा अङ्गुलादि छाया का ज्ञान करना चाहिये ॥ ८ ॥

समस्तनष्टजातकविषय जानने का प्रकारान्तर—

गो-सिंहौ जितुमाष्टमौ क्रियतुले कन्यामृगौ च क्रमात्
संवर्ग्यौ दशकाष्टसप्तविषयैः शेषाः स्वसंख्यागुणाः ।
जीवारास्फुजिदैन्दवाः प्रथमवच्छेषा ग्रहाः सौम्यवद्
राशीनां नियतो विधिर्ग्रहयुतैः कार्या च तद्वर्गणा ॥ ९ ॥

सं०—प्रश्नलग्नगतौ-गोसिंहौ, जितुमाष्टमौ (मिथुन-वृश्चिकौ), क्रियतुले, कन्यामृगौ च क्रमात् दशकाऽष्ट-सप्तविषयैः संवर्ग्यौ (गुणनीयौ), शेषा राशयः (कर्किधनुःकुम्भमीना लग्नगतास्तदैते) स्वसंख्यागुणाः कार्याः । लग्ने ग्रहाश्चेत् तदा जीवारास्फुजिदैन्दवाः (गुरु-कुज-शुक्र-बुधाः) प्रथमवत् (क्रमेण दशकाष्टसप्तविषयैः) गुण्याः, शेषा ग्रहाः (शनिरविचन्द्राः) सौम्यवत् बुधवद् (विषयैः पञ्चभिः) संगुण्याः । राशीनां (लग्नगतराशीनां) अयं विधिर्नियतः (निश्चित एव) ग्रहयुतैश्च तद्वर्गणा (ग्रहगुणना) कार्या । लग्ने ग्रहाभावे तद्वर्गणाभाव एवेति ॥९॥

भा०—प्रश्न लग्न में वृष या सिंह हो तो राश्यादि लग्न की कला पिण्ड बनाकर १० से गुना करै । मिथुन या वृश्चिक लग्न हो तो ८से, मेष तुला हो तो ७ से और कन्या या मकर हो तो ५ से गुना करै । शेष राशि लग्न हो तो कलापिण्ड को अपनी-अपनी संख्या से अर्थात् कर्क को ४ से, धनु को ९ से, कुम्भ को ११ से और मीन को १२ से गुना करै । यदि लग्न में गुरु हो तो १० से, मङ्गल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से और बुध हो तो ५ से गुना करै । यदि शेष ग्रह (शनि, रवि, चन्द्रमा) हो तो इनके ५ गुणक हैं । लग्न राशि की गुणनविधि तो निश्चित ही होती है, किन्तु लग्न में जो ग्रह हो उसी की गुणना होती है । यदि लग्न में अधिक ग्रह हो तो

सबकी गुणना करनी चाहिये । इस प्रकार लग्न कला को गुना करने से जो पिण्ड हो; उससे आगे कहे विधि से वर्ष मासादि का ज्ञान करना चाहिये ।

उदा०—प्रश्न लग्न २।२३।१५।५७ इसको कलात्मक बनाने से ४९९५।५७ इसको मिथुन के गुणकाङ्क ८ से गुना करने ३९९६७।३६ फिर लग्न में शनि और मङ्गल दो ग्रह हैं इसलिये शनि के गुणकांक ५ और मङ्गल के गुणकांक ८ दोनों से गुना करने से १५९८७०४ यह लिप्तापिण्ड हुआ । इससे आगे कहे प्रकार से नक्षत्रादि का ज्ञान करना ॥ ९ ॥

नक्षत्र का ज्ञान और स्त्री पुत्रादि के नष्ट जातकपत्र विधि—

सप्ताहतं त्रिघनभाजितशेषमृक्षं
दत्त्वाऽथ वा नव विशोध्य न-वाऽथ वा स्यात् ।
एवं कलत्रसहजात्मजशत्रुमेभ्यः
प्रष्टुर्वदेदुदयराशिवशेन तेषाम् ॥१०॥

सं०—'राशिग्रहगुणकारगुणितं लिप्तापिण्डीकृतं लग्नं'—सप्ताहतं त्रिधनभाजितम् (सप्तविंशतिभक्तं) शेषमृक्षं (अश्विन्यादि नक्षत्रं) ज्ञेयम् । अत्र संस्कारविशेषं कथयति नक्षत्रमानासंभवे नव दत्वा (संयोज्य) विशोध्य वा नक्षत्रं ज्ञेयम् । केनचिदेवं व्याख्यायते यथा—चरे लग्ने सप्तगुणितलिप्तापिण्डे नव दत्वा, स्थिरे लग्ने नव विशोध्य, द्विस्वभावे न (न दत्वाऽथवा न विशोध्य) अर्थात् यथागुणितमेव स्थाप्यम् । ततो नक्षत्राद्यानयनं कार्यम् । इत्यात्मीयनष्टजातकविधिः । एवं कलत्रसहजात्मजशत्रुमेभ्यः (स्त्रीभ्रातृपुत्ररिपुभावेभ्यः) प्रष्टुस्तेषां कलत्रसहजात्मजशत्रूणां सर्वं नष्टजातकं वदेत् । यथा प्रश्नलग्नादात्मीयं, तथैव सप्तमभावात् स्त्रियाः, तृतीयभावात् भ्रातुः, पञ्चमभावात् पुत्रस्य, रिपुभावात् शत्रोर्नष्टजातकं वदेदित्यर्थः ।

भा० पूर्व साधित लग्नलिप्तापिण्ड को ७से गुनाकर २७ के भाग देकर शेष अश्विनी आदि नक्षत्र समझना । इसमें इतना संस्कार और है कि नक्षत्रादि मान असम्भव जान पड़े तो ९ जोड़ या घटा कर समझे । कोई

कोई ऐसा कहते हैं कि—यदि चरलग्न हो तो गुणकार से गुणित लिप्तापिण्ड में ६ जोड़ै, यदि स्थिर लग्न हो तो ६ घटावै यदि द्विस्वभाव लग्न हो तो न जोड़ै न घटावै (अर्थात् यथागुणित रहनेदेव) उसमें अपने अपने विकल्प के भाग देकर नक्षत्रादि जानै। यह तो अपने नष्ट जातक के लिये हैं। इसी प्रकार सप्तमभाव से कलापिण्ड बना कर प्रश्नकर्ता की स्त्री का, तृतीयभाव से भाई का, पञ्चमभाव से पुत्र का और षष्ठभाव से शत्रु का नष्टजातकपत्र समझना चाहिये॥ १०॥

उ०—लग्नलिप्तापिण्ड १५६८७०४ को ७से गुना करने से १११६०६२८ इसमें २७ के भाग देने से शेष ४ अश्विना से चतुर्थ रोहिणी नक्षत्र हुआ॥ १०॥

वर्षादि के ज्ञान का आदेश—

वर्षर्तुमासतिथयो द्युनिशं ह्युडूनि
वेलोदयर्क्षनवभागविकल्पनाः स्युः।
भूयो दशादिगुणिताः स्वविकल्पभक्ता
वर्षादयो नवकदानविशोधनाभ्याम्॥११॥

सं०—'राशिग्रहगुणकारगुणिता लग्नलिप्ता' भूयः पुनः 'वक्ष्यमाणरीत्या' दशादिगुणिताः स्वस्वविकल्पभक्ता वर्षर्तुमासतिथयः, द्युनिश, उडूनि, वेलोदयर्क्षनवभागविकल्पनाश्च भवन्ति। वर्षादयः सर्वेऽपि नवकदानविशोधनाभ्यां पूर्वदर्शितरीत्या ज्ञेयाः॥११॥

भा०—पूर्वरीति से साधित लग्नलिप्तापिण्ड को फिर से दश आदि अपने अपने गुणाकारों से गुनाकर के अपने अपने विकल्प (संख्या) से भाग देकर शेष तुल्य वर्ष ऋतु, मास, तिथि, दिन, रात्रि, इष्टकाल लग्न, राशि, नवांश समझना चाहिये। यहाँ वर्षादि सब विषय के आनयन में नक्षत्रानयनवत् ९ जोड़ घटाकर या यथावत् पिण्ड पर से क्रिया करनी चाहिये॥

वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि ज्ञान प्रकार—

विज्ञेया दशकेष्वब्दा ऋतुमासास्तथैव च।
अष्टकेष्वपि मासार्द्धौ तिथयश्च तथा स्मृताः ॥१२॥

सं०—दशकेषु दशगुणितेषु लिप्तापिण्डेषु अब्दाः, तथैव ऋतुमासाश्च विज्ञेयाः। लिप्तापिण्डं दशगुणं कृत्वा, विंशत्यधिकशतेन विभज्य शेषं गतवर्ष-संख्या, ऋतुविकल्पैः षड्भिर्विभज्यैकादिशेषे शिशिरादय ऋतवो ज्ञेयाः। ऋतुज्ञाने सति, द्वाभ्यां विभज्यैकशेषे ऋतोः प्रथमो मासः, द्विशेषे द्वितीयो मासः। तथाऽष्टकेषु (अष्टगुणितेषु) द्वाभ्यां तष्टितेषु क्रमेण मासार्धौ (शुक्ल-कृष्णपक्षौ) ज्ञेयौ, एवं पञ्चदशभिर्विभज्यैकादिशेषेषु तिथयः (प्रतिपदादयः) स्मृताः ॥१२॥

भा०—पूर्वसाधित लिप्तापिण्ड को १० गुनाकर के १२० से भाग देकर शेष तुल्य वर्ष, उसी दश गुणित पिण्ड में ६ के भाग से शेष तुल्य शिशिर आदि ऋतु, और २ के भाग देकर १ शेष में ऋतु का प्रथममास, २ शेष में द्वितीयमास समझना। पुनः लिप्ता पिण्डको ८ गुना कर नव संस्कृत कर के २ के भाग से १ शेष में शुक्ल, शून्य शेष में कृष्ण पक्ष, तथा १५ के भाग देकर १ आदि शेष तुल्य प्रतिपदादितिथि होती है ॥१२॥

वि०—विशेषज्ञेय-यहाँ 'वर्षादयो नवकदानविशोधनाभ्याम्"—इस का आशय यह भी है कि—पिण्ड पर जो वर्ष संख्या आवे वह यदि प्रश्नकर्ता के वयस से न्यून या अधिक मालूम हो तो उसमें ९ को तब तक जोड़े या घटावे जब तक प्रष्टा के वयसतुल्य सम्भव हो।

जैसे—प्रष्टा की उमर ३० वर्ष के समीप मालूम होता है। उस का गत वर्ष ज्ञान करना है तो साधित पिण्ड १५९८७०४ को १० गुना कर १५९८७०४० में १२० के भाग देकर शेष ४० वर्ष हुए। परञ्च प्रश्नकर्ता के वयस से अधिक प्रतीत होता है इसलिये इस (४०) में ९ घटाने से ३१ ये सम्भव वर्ष हुए। अतः इसको प्रश्न संवत्सर २००१ में घटाने से प्रष्टा का जन्म संवत्सर १९७० हुआ ॥१२॥

ऋतु ज्ञान के लिये उसी दश गुणित पिण्ड में ६ के भाग देकर शेष ४ चौथी (वर्षा) ऋतु हुई । मास जानने के लिये २ के भाग देने से ० शेष होने से वर्षा ऋतु (श्रावण भाद्रपद) का दूसरा मास (भाद्रपद) हुआ ।

पक्ष ज्ञान के लिये लिखा पिण्ड को ८ गुना कर १२७८६६३२ इस में २ के भाग देने से शून्य शेष बचा इस लिये कृष्ण पक्ष हुआ । तथा १५ के भाग देने से शेष २ द्वितीया तिथि हुई ॥१२॥

इस देश में मासशुक्लादि और कृष्णादि दो प्रकार से व्यवहृत है । गुजरात में शुक्लादि और अन्यत्र कृष्णादि चान्द्र मास मानते हैं । उस हिसाब से जिसे गुजरात में भाद्र कृष्ण कहते हैं उसी को अन्यत्र (काशी आदि प्रान्त में) आश्विन कृष्ण कहते हैं । अर्थात् शुक्लपक्ष दोनों देश में एक ही मास के होते हैं। कृष्ण पक्ष में भिन्न मास हो जाते हैं। सूर्यसिद्धान्त आदि ज्यौतिषग्रन्थ के अनुसार गणित द्वारा शुक्लादि मास आता है । उस हिसाब से इस प्रश्नलग्न द्वारा-प्रश्न का जन्म समय सं०१९७० भाद्रकृष्ण २ द्वितीया अर्थात् काशी के हिसाब से आश्विन कृष्ण द्वितीया को होता है । इतना निश्चय हो जाने पर अब यह जानना आवश्यक है कि--कितने इष्ट घटी पल पर जन्म हुआ । अथवा किस लग्न के किस अंश (नवांश) पर जन्म हुआ । उस का आनयन १४वें श्लोक के अनुसार करना ॥ १२ ॥

दिन, रात्रि और नक्षत्र के ज्ञान का प्रकार--

दिवारात्रिप्रसूतिं च नक्षत्रानयनं तथा ।
सप्तकेष्वपि वर्गेषु नित्यमेवोपलक्षयेत् ॥ १३ ॥

सं० दिवारात्रिप्रसूतिं तथा नक्षत्रानयनं चापि सप्तकेषु (सप्तगुणितेषु) वर्गेषु नित्यमेवोपलक्षयेत् जानीयात् ॥ १३ ॥

भा०—दिन या रात्रि में जन्म हुआ ? यह जानना हो तथा नक्षत्रानयन यह सर्वदा सप्त गुणित लिखा पिण्ड पर से करना चाहिये ॥ १३ ॥

उदाहरण—नक्षत्रानयन का पूर्व ही दिखलाया गया है । दिन में या

रात्रि में जन्म का ज्ञान करना हो तो पिण्ड को ७ से गुना कर के २ के भाग से—१ शेष में दिन और २ शेष में रात्रि समझनां ॥ १३ ॥

इष्ट घड़ी, या लग्न, होरा, नवांश जानने का प्रकार--

वेलामथ विलग्नञ्च होरामंशकमेव च ।
पञ्चकेषु विजानीयान्नष्टजातकसिद्धये ॥ १४ ॥

सं०—अथ द्युनिशज्ञाने वेलां (दिनगतघटीं, रात्रिगतघटीं वा) विलग्नं, होरां, अंशकं च पञ्चकेषु (पञ्चगुणितेषु) विजानीयात् । इति नष्टजातकसिद्धये विधिं कुर्यात् । दिनज्ञाने पञ्चगुणितपिण्डं दिनमानघटीप्रमाणेन, रात्रिज्ञाने रात्रिमानघटिकाप्रमाणेन विभज्य शेषमिष्टघटीप्रमाणं ज्ञेयम् । ततो लग्नादिकं सर्वं साधयेत् ॥ १४ ॥

भा०—दिन या रात्रि में जन्म के ज्ञान होने पर—इष्ट समय, या लग्न होरा नवमांश जानना हो तो पञ्च गुणित पिण्ड पर से करना चाहिये । ये क्रियायें—केवल अज्ञात जन्म समयादि ज्ञानार्थ ही कही गई हैं ॥ १४ ॥

वि०—यदि निश्चित हो जाय कि दिन में जन्म हुआ है, तो इष्ट घटीज्ञानार्थ पिण्ड को ५ से गुनाकर दिनमान घट्यादि से भाग देकर और रात्रि में रात्रिमान घट्यादि से भाग देकर शेष घट्यादि इष्टकाल समझना । उस पर से लग्न साधन विधि से लग्न का ज्ञान करना । यदि विना इष्टघटी ज्ञान के ही—फलार्थ नष्ट जातक सम्बन्धी जन्मलग्न का ज्ञान करना हो तो पञ्च गुणित पिण्ड को ही १२ के भाग देकर शेष तुल्य मेष आदि लग्न समझना । यदि लग्न का ज्ञान हो तो होराफल कथनार्थ उसी पञ्च गुणित पिण्ड को २ से भाग देकर १ शेष में प्रथम और शून्य शेष में द्वितीय-होरा समझना । एवं नवांश ज्ञान के लिये ९ का भाग देकर द्वादशांश ज्ञान के लिये १२ से भाग देकर लब्ध तुल्य नवांश या द्वादशांश समझकर लग्न राशि के अनुसार उसका फलादेश करना ॥ १४ ॥

उदाहरण—जैसे लिखा पिण्ड १५९८७०४ को ७ से गुना कर २ के भाग देने से शून्य (अर्थात् २) शेष बचा इस लिये रात्रि में जन्म निश्चय

हुआ। अब इष्ट घटी ज्ञानार्थ लिखा पिण्ड १५६८७०४ को ५ से गुनाकर ७८६३५२० भाज्य, इसमें रात्रिमान (घटीपल २७।४० = एक जातीयपल १६६०) से भाग देने के लिये भाज्य को भी ६० से गुना करके भाग देकर शेष ६८० पल इसकी घटी बनाने में ११।२० यह सूर्यास्त से घट्यादि जन्म इष्टकाल हुआ। इस पर से स्पष्ट ग्रह और लग्नादि द्वादश भाव साधन कर नष्टजन्मपत्र होगा। अथवा बिना आयास के शीघ्रता में लग्नादि के फल कहना हो तो लग्नादि के विकल्प (संख्या) से पञ्चगुणित पिण्ड में भाग देने से शेष लग्नादि होते हैं, जिनका उदाहरण भी स्पष्ट है।

जैसे किसी ने प्रश्न किया कि अमुक संवत्, अमुक मास, पक्ष, अमुक तिथि, दिन में मेरा जन्म है, लेकिन काल या लग्न का ज्ञान नहीं है, तो हमारा कौन लग्न में जन्म है ? और उसका क्या फल होगा ?—ऐसे प्रश्न में पञ्चगुणित लिखा पिण्ड में १२ के भाग देकर १ आदि शेष में मेष आदि लग्न समझना फिर लग्न के अंश जानने के लिये उसी पञ्चगुणित-लिखा पिण्ड में ३० का भाग देकर शेष तुल्य अंश समझना। उस अंश की कला जानने के लिये पञ्चगुणित पिण्ड में ६० के भाग देकर शेष तुल्य कला और विकला समझना। उस पर से मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार इष्टकाल और तात्कालिक स्पष्ट ग्रहादि का ज्ञान भी सुगम है ॥ १४ ॥

अब केवल नक्षत्र ज्ञान के लिये प्रकारान्तर –

संस्कारनाममात्रा द्विगुणा छायाङ्गुलैः समायुक्ता ।
शेषं त्रिनवकभक्ता नक्षत्रं तद्धनिष्ठादि ॥१५॥

सं०—संस्कारनाममात्राः (नामकरणसंस्कारेण यन्नाम तस्य मात्राः ह्रस्वस्यैका, दीर्घस्य द्वे, हल्वर्णस्यार्धमात्रेति संकलिता यास्ताः) 'प्रश्नकालिक-द्वादशाङ्गुलशङ्कोः' छायाङ्गुलैः समायुक्ताः, त्रिनवकभक्ता यच्छेषं, तद् धनिष्ठादि एकशेषे धनिष्ठा, द्विशेषे शततारकेत्यादि नक्षत्रं ज्ञेयम् ॥१५॥

भा०—नामकरण संस्कार विधि से माता पिता द्वारा प्रश्नकर्ता का जो नाम हो उसमें जितने वर्ण हो उनकी मात्राओं (ह्रस्व की १, दीर्घ की २,

हल् व्यञ्जन की अर्धमात्रा इस प्रकार सबों) के योग में तात्कालिक द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छायाङ्गुल संख्या जोड़कर २७ के भाग देकर जो शेष बचे वह धनिष्ठादि नक्षत्र समझना ॥ १५ ॥

उदाहरण—जैसे प्रश्नकर्ता का संस्कार नाम 'देवनाथ' इन चारो वर्ण में २ ह्रस्व और २ दीर्घवर्ण हैं इसलिये सब मात्रा ६ हुई इसको दूना करने से १२ इसमें तात्कालिक द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छाया ७ मिलाया तो १९ इसमें २७ के भाग से शेष १९ वाँ धनिष्ठा से गिनने से 'चित्रा' जन्म नक्षत्र हुआ।

वि०—"एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चाऽर्धमात्रकम् ॥" स्पष्ट।

नाम में ह्रस्व, दीर्घ, और व्यञ्जन तीन ही से मात्रा ली जाती है। प्लुत सम्बोधन में आता है इसलिये नाम में किसी वर्ण का ३ मात्रा नहीं होती है। इष्टकाल पर से छायाङ्गुल समझने का प्रकार ग्रहलाघव आदि ग्रन्थ के त्रिप्रश्नाधिकार में देखिये ॥ १५ ॥

नक्षत्रानयन का पुनः प्रकारान्तर--

द्वित्रिचतुर्दशदशतिथिसप्तत्रिगुणा नवाष्ट चैन्द्र्याद्याः।
पञ्चदशघ्नास्तद्दिङ्मुखान्विता भं धनिष्ठादि ॥१६॥

सं०—ऐन्द्र्याद्याः (पूर्वाद्या दिशः) क्रमेण दशसु दिक्षु द्वित्रिचतुर्दश-दशतिथिसप्तत्रिगुणा नवाष्ट चाङ्का ज्ञेयाः। प्रष्टा यदभिमुखो भूत्वा पृच्छेत् तद्दिगङ्का ग्राह्यास्ते पञ्चदशघ्नाः तद्दिङ्मुखान्विताः (तदभिमुखोपविष्टा यावन्तोऽन्ये जनास्तत्संख्ययाऽपि युक्ताः कार्याः) पुनः सप्तविंशतिभक्ताः शेषं धनिष्ठादि भं नक्षत्रं ज्ञेयम् ॥ १६ ॥

भा०—पूर्वादि दश दिशाओं में क्रम से २,३,१४,१०,१५,७,३,३,९, ८ ये अङ्क हैं। प्रष्टा जिस दिशा में मुख करके प्रश्न करे उस दिशा के अङ्क को १५ से गुना करे और प्रश्नस्थल में जितने अन्य व्यक्ति उस दिशा में (जिधर प्रश्नकर्ता का मुख हो उधर) मुख किये हों उतनी संख्या

गुणनफल में मिलाकर २७ के भाग देकर जो शेष बचे वह धनिष्ठादि गणना क्रम से नक्षत्र समझना चाहिये ॥ १६ ॥

वि०— यहाँ भट्टोत्पल ने केवल ८ दिशायें समझकर 'सप्तत्रिगुणा' इन तीन अङ्कों के स्थान में एकही (त्रिगुणित सात = २१) अङ्क ग्रहण करके अर्थ किया है, जो असङ्गत है। क्योंकि दिशा १० हैं। जैसे पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ऐशान्य, अधः, ऊर्ध्व। क्योंकि— प्रश्नकर्ता कदाचित् अधोमुख होकर, कभी ऊर्ध्वमुख होकर भी प्रश्न कर सकता है उस हालत में इस प्रकार से किस अङ्क का ग्रहण होगा ? अथवा त्रिगुणा 'यह केवल सप्त' का विशेषण नहीं हो सकता है, यदि सप्त का विशेषण 'त्रिगुणा' आचार्य का अभिप्रेत होता तो 'त्रिगुणसप्त' ऐसा प्रयोग होता। अथवा 'नवाष्ट' का विशेषण हो सकता है। वा द्वित्रिचतुर्दश-दशतिथिसप्त' इस समस्त पद का विशेषण हो सकता है, इस प्रकार अध ऊर्ध्व इन दो दिशाओं के अङ्क अनुपपन्न होते हैं। इस लिये ये दश अङ्क दश दिशाओं के लिये आचार्य ने पठित किये हैं अतः केवल ८ दिशा मानना असङ्गत प्रतीत होता है ॥

तथा—'तद्दिङ्मुखान्विता' इसका भी कोई ऐसा अर्थ कहते हैं कि— "जितने मनुष्य जिस जिस दिशा में मुख किये हों उस उस दिशा के अङ्कों को भी मिलाना" किन्तु यह भी असङ्गत है। क्योंकि आचार्य का ऐसा अभिप्राय रहता तो—"परमुखदिगङ्कयुताः" ऐसा ही पाठ भी रखते। अतः 'तद्दिङ्मुखान्विता' इसका वास्तव अर्थ यही हो सकता है कि —'उस दिशा में जितने मनुष्य मुख कर बैठे या खड़े हो उतनी संख्या मिलावे' ॥१६॥

यहाँ ऐसी आशङ्का नहीं करनी चाहिये कि इस प्रकार दश दिशा मान कर अङ्क ग्रहण करने से ३ दिशा में समान ही ३, ३ अङ्क होते हैं। क्योंकि ऐसा होता है। १२ राशियों में भी कितने के अङ्क समान कहे गये हैं तो वहाँ भी ऐसी आशङ्का उपस्थित हो सकती है ॥

दिशाओं के अङ्कबोधक चक्र--

पूर्व	आ.	द.	नै.	प.	वा.	उ.	ई	अधः	ऊर्ध्व
२	३	१४	१०	१५	७	३	१	९	८

उदाहरण—किसी ने उतान सोए हुए (ऊर्ध्व मुख हो कर ही) प्रश्न किया और वहाँ १ अन्य व्यक्ति भी ऊपर मुख किया हो तो यहाँ ऊर्ध्व दिशाके अङ्क ८ को १५ से गुना किया १२० इस में १ संख्या और मिलाया तो १२१ हुआ इस में २७ के भाग देकर शेष १३ धनिष्ठा से गिनने से पुष्य जन्म नक्षत्र हुआ ॥ १६ ॥

नष्ट जातक का उपसंहार—

इति नष्टकजातकमिदं बहुप्रकारं मया विनिर्दिष्टम् ।
ग्राह्यमतः सच्छिष्यैः परीक्ष्य यत्नाद्यथा भवति ॥१७॥

इति वराहमिहिरविरचिते बृहज्जातके नष्टजातकाऽध्यायः षड्विंशतितमः ॥२६॥

सं०—इति (एवं) इदं (पूर्वोक्तं) नष्टजातकं मया बहुप्रकार (बहूनामाचार्याणां मतं बहुविधं) विनिर्दिष्टम् (दर्शितम्) अतः (एभ्यः प्रकारेभ्यः) सत् (शोभनं सुलभं स्फुटं वा) यथा भवति तथा शिष्यैः (अध्येतृवर्गैः) यत्नात् परीक्ष्य विचार्य ग्राह्यम् ॥१७॥

भा०—इस तरह मैंने–बहुत आचार्यों के सम्मत अनेक प्रकार से नष्टजातक कहे हैं, इन में विद्यार्थियों को चाहिये कि–यत्न से सबों की परीक्षा करके–जिस प्रकार से फल में विशेष स्पष्टता हो उस प्रकार को ग्रहण कर के नष्टजातक---बनाकर फलादेश करें ॥१७॥

वि०—इस से यहाँ यह आशंका नहीं करना चाहिये कि–"इन में कोई प्रकार अवास्तव है, और कोई वास्तव है ? इसलिये आचार्य का ऐसा आदेश है ?" वास्तव में सब प्रकार ठीक ही है । जैसे अनेक स्मृतियाँ हैं, उन में कोई किसी के अनुसार, कोई किसी के अनुसार अपने देशकाल के

अनुरोध वश काम करते हैं, उसी प्रकार जिन को जो प्रकार सुलभ या स्पष्ट मालूम हो वह उसी प्रकार से बनावें, फल सब प्रकार से मिल सकता है ॥ १७ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके नष्टजातकाध्यायः ॥ २६ ॥

—०※०—

अथ द्रेष्काणस्वरूपाध्यायः ॥२७॥

मेष द्रेष्काण स्वरूप--

कट्यां सितवस्त्रवेष्टितः कृष्णः शक्त इवाभिरक्षितुम् ।
रौद्रः परशुं समुद्यतं धत्ते रक्तविलोचनः पुमान् ॥१॥

सं० – कट्यां सितवस्त्रवेष्टितः, कृष्णः, अभिरक्षितुं शक्त इव, रौद्रः (भीषणः), रक्तविलोचनः, पुमान् समुद्यतं परशुं धत्ते ॥१॥

भा० – कमर में सफेद वस्त्र लपेटा हुआ, श्यामवर्ण, रक्षा करने में समर्थ, भयानक, लाललोचनवाला पुरुष, फरसा को धारण किया हुआ ऐसा मेष का प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥१॥

रक्ताम्बरा भूषणभक्ष्यचित्ता कुम्भाकृतिर्वाजिमुखी तृषार्ता ।
एकेन पादेन च मेषमध्ये द्रेष्काणरूपं यवनोपदिष्टम् ॥२॥

सं०—रक्ताम्बरा, भूषणभक्ष्यचित्ता, कुम्भाकृतिः, वाजिमुखी, तृषार्ता एकेन पादेन स्थिता स्त्री, मेषमध्ये द्रेष्काणरूपं यवनैरुपदिष्टम् ॥ २ ॥

भा०—लालवस्त्र पहिनी हुई, भूषण और भोजन की इच्छा से युत, घड़ा सदृश आकार और घोड़े के समान मुखवाली एक पैर से खड़ी ऐसा मेष का दूसरा द्रेष्काण यवनों ने कहा है ॥ २ ॥

क्रूरः कलाज्ञः कपिलः क्रियार्थी भग्नव्रतोऽभ्युद्यतदण्डहस्तः ।
रक्तानि वस्त्राणि बिभर्ति चण्डो मेषे तृतीयः कथितस्त्रिभागः ॥

सं०—क्रूरः, कलाज्ञः, कपिलः, क्रियार्थी (कार्याभिलाषी), भग्नव्रतः, अभ्युद्यतदण्डहस्तः, चण्डः (क्रोधी), रक्तानि वस्त्राणि बिभर्ति, एवं मेषे तृतीयस्त्रिभागो द्रेष्काणः कथितः ॥ ३ ॥

भा०—क्रूर, कला को जाननेवाला, कपिलवर्ण, कार्य करने का अभिलाषी, नियम का उल्लंघन करनेवाला, हाथ में लाठी उठाया हुआ, क्रोध युक्त, रक्त वस्त्र को धारण किया हुआ पुरुष मेष का तृतीय द्रेष्काण कहा गया है ॥

वृष द्रेष्काण—

कुञ्चितलूनकचा घटदेहा दग्धपटा तृषिताशनचित्ता ।
आभरणान्यभिवाञ्छति नारी रूपमिदं वृषभे प्रथमस्य ॥ ४ ॥

सं०—कुञ्चितलूनकचा, घटदेहा, दग्धपटा, तृषिता, अशनचित्ता नारी, आभरणानि वाञ्छति, इदं वृषभे प्रथमस्य द्रेष्काणस्य रूपं कथितम् ॥ ४ ॥

भा० टेढ़े टेढ़े किन्तु छोटे छोटे शिर के केशवाली, घड़ा के समान पेटवाली, जला वस्त्र पहिनी हुई, प्यासी, भोजन में मन रखनेवाली, आभरण चाहनेवाली स्त्री वृष के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ४ ॥

क्षेत्रधान्यगृहधेनुकलाज्ञो लाङ्गले सशकटे कुशलश्च ।
स्कन्धमुद्वहति गोपतितुल्यं क्षुत्परोऽजवदनो मलवासाः ॥५॥

सं०—क्षेत्रधान्यगृहधेनुकलाज्ञः स-शकटे लाङ्गले च कुशलः, गोपतितुल्यं (वृषभसमानं) स्कन्धं उद्वहति, क्षुत्परः, अजवदनः, मलवासाः, इति वृषभे द्वितीयद्रेष्काणस्य स्वरूपमुक्तम् ॥ ५ ॥

भा०—खेती, अन्न, गृह, गोपालन, और कलाओं को जाननेवाला गाड़ी और हल चलाने में कुशल, बैल के समान गर्दनवाला, क्षुधातुर, बकरे के समान मुखवाला और मैला कपड़ा पहिननेवाला वृष का दूसरा द्रेष्काण है ।

द्विपसमकायः पाण्डुरदंष्ट्रः शरभसमाङ्घ्रिः पिङ्गलमूर्तिः ।
अविमृगलोमव्याकुलचित्तो वृषभवनस्य प्रान्तगतोऽयम् ॥६॥

सं०—द्विपसमकायः (हस्तिसमदेहः) पाण्डुरदंष्ट्रः, शरभसमाङ्घ्रिः,

पिङ्गलमूर्तिः, अविमृगलोभभ्याकुलचित्तः, अयं-एवं विशिष्टो वृषभवनस्य प्रान्तगतः (तृतीयो द्रेष्काणः) कथितः ॥ ६ ॥

भा०—हाथी के समान विशाल देह, श्वेत दाँत, ऊँट के तुल्य पैर, पीले रङ्ग का देह का वर्ण, बकरा, हरिन आदि के लोभ से व्याकुल मनवाला पुरुष ऐसा वृष का तृतीय द्रेष्काण है ॥ ६ ॥

मिथुन द्रेष्काण—

सूच्याश्रयं समभिवाञ्छति कर्म नारी,
रूपान्विताभरणकार्यकृतादरा च ।
हीनप्रजोच्छ्रितभुजर्तुमती त्रिभाग-
माद्यं तृतीयभवनस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ७ ॥

सं०—नारी सूच्याश्रयं कर्म समभिवाञ्छति, रूपान्विता, आभरण-कार्यकृतादरा, हीनप्रजा, उच्छ्रितभुजा, ऋतुमती, एवं तृतीयभवनस्य (मिथुनस्य) आद्यं त्रिभागं (द्रेष्काणं) तज्ज्ञा वदन्ति ॥ ७ ॥

भा०—सिलाई का काम करनेवाली स्त्री, मनोहर रूपवाली, भूषणों में श्रद्धा रखनेवाली, सन्तानहीना, दोनो हाथ को उठाई हुई, ऋतुमती (कामातुरा) ऐसा मिथुन के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ७ ॥

उद्यानसंस्थः कवची धनुष्मान् शूरोऽस्त्रधारी गरुडाननश्च ।
क्रीडात्मजाऽलङ्करणार्थचिन्तां करोति मध्ये मिथुनस्य राशेः॥८॥

सं०—उद्यानसंस्थः, कवची, धनुष्मान्, शूरः, अस्त्रधारी, गरुडाननश्च, क्रीडात्मजालङ्करणार्थचिन्तां करोति एवं मिथुनस्य राशेः मध्ये (द्वितीये) द्रेष्काणे स्वरूपमुक्तम् ॥ ८ ॥

भा०—बगीचे में बैठा, कवच और धनुष को धारण किया हुआ, शूर, बन्दूक रखने वाला, गरुड़ के समान मुखवाला, खेल, पुत्र, भूषण और धन की चिन्ता रखने वाला पुरुष मिथुनराशि के दूसरे द्रेष्काण का स्वरूप है॥८॥

भूषितो वरुणवद्बहुरत्नो बद्धतूणकवचः स-धनुष्कः ।
नृत्यवादितकलासु च विद्वान् काव्यकृन्मिथुनराश्यवसाने॥९॥

सं०—भूषितः, वरुणवत् (समुद्राधिप इव) बहुरत्नः, बद्धतूणकवचः, सधनुष्कः, नृत्यवादितकलासु च विद्वान्, काव्यकृत् पुरुषः, एवं मिथुन-राश्यवसाने द्रेष्काणरूपमुक्तम् ॥ ९ ॥

भा०—भूषणों से शोभित, वरुण (समुद्रपति) के समान, बहुत रत्नो से युक्त, तूण (तरकस) और कवच को धारण किया, धनुष से युक्त, नृत्य और वाद्य आदि कला मे निपुण, काव्य करने वाला, ऐसा मिथुन के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ९ ॥

कर्क द्रेष्काण—

पत्रमूलफलभृद्द्विपकायः कानने मलयगः शरभाङ्घ्रिः ।
क्रोडतुल्यवदनो हयकण्ठः कर्कटे प्रथमरूपमुशन्ति ॥१०॥

स०—पत्रमूलफलभृत्, द्विपकायः, कानने मलयगः, शरभाङ्घ्रिः, क्रोडतुल्यवदनः (सूकरास्यः), हयकण्ठः, एवं कर्कटे प्रथमस्य द्रेष्काणस्य रूपमुशन्ति (कथयन्ति) ॥१०॥

भा०—पत्र, मूल और फल को रखनेवाला, हाथी के समान देहवाला, वनमें मलय पर्वत पर रहनेवाला, ऊँट के समान पैर वाला, सुअर के समान मुँहवाला, घोडा के समान कण्ठवाला ऐसा कर्क के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप कहा गया है ॥१०॥

पद्मार्चिता मूर्द्धनि भोगियुक्ता स्त्री कर्कशाऽरण्यगता विरौति ।
शाखां पलाशस्य समाश्रिता च मध्ये स्थिता कर्कटकस्य राशेः ॥

सं०—स्त्री मूर्द्धनि पद्मार्चिता, भोगियुक्ता (सर्पसहिता), कर्कशा, अरण्यगता, विरौति, पलाशस्य शाखां समाश्रिता, एवं कर्कटकस्य राशेः मध्ये द्वितीये द्रेष्काणे—आकृतिरुक्ता ॥११॥

भा०—मस्तक पर कमल धारण की हुई, सर्प से युत, बड़ी ही कर्कशा, वन में रोती हुई, पलाशवृक्ष की शाखा पकड़ कर खड़ी हुई ऐसा कर्क के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप है ॥११॥

भार्याभरणार्थमर्णवं नौस्था गच्छति सर्पवेष्टितः।
हैमैश्च युतो विभूषणैश्चिपिटास्योऽन्त्यगतश्च कर्कटे ॥१२॥

सं०—सर्पवेष्टितः पुरुषो भार्याभरणार्थं नौस्थोऽर्णवं (समुद्रं) गच्छति, हैमैर्विभूषणैश्च युतः, चिपिटास्यः, एवं कर्कटे अन्त्यगतो द्रेष्काणः कथितः ॥

भा०—सर्प से युक्त पुरुष स्त्री के लिये भूषण के निमित्त नौका पर बैठ कर समुद्र में चलनेवाला, सोने के भूषणों से युक्त, चिपिटा मुखवाला ऐसा कर्क के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है ॥१२॥

सिंह द्रेष्काण –

शाल्मलेरुपरि गृध्रजम्बुकौ श्वा नरश्च मलिनाम्बरान्वितः।
रौति मातृपितृविप्रयोजितः सिंहरूपमिदमाद्यमुच्यते ॥१३॥

सं०—शाल्मलेर्वृक्षस्योपरि गृध्रजम्बुकौ स्थितौ, श्वा कुक्कुरश्च स्थितः, मलिनाम्बरान्वितो नरश्च मातृपितृविप्रयोजितो रौति, एवं आद्यं सिंहरूपं (सिंहस्य प्रथमद्रेष्काणस्वरूपं) उच्यते ॥१३॥

भा०—सेमल के वृक्ष पर गीध, नीचे में स्यार और कुत्ता, तथा मलिनवस्त्र धारण किया हुआ, माता पिता से रहित मनुष्य रोता हुआ बैठा ऐसा सिंह के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप कहा गया है ॥१३॥

हयाकृतिः पाण्डुरमाल्यशेखरो बिभर्ति कृष्णाऽजिनकम्बलं नरः
दुरासदः सिंह इवात्तकार्मुको नताग्रनासो मृगराजमध्यमः ।१४

सं०—हयाकृतिः, पाण्डुरमाल्यशेखरः, नरः कृष्णाजिनकम्बलं बिभर्ति, सिंह इव दुरासदः, आत्तकार्मुकः नताग्रनासः, एवं मृगराजमध्यमः (सिंह-द्वितीयद्रेष्काणः) कथितः ॥ १४ ॥

भा०—घोड़े के समान आकार, मस्तक पर पाण्डु (श्वेत पीत मिश्रित) वर्ण की माला वाला, कृष्ण मृग चर्म और कम्बल धारण करनेवाला, सिंह समान वश में नहीं होनेवाला, धनुषधारी, नाक का अग्रभाग झुका हुआ इस प्रकार सिंह का द्वितीय द्रेष्काण है ॥ १४ ॥

ऋक्षाननो वानरतुल्यचेष्टो बिभर्ति दण्डं फलमामिषं च ।
कूर्चो मनुष्यः कुटिलैश्च केशैर्मृगेश्वरस्यान्त्यगतस्त्रिभागः ।१५।

सं०—ऋक्षाननः, वानरतुल्यचेष्टः, दण्डं, फलं, आमिषं च बिभर्ति, कूर्ची मनुष्यः कुटिलैः केशैर्युक्तः, एवं मृगेश्वरस्य अन्त्यगतस्त्रिभागः कथितः ॥

भा०—भालू के समान मुख, वानर के समान चेष्टा वाला, लाठी, फल और मांस को धारण करने वाला, लम्बी दाढ़ी और टेढ़े शिर के बाल वाला, ऐसा सिंह का तृतीय द्रेष्काण है ॥ १५ ॥

कन्या द्रेष्काण—

पुष्पप्रपूर्णेन घटेन कन्या मलप्रदिग्धाम्बरसम्वृताङ्गी ।
वस्त्रार्थसंयोगमभीप्समाना गुरोः कुलं वाञ्छति कन्यकाद्यः ।१६

सं०—कन्या कुमारिका पुष्पप्रपूर्णेन घटेन सहिता मलप्रदिग्धाम्बर-संवृताङ्गी वस्त्रार्थसंयोगमभीप्समाना गुरोः कुलं वाञ्छति, एवं कन्यकाद्यः कन्याराशेः प्रथमो द्रेष्काणः कथितः ॥ १६ ॥

भा०—पुष्प से भरा हुआ घड़ा लिए हुई कन्या मलिनवस्त्र धारण की हुई वस्त्र और धन का संग्रह करने की इच्छा रखती हुई गुरुकुल में जाने वाली स्त्री, ऐसा कन्या का प्रथम द्रेष्काण कहा गया है ॥ १६ ॥

पुरुषः प्रगृहीतलेखनिः श्यामो वस्त्रशिरा व्ययायकृत् ।
विपुलं च बिभर्ति कार्मुकं रोमव्याप्ततनुश्च मध्यमः ॥१७॥

सं०—प्रगृहीतलेखनिः श्यामो वस्त्रशिराः, व्ययायकृत् रोमव्याप्ततनुः पुरुषो विपुल (विस्तीर्णं) कार्मुकं (धनुः) बिभर्ति, एवं कन्याया मध्यमो द्वितीयो द्रेष्काणः कथितः ॥ १७ ॥

भा०—हाथ में कलम, श्यामवर्ण, मस्तक में पगड़ी बाँधे, खर्च और आमदनी का विचार करने वाला, रोम से व्याप्त शरीर, बड़ा विशाल धनुष धारण किया हुआ पुरुष कन्या के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ १७ ॥

गौरी सुधौताग्रदुकूलगुप्ता समुच्छ्रिता कुम्भकटच्छुहस्ता ।
देवालयं स्त्री प्रयता प्रवृत्ता वदन्ति कन्यान्त्यगतं त्रिभागम् ॥

सं०—गौरी (गौरवर्णा) सुधौताग्रदुकूलगुप्ता, समुच्छ्रिता (अत्युच्चा) कुम्भकटच्छुहस्ता प्रयता (पवित्रा) देवालयं प्रवृत्ता, एवं कन्यान्त्यगतं (तृतीयं) त्रिभागं द्रेष्काणं 'मुनयो' वदन्ति ॥ १८ ॥

भा०—गौरवर्णा, धोया कपड़ा धारण करने वाली, उच्च आकृति, हाथ में घड़ा और करछुल ली हुई, अति पवित्रा, देवालय जाने के लिये प्रवृत्ता स्त्री, इस प्रकार को कन्या राशि के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप मुनियों ने कहा है ॥ १८ ॥

तुला द्रेष्काण—

वीथ्यन्तरापणगतः पुरुषस्तुलावा-
नुन्मानमानकुशलः प्रतिमानहस्तः ।
भाण्डं विचिन्तयति तस्य च मूल्यमेत-
द्रूपं वदन्ति यवनाः प्रथमं तुलायाः ॥१९॥

सं०—वीथ्यन्तरापणगतस्तुलावान् पुरुषः, उन्मानमानकुशलः (उन्माने घटकसेरादिके ऊर्ध्वमाने, माने कुडवप्रस्थादौ च निपुणः) प्रतिमानहस्तः (निकषोपलकरः) भाण्डं (क्रयद्रव्यं) तस्य मूल्यं च चिन्तयति । एतत् तुलायाः प्रथमं रूपं (प्रथमद्रेष्काणस्वरूपं) यवना वदन्ति ॥१९॥

भा०—शहरों की गली में दूकान करने वाला, हाथ में तराजू लिया हुआ पुरुष, सुवर्ण आदि तौलने में या पैली से मापने में कुशल; कसौटी (सुवर्ण जाँचने का पत्थर) हाथ में लिया हुआ; [illegible]

कीमत जानने वाला, इस प्रकार तुला के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप यवनों ने कहा है ॥ १९ ॥

कलशं परिगृह्य विनिष्पतितुं समभीप्सति गृध्रमुखः पुरुषः ।
क्षुधितस्तृषितश्च कलत्रसुतान् मनसैति तुलाधरमध्यगतः॥२०॥

सं०—गृध्रमुखः पुरुषः कलशं (घटं) परिगृह्य विनिष्पतितुं समभीप्सति क्षुधितस्तृषितश्च मनसा कलत्रसुतान् एति (गच्छति, स्मरतीत्यर्थः) एवं तुलाधरमध्यगतो द्रेष्काणः कथितः ॥२०॥

भा०- गीध के समान मुखवाला पुरुष हाथ में घड़ा लेकर गिरने की इच्छा करता हुआ, भूख और प्यास से व्याकुल, मन ही मन स्त्री और पुत्र का स्मरण करनेवाला, ऐसा तुला का द्वितीय द्रेष्काण कहा गया है ॥२०॥

विभीषयंस्तिष्ठति रत्नचित्रितो वने मृगान् काञ्चनतूणवर्मभृत् ।
फलामिषं वानररूपभृन्नरस्तुलावसाने यवनैरुदाहृतः ॥२१॥

सं०—रत्नचित्रितः (मणिविभूषितः) काञ्चनतूणवर्मभृत् वानररूपभृन्नरो वने मृगान् विभीषयन् तिष्ठति फलामिषं चाऽभीप्सति एवं तुलावसाने द्रेष्काणो यवनैरुदाहृतः कथितः ॥२१॥

भा०—मणियों से विभूषित वानर के समान मुखवाला मनुष्य हाथ में सुवर्ण के निषङ्ग और कवच धारण किया हुआ, वन में मृगों को भय देता हुआ, फल और मांस चाहने वाला, ऐसा तुला का तृतीय द्रेष्काण पुराने यवनों ने कहा है ॥ २१ ॥

वृश्चिक द्रेष्काण—

वस्त्रैर्विहीनाभरणैश्च नारी महासमुद्रात् समुपैति कूलम् ।
स्थानच्युता सर्पनिबद्धपादा मनोरमा वृश्चिकराशिपूर्वः ॥२२॥

सं०—वस्त्रैराभरणैश्च विहीना नारी महासमुद्रात् कूलं (तटं) समुपैति, स्थानच्युता सर्पनिबद्धपादा, मनोरमा च, एवं वृश्चिकराशिपूर्वः (वृश्चिकस्य प्रथमः) द्रेष्काणः कथितः ॥२२॥

भा—वस्त्र और आभूषणों से हीन, महासमुद्र से तीर में आती हुई, स्थान से भ्रष्टा, पैर में सर्प बाँधे हुई मनोहर रूपवाली स्त्री, ऐसा वृश्चिक के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ २२ ॥

स्थानसुखान्यभिवाञ्छति नारी भर्तृकृते भुजगावृतदेहा।
कच्छपकुम्भसमानशरीरा वृश्चिकमध्यमरूपमुशन्ति ॥२३॥

सं—नारी भर्तृकृते (पतिनिमित्तं) स्थानसुखान्यभिवाञ्छति, भुजगावृतदेहा, कच्छपकुम्भसमानशरीरा, एवं वृश्चिकमध्यमरूपं (वृश्चिकद्वितीयद्रेष्काणस्वरूपं) मुनयः उशन्ति (कथयन्ति) ॥ २३ ॥

भा०—पति के निमित्त स्थान सुख चाहनेवाली स्त्री, सर्प से वेष्टित शरीर, कछुआ और घड़ा के समान आकार वाली, ऐसा वृश्चिक के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप मुनियों ने कहा है ॥२३॥

पृथुलचिपिटकूर्मतुल्यवक्त्रः श्वमृगवराहशृगालभीतिकारी।
अवति च मलयाकरप्रदेशं मृगपतिरन्त्यगतस्य वृश्चिकस्य॥२४॥

सं०—पृथुलचिपिटकूर्मतुल्यवक्त्रः श्वमृगवराहशृगालभीतिकारी मृगपतिः (सिंहः) मलयाकरप्रदेशं चावति रक्षति, एवं वृश्चिकस्यान्त्यगतस्य (तृतीयद्रेष्काणस्य) रूपं कथितम् ॥२४॥

भा०—विशाल और चिपटा कछुआ के समान मुखवाला वन में कुत्ता, हरिण, सूकर, सियार इन जानवरों को भय देनेवाला सिंह चन्दनवन का रक्षा करनेवाला, ऐसा वृश्चिक का तृतीय द्रेष्काण कहा गया है ॥ २४ ॥

धनु द्रेष्काण—

मनुष्यवक्त्रोऽश्वसमानकायो धनुर्विगृह्यायतमाश्रमस्थः।
क्रतूपयोज्यानि तपस्विनश्च ररक्ष आद्यो धनुषस्त्रिभागः ॥२५॥

सं०—मनुष्यवक्त्रोऽश्वसमानकायः, आयतं दीर्घं, धनुर्विगृह्य आश्रमस्थः क्रतूपयोज्यानि (यज्ञद्रव्याणि) तपस्विनश्च ररक्ष (रक्षितवान्) एवं धनुषः आद्यत्रिभागो द्रेष्काणः कथितः ॥ २५ ॥

भा०—मनुष्य के समान मुख, घोड़े के समान शरीर, हाथ में बड़ा धनुष लिया हुआ आश्रमस्थ होकर यज्ञीय वस्तु और तपस्वियों की रक्षा करनेवाला, ऐसा धनु का प्रथम द्रेष्काण है ॥ २५ ॥

मनोरमा चम्पकहेमवर्णा भद्रासने तिष्ठति मध्यरूपा ।
समुद्ररत्नानि विघट्टयन्ती मध्यत्रिभागो धनुषः प्रदिष्टः॥२६॥

सं०—मनोरमा, चम्पकहेमवर्णा, मध्यमरूपा, समुद्ररत्नानि विघट्टयन्ती भद्रासने तिष्ठति, एवं विशिष्टो धनुषो मध्यत्रिभागो द्वितीयद्रेष्काणः प्रदिष्टः कथितः ॥ २६ ॥

भा०—मनोहर रूप, चम्पा और सुवर्ण समान वर्णवाली, समुद्र के रत्नों को बटोरती हुई भद्रासन पर बैठी स्त्री, ऐसा धनुराशि का द्वितीय द्रेष्काण कहा गया है ॥ २६ ॥

कूर्ची नरो हाटकचम्पकाभो वरासने दण्डधरो निषण्णः ।
कौशेयकान्युद्वहतेऽजिनञ्च तृतीयरूपं नवमस्य राशेः ॥२७॥

सं०—कूर्ची (दीर्घश्मश्रुवान्) नरः, हाटकचम्पकाभः, दण्डधर वरासने निषण्णः, कौशेयकानि (पट्टविशेषाणि) अजिनं (मृगचर्म) च उद्वहते, एवं नवमस्य (धनुषो) राशेस्तृतीयरूपं (अन्तिमद्रेष्काणस्य स्वरूपं कथितम् ॥ २७ ॥

भा०—लम्बी दाढ़ीवाला पुरुष, सोना और चम्पा के समान कान्तिवाला, हाथ में दण्ड (लाठी) लेकर अच्छे आसन पर बैठा हुआ, पट्टवस्त्र और मृगचर्म धारण किया हुआ, इस प्रकार धनुराशि का तृतीय द्रेष्काण कहा गया है ॥ २७ ॥

मकर द्रेष्काण—

रोमाचितो मकरोपमदंष्ट्रः सूकरकायसमानशरीरः ।
योक्त्रकजालकबन्धनधारी रौद्रमुखो मकरप्रथमस्तु ॥२८॥

सं०—रोमचितो मकरोपमदंष्ट्रः, सूकरकायसमानशरीरः, योत्रकजालक-बन्धनधारी रौद्रमुखः, एवं भूतो मकरप्रथमो द्रेष्काणः कथितः ॥२८॥

भा०—रोम से व्याप्तदेह, मगर के दाँत समान दाँत वाला, सूकर के समान शरीरवाला, जोती (जिससे बैल बाँधे जाते हैं) जाल, बन्धन (हथकड़ी) को धारण किया हुआ भयानक मुखवाला पुरुष, ऐसा मकर का प्रथम द्रेष्काण है ॥ २८ ॥

कलास्वभिज्ञाऽब्जदलायताक्षी श्यामा विचित्राणि च मार्गमाणा।
विभूषणालङ्कृतलोहकर्णा योषा प्रदिष्टा मकरस्य मध्ये ॥

सं०—कलासु अभिज्ञा (निपुणा), अब्जदलायताक्षी, श्यामा विचित्राणि (नानाप्रकाराणि, वस्तूनि) मार्गमाणा विभूषणालङ्कृतलोहकर्णा योषा स्त्री, एवं मकरस्य मध्ये द्वितीये द्रेष्काणे आकृतिः प्रदिष्टा कथिता ॥२९॥

भा०—सब कलाओं में निपुणा, कमलपत्राक्षी, श्यामवर्णा, नाना प्रकार के पदार्थ की खोज करनेवाली, विभूषणों से अलंकृत, कान में लोह धारण की हुई स्त्री ऐसा मकर के द्रेष्काण का स्वरूप कहा गया है ॥२९॥

किन्नरोपमतनुः सकम्बलस्तूणचापकवचैः समन्वितः ।
कुम्भमुद्वहति रत्नचित्रितं स्कन्धगं मकरराशिपश्चिमः ॥३०॥

सं०—किन्नरोपमतनुः (अश्वमुखः पुरुषः) सकम्बलः, तूणचाप-कवचैः समन्वितः, स्कन्धगं रत्नचित्रितं कुम्भमुद्वहति, एवं मकरराशेः पश्चिमः (तृतीयद्रेष्काणः) कथितः ॥ ३० ॥

भा०—किन्नर (अश्वमुख देवयोनि पुरुष) के समान शरीर कम्बल, तूणीर (तरकस) धनुष कवच से युत, कन्धे पर रत्नजटित घड़ा लिया हुआ, इस प्रकार मकर के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ३० ॥

कुम्भ द्रेष्काण—

स्नेहमद्यजलभोजनागमव्याकुलीकृतमनाः सकम्बलः ।
कोशकारवसनोऽजिनान्वितो गृध्रतुल्यवदनो घटादिगः ॥३१॥

सं०—स्नेहमद्यजलभोजनागमव्याकुलीकृतमनाः, सकम्बलः, कोशकाषसनः, अजिनान्वितः, गृध्रतुल्यवदनः, एवं विशिष्टो घटादिगः कुम्भप्रथमद्रेष्काणः कथितः ॥ ३१ ॥

भा०— तैल, घृत, मदिरा, जल, भोजन इनकी आमदनी से व्याकुल मन वाला, कम्बल, रेशमी वस्त्र और मृगचर्म को धारण किया हुआ, गीध के समान मुखवाला, ऐसा कुम्भराशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥३१॥

दग्धे शकटे स-शाल्मले लोहान्याहरतेऽङ्गना वने ।
मलिनेन पटेन संवृता भाण्डैर्मूर्ध्नि गतैश्च मध्यमः ॥३२॥

सं०—वने सशाल्मले दग्धे शकटे स्थिता मलिनेन पटेन (वस्त्रेण) संवृता मूर्ध्नि शिरसि गतैर्भाण्डैरुपलक्षिताऽङ्गना नारी लोहानि आहरते (गृह्णाति), एवं कुम्भराशेर्मध्यमो द्वितीयो द्रेष्काणः कथितः ॥ ३२ ॥

भा०—वन में अग्नि से जले सेमलवृक्ष सहित गाड़ी पर बैठी, मलिनवस्त्रपहिनी हुई, माथेपर घड़ा ली हुई, स्त्री लोह बटोर रही है, ऐसा कुम्भ का द्वितीय द्रेष्काण कहा गया है ॥ ३२ ॥

श्यामः सरोमश्रवणः किरीटी त्वक्पत्रनिर्यासफलैर्बिभर्ति ।
भाण्डानि लोहव्यतिमिश्रितानि सञ्चारयत्यन्तगतो घटस्य ॥

सं०—श्यामः, सरोमश्रवणः, किरीटी पुरुषः, त्वक्पत्रनिर्यासफलैः सह-लोहव्यतिमिश्रितानि, भाण्डानि, विभर्ति, तानि सञ्चारयति (इतस्ततो नयति) एवं घटस्य कुम्भराशेरन्तगतो द्रेष्काणः कथितः ॥ ३३ ॥

भा०—श्यामवर्ण, कान पर रोम, मस्तक पर किरीट धारण किया हुआ, छिलका, पत्ता, गोंद और फल से युक्त लोह से निर्मित भाण्ड (वर्तन) को धारण करनेवाला और उन वर्तनोंको एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखता हुआ पुरुष ऐसा कुम्भराशि के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप समझना ॥३३॥

मीन द्रेष्काण—

स्रुग्भाण्डमुक्तामणिशङ्खमिश्रैर्व्याक्षिप्तहस्तः सविभूषणश्च ।
भार्याविभूषार्थमपां निधानं नावा प्लवत्यादिगतो झषस्य ॥

सं०—स्रुग्भा० 'मुक्तामणिशंखमिश्रैर्व्याक्षिप्तहस्तः सविभूषणश्च भार्याविभूषार्थं, अपां निधानं (समुद्रं) नावा (नौकया) प्लवति, एवं विशिष्टो झषस्यादिगतो द्रेष्काणः प्रोक्तः ॥ ३४ ॥

भा०—स्रुक् आदि यज्ञपात्र, मोती, रत्नमणि, शङ्ख इन सब को अधिक संख्या में हाथ में लिया हुआ, भूषणों से शोभित, और स्त्री के भूषणों के निमित्त नौका से समुद्र में तैरने वाला पुरुष, ऐसा मीन के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ३४ ॥

अत्युच्छ्रितध्वजपताकमुपैति पोतं
कूलं प्रयाति जलधेः परिवारयुक्ता ।
वर्णेन चम्पकमुखी प्रमदा त्रिभागो
मीनस्य चैव कथितो मुनिभिर्द्वितीयः ॥३५॥

सं०—वर्णेन चम्पकमुखी, परिवारयुक्ता प्रमदा (नारी) अत्युच्छ्रितध्वजपताकं पोतं (नावं) उपैति (आरोहति), जलधेः कूलं (तटं) च प्रयाति, एवं विशिष्टो मीनस्यैव द्वितीयस्त्रिभागः (द्रेष्काणः) मुनिभिः कथितः ॥

भा०—चम्पा पुष्प सदृश मुख की कान्तिवाली, परिवारों से सहित, अति उच्च पताकावाले जहाज पर चढ़ी हुई समुद्र के किनारे जाती हुई स्त्री, ऐसा मीन राशि के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप मुनियों ने कहा है ॥३५॥

श्वभ्रान्तिके सर्पनिवेष्टिताङ्गो वस्त्रैर्विहीनः पुरुषस्त्वटव्याम्
चौरानलव्याकुलितान्तरात्मा विक्रोशतेऽन्त्योपगतो झषस्य ॥

सं०—अटव्यां वने—श्वभ्रान्तिके गर्तसमीपे—सर्पनिवेष्टिताङ्गः, वस्त्रै-

विहीनः, चौरानलव्याकुलितान्तरात्मा पुरुषः विक्रोशते रोदिति, एवं विशिष्टो झषस्यान्त्योपगतस्तृतीयो द्रेष्काणो मुनिभिः कथितः ॥३६॥

भा०—वन में गर्त (गढ़ा) के समीप, सर्प से युत शरीर, वस्त्रहीन पुरुष चोर और अग्नि के भय से व्याकुल मन से रोता हुआ, ऐसा मीन राशि के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप मुनियों ने कहा है ॥३६॥

वि०—द्रेष्काण के प्रयोजन—"कल्याणरूपगुणमात्मसुहृद्दृकाणे चन्द्रोऽन्यगस्तदधिनाथगुणं करोति" इत्यादि पीछे कहे गये है। तथा यात्रा समय में एवं चोर के आकार स्थानादि जानने में इनका प्रयोजन होता है। यथा—

"द्रेष्काणाकारचेष्टागुणसदृशफलं योजयेद् वृद्धिहेतो-
द्रेष्काणे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते च।
सौम्यैर्दृष्टे जयः स्यात् प्रहरणसमये पापदृष्टे च भङ्गः
सम्मोहो वाऽथ बन्धः सभुजगनिगडे पापयुक्ते विपासुः॥"

भावार्थ यह है कि—लग्नगत द्रेष्काण के आकार, चेष्टा और गुण के समान ही जातक के आकार और चेष्टा और गुण होते है। जिस द्रेष्काण के स्वरूप आदि सौम्य, और पुष्प, फल, सुवर्ण से युत कहे गये है उस में यात्रा करने से विजय और लाभ होता है। जिसका रूप भयानक, सर्प, या पाशयुत तथा तृषित, क्षुधित कहे गये है उसमें यात्रा से हानि, पराजय और बन्धन होता है॥ एवं षट्पञ्चाशिका में—

अंशकाज् ज्ञायते द्रव्यं द्रेष्काणैस्तस्कराः स्मृताः।
राशिभ्यः कालदिग्देशा वयो ज्ञातिश्च लग्नपात्॥"

स्पष्टार्थं ॥ ३६ ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातके द्रेष्काणाध्यायः ॥२७॥

—०—

अथोपसंहाराध्यायः ॥२८॥

ग्रन्थस्थ अध्यायों के नाम--

राशिप्रभेदोग्रहयोनिभेदो वियोनिजन्माऽथ निषेककालः ।
जन्माथ सद्यो मरणं तथाऽऽयुर्दशाविपाकोऽष्टकवर्गसंज्ञः ॥१॥
कर्माजीवो राजयोगाः खयोगाश्चान्द्रा योगाद्विग्रहाद्याश्च योगाः
प्रव्रज्या.थो राशिशीलानि दृष्टिर्भावस्तस्मादाश्रयोऽथ प्रकीर्णः ॥
नेष्टा योगा जातकं कामिनोनां निर्याणं स्यान्नष्टजन्मा दृकाणः
अध्यायानां विंशतिः पञ्चयुक्ता जन्मन्युक्ता यात्रिकं चाभिधास्ये

सं०--राशिप्रभेदः, ग्रहयोनिभेदः, वियोनिजन्माऽध्यायः, निषेककालः, जन्माध्यायः, सद्योमरणम् (अरिष्टाध्यायः), आयुर्विभागः, दशाविपाकः, अष्टवर्गसंज्ञः, कर्माजीवः, राजयोगाः खयोगाः (नाभसयोगाः) चान्द्रा योगाः, द्विग्रहाद्या योगाः, प्रव्रज्या, राशिशीलानि, दृष्टिः (दृष्टिफलाध्यायः), भावः (भावफलाध्यायः), तस्मात्परम् आश्रयः (आश्रययोगाध्यायः), प्रकीर्णः, (प्रकीर्णाध्यायः), नेष्टा योगाः, कामिनीनां जातकं (स्त्री जातकाध्यायः), निर्याणं, नष्टजन्माध्यायः, दृक्काणाध्यायः, एवं अध्यायानां पञ्चयुक्ता विंशतिः जन्मनि (जातके) उक्ता कथिता । अथ यात्रिकं चाभिधास्ये यात्रासम्बन्धिनमध्यायसंग्रहं कथयिष्ये ॥१-३॥

भा०--राशिप्रभेदाध्याय १, ग्रहयोनिभेदाध्याय २, वियोनिजन्माध्याय ३, निषेकाध्याय ४, जन्माध्याय ५, अरिष्टाध्याय ६, आयुर्दायाध्याय ७, दशाध्याय ८, अष्टवर्गाध्याय ९, कर्माजीवाध्याय १०, राजयोगाध्याय ११, नाभसयोगाध्याय १२, चन्द्रयोगाध्याय १३, द्विग्रहत्रिग्रहयोगाध्याय १४, प्रव्रज्याध्याय १५, राशिशीलाध्याय १६, दृष्टिफलाध्याय १७, भावाध्याय १८, आश्रययोगाध्याय १९, प्रकीर्णाध्याय २०, अनिष्टयोगाध्याय २१, स्त्रीजातका-

ध्याय २२, निर्याणाध्याय २३, नष्टजन्माध्याय २४, और द्रेष्काणाध्याय २५, इस प्रकार पचीस (२५) अध्याय जातक में कहे गये हैं। इनमें नक्षत्रशील १, चन्द्रान्यराशिशील २ और उपसंहार ये ३ अध्याय पृथक मानने से इस ग्रन्थ में २८ अध्याय होते हैं॥ १-३ ॥

अन्यत्र कथित अध्यायों के नाम—

प्रश्नास्तिथिर्भं दिवसः क्षणश्च चन्द्रो विलग्नं त्वथ लग्नभेदः।
शुद्धिर्ग्रहाणामथ चापवादो विमिश्रकाख्यं तनुवेपनं च ॥४॥
अतः परं गुह्यकपूजनं स्यात् स्वप्नं ततः स्नानविधिः प्रदिष्टः।
यज्ञो ग्रहाणामथ निर्गमश्च क्रमात्प्रदिष्टः शकुनोपदेशः ॥५॥
विवाहकालः करणं ग्रहाणां प्रोक्तं पृथक् तद्विपुलाऽथ शाखा।
स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्यौतिषसंग्रहोऽयं मया कृतो दैवविदां हिताय ॥६॥

सं०--प्रश्नाः (प्रश्नभेदाध्यायः), तिथिः (तिथिबलाध्यायः), भं (नक्षत्राध्यायः), दिवसः (दिनबलाध्यायः), क्षणः (मुहूर्तनिर्देशः), चन्द्रः (चन्द्रबलाध्यायः), लग्नं (लग्नज्ञानाध्यायः), लग्नभेदः (लग्नं होरा, द्रेष्काणादि वर्गादिः), ग्रहाणां शुद्धिः अथाऽपवादाध्यायः, मिश्रकाध्यायः, तनुवेपनं (अङ्गस्पन्दनम्), अतः परं गुह्यकपूजन स्यात्, ततः स्वप्नं (स्वप्नाध्यायः), ततः स्नानविधिः प्रदिष्टः, अथ ग्रहाणां यज्ञः, निर्गमः (प्रस्थानविधिः), शकुनोपदेशश्च क्रमात् प्रदिष्टः कथितः। विवाहकालः, ग्रहाणां करणं (पञ्चसिद्धान्तिकाख्यं) प्रोक्तम्। अथ पृथक् तद्विपुला (तस्य करणस्य विस्तीर्णा) शाखा च प्रोक्ता। एवं त्रिभिः स्कन्धैः (गणित-जातक-संहिताभिधैः) अयं ज्यौतिषसंग्रहो मया दैवविदां हिताय कृतः ॥४-६॥

भा०—प्रश्नाध्याय १, तिथिबलाध्याय २, नक्षत्रबलाध्याय ३ दिनबलाध्याय ४, मुहूर्त ५, चन्द्रबल ६, लग्नसाधन ७, लग्नभेद (होरा, द्रेष्काणादि वर्ग) ८, ग्रहशुद्धि ९, अपवादाध्याय १०, मिश्रकाध्याय ११, अङ्गस्फुरण-

ध्याय १२, गुह्यकपूजनविधि १३, स्वप्नाध्याय १४, स्नानविधि १५, ग्रहयज्ञ १६, निर्गम (यात्रानिर्णय) १७, शकुनाध्याय १८, विवाहपटल १९, ये यात्रिक (अर्थात् मौहूर्तिक) विषय हैं। एवं ग्रहों का करण (पञ्च-सिद्धान्तिकोक्त) और उसकी विपुला शाखाएँ, इस प्रकार मैं (वराहमिहिर) ने ज्योतिषियों के हितार्थ तीन (जातक, संहिता और गणितरूप) स्कन्धों में यह ज्योतिषशास्त्र का संग्रह किया है ॥ ४–६ ॥

इस (स्वकृत) ग्रन्थ की विशेषता—

पृथुविरचितमन्यैः शास्त्रमेतत् समस्तं
तदनु लघु मयेदं तत्प्रदेशार्थमेव।
कृतमिह हि समर्थं धीविषाणामलत्वे
मम तु यदसदुक्तं सज्जनैः क्षम्यतां तत् ॥ ७ ॥

सं०—एतत् (ज्यौतिषं) शास्त्रं अन्यैः (यवनाद्याचार्यैः) पृथु विस्तीर्णं विरचितम्। मया तु तदनु तत्पश्चात् (तदेवानुसृत्येत्यर्थः) तत्प्रदेशार्थं (तत्कथितार्थं) एव समस्तं इदं ज्यौतिषं लघु स्वल्पं कृतम्। हि यस्मात् इह (अस्मिन् सङ्ग्रहे) धीविषाणाऽमलत्वे (बुद्धिशृङ्गनिर्मलीकरण-विषये) समर्थमुक्तम्। मम चेह यत् असत् (अशोभनं) उक्तं तत् सज्जनैर्विवेकिभिः क्षम्यताम् ॥७॥

भा०—इस ज्योतिषशास्त्र को अन्य (यवनादि) आचार्यों ने विस्तार से कहा है। उसके बाद मैंने उन शास्त्रों में कहे हुए समस्त विषय को संक्षेप में कहा है। मैंने इस ग्रन्थ में बुद्धिरूप शृङ्ग को निर्मल (तीक्ष्ण) बनाने के लिये ही सूक्ष्म में विषयों का प्रतिपादन किया है। इसमें जो कुछ,हम से अयुक्त हुआ हो उसे सज्जन महानुभाव क्षमा करें ॥७॥

ग्रन्थ में भविष्य दोष के लिये प्रार्थना—

ग्रन्थस्य यत्प्रचरतोऽस्य विनाशमेति
लेख्याद्बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण ।

यद्वा मया कुकृतमल्पमिहाकृतं वा
कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्य रागम् ॥८॥

सं०—प्रचरतो विचरमाणस्यास्य ग्रन्थस्य-लेख्यात् (लेखकदोषात्) यद् विनाशमेति, यद्वा मया (स्वयमेव प्रमादवशतः) कुकृतं, अल्पं कृतं, अकृतं न कृतं वा, तदत्र विदुषा विवेकिना रागं (मात्सर्यं) परिहृत्य बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण (बहुश्रुतानां मुखादधिगम्य क्रमेण) परिशुद्धं कार्यम् ॥ ८ ॥

भा०—इस ग्रन्थ के प्रचार होने से लेखक आदि के दोषवश जो अक्षरादिक नष्ट हो जाय, अथवा मुझ से ही जो कुछ अयुक्त हुआ हो, अल्प किया गया हो या प्रमाद वश छूट गया हो वह–विवेकिजन–बहुश्रुतजनों के मुख से या अपनी स्फीत बुद्धि से–मात्सर्यको छोड़ कर शुद्ध कर लेवें ॥८॥

ग्रन्थकार का परिचय—

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः
कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः ।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्
होरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार ॥ ९ ॥

सं०—आदित्यदासतनयः तदवाप्तबोधः (तस्मात् स्वपितुरादित्यदासादवाप्तो बोधो ज्ञानं येन स, तथोक्तः) कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः (कापित्थे ग्रामे यः सविता 'मन्दिरे स्थापितसूर्यः' तस्माल्लब्धो वरप्रसादो येन स तथोक्तः) आवन्तिको (उज्जयिनीवास्तव्यः) वराहमिहिरः मुनिमतानि अवलोक्य 'इमां' रुचिरां होरां सम्यक् चकार ॥ ९ ॥

भा०—उज्जयिनी नगर निवासी आदित्यदास विप्र का पुत्र, उन्हीं आदित्यदास (अपने पिता) से ज्ञान प्राप्त कर और कापित्थ ग्रामस्थित श्रीसूर्यनारायण की आराधना द्वारा उन से वररूप प्रसाद को पानेवाला वराहमिहिर नाम आचार्य ने मुनियों के मत को देख कर इस मनोहर होरा (जातक) शास्त्र को बनाया ॥ ९ ॥

ग्रन्थान्त में इष्टदेवादि के प्रणामरूप मङ्गलाचरण—

दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम् ।
शास्त्रमुपसंगृहीतं. नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः ॥१०॥

सं०—दिनकर-मुनि-गुरुचरण-प्रणिपातकृतप्रसादमतिना (दिनकरः सूर्यः, मुनयो वसिष्ठनारदादयः गुरुः पिताऽऽदित्यदास एतेषां चरणयोः प्रणिपातेन कृतो यः प्रसादोऽनुग्रहस्तेन मतिर्बुद्धिर्यस्य तेन) वराहमिहिरनाम्ना मया इदं शास्त्रमुपसंगृहीतम् । अतः पूर्वप्रणेतृभ्यः पूर्वशास्त्रकारेभ्यो मुनिवरेभ्यो नमोऽस्तु ॥ १० ॥

भा०—श्रीसूर्य भगवान् , वसिष्ठादि मुनि और गुरु (पूज्यपिता आदित्य दास) इनके चरण कमलों में प्रणाम करने से प्राप्त अनुकम्पा से मति (ज्ञान) पाकर मैं (वराहमिहिर) ने इस ग्रन्थ का संग्रह किया । इस लिये उन पूर्वशास्त्र रचयिता मुनिजनों को मेरा नमस्कार होवे ॥ १० ॥

चन्द्राकाशनभोनेत्रमिते विक्रमवत्सरे ।
माधवे धवले चन्द्र-तिथौ चन्द्रस्य वासरे ॥
बृहज्जातसंज्ञेऽस्मिन् वराहमिहिरोदिते ।
मिथिलादेशमध्यस्थ-चौगमाग्रामवासिना ॥
छात्रान् पाठयता काश्यां श्रीसीतारामशर्मणा ।
तत्त्वार्थदीपिका टीका कृता सम्पूर्णतामिता ॥
इयमध्येतृवर्गाणां बालानां हृदये स्थिता ।
अबोधतिमिरं भित्वा भूयादन्वर्थसंज्ञिका ॥

इति तत्त्वार्थदीपिकासहिते बृहज्जातकेउपसंहाराध्यायः ॥२८॥

● शुभं भूयात् ●

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुकडिपो,

कचौड़ीगली, बनारस–१

पं० श्रीसीतारामझाकृत—

परीक्षोपयोगिटीकायुतज्यौतिषपुस्तकानि ।

अवकहडाचक्रसहित—व्यवहारविवेक ।)

अङ्कबलचक्र—भा० टी० ≠)॥

केशवीयजातकपद्धति—सोदाहरण, सोपपत्ति, सं० टी०, भा० टी० १॥)

केरलप्रश्नसंग्रह—भा० टी० ।) खेटकौतुक—भा० टी० ।)

गोलपरिभाषा—ज्याक्षेत्रविचारसहित ≠)॥

गणितसोपान— ।) गर्गमनोरमा—भा० टी० ≠)॥

ग्रहलाघव—सोदाहरण, सोपपत्ति, सं० टी०, भा० टी० २॥)

जातकालङ्कार—सं० टी०, भा० टी० ॥≠)

जैमिनिसूत्र—सं० टी०, भा० टी० १)

ताजिकनीलकण्ठी—सोदाहरण, सोपपत्ति, सं० टी०, भा० टी० २।)

धराचक्र—भा० टी० ≠)॥ पद्यकोष—भा० टी० (द्वि० सं०) ।-)

नाडिवृत्तपञ्चविंशतिका—भा० टी० -)॥

भावप्रकाशज्योतिष—भा० टी० ॥=)

भावफलाध्याय—भा० टी० ≠)॥ बृहत्पाराशरहोरा यन्त्रस्थ

मुहूर्तचिन्तामणि—सान्वय भा० टी० २)

मुहूर्तमार्तण्ड—सं० टी०, भा० टी० १॥)

रेखागणित—पञ्चाध्याय ।≠) लघुजातक—सं० टी०, भा० टी० ॥।)

लघुपाराशरी—मध्यपाराशरी, सोदाहरण, भा० टी० ।॥)

लग्नप्रदीप—प्रथम भाग ≠) लग्नवाराही—भा० टी० -)॥

लीलावती—सोदाहरण, सोपपत्ति, सं० टी० १॥)

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत-बुकडिपो, कचौड़ीगली, काशी ।